हिन्दी-महाकाव्यों में नारी-चित्रण

हिन्दी-महाकाव्यों में नारी-चित्रण

[आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि
के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० श्यामसुन्दर व्यास
एम० ए०, पी-एच० डी०
शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
इन्दौर (मध्य प्रदेश)

साहित्य - संगम
मातागली, मथुरा (उ० प्र०)

प्रकाशक
रघुनाथप्रसाद अग्रवाल,
साहित्य संगम
१/५२०, मल्लापली,
मथुरा (उ० प्र०)

¤

लेखक
श्यामसुन्दर व्यास
एम ए०, पी-एच डी

¤

प्रथम संस्करण
१९६३

¤

सर्वाधिकार सुरक्षित

¤

मुद्रक
जगदीशप्रसाद बरसिया,
बम्बई भूषण प्रेस,
मथुरा

¤

मूल्य :
१२ रुपया ५० नये पैसे

अपने स्वर्गीय पिताश्री

पं० यादवराम जी व्यास

की

पावन स्मृति को

परंपरा से चली आती विचार-धारा के अनुसार नारी-चरित्र मनुष्य तो क्या देवताओं के लिए भी अज्ञेय है। संभवतः उसके चरित्र की यह अज्ञेयता ही उसके प्रति आकर्षण का एक कारण विशेष रही है। जो ज्ञेय है, वह निन्दा-स्तुति का कारण बना जो अज्ञेय है, उसे सैद्धान्तिक तुला पर विश्वास-अविश्वास के पलड़ों में तौलने का प्रयत्न चलता रहा। विचार-धाराओं के बाट बदलते रहे और कभी विश्वास का पलड़ा भारी रहा कभी अविश्वास का। धर्म शास्त्र नीति कला एवं जीवन—सभी न्यूनाधिक रूप से नारी का मूल्यांकन करते रहे पर नारी किसी परिधि विशेष में बाँधी न जा सकी। काल के डग ही ओछे न पड़े त्रिकालज्ञ-दृष्टि भी भटक गई। नारी प्रश्न-चिन्ह थी और प्रश्न-चिन्ह ही बनी रही।

धर्म, शास्त्र और नीति ने अपनी अपनी सीमा-रेखाएं खींचीं कला ने कुछ तथापि कुछ अंकित किया कुछ शब्दों में बाँधा पर जिसके लिए यह सब कुछ हुआ था वह जीवन ही जब अप्रमाणित करने लगा तो कला ही सर्व प्रथम जीवन के साथ आयी हुई। धर्म शास्त्र और नीति की समन्वित शक्ति विद्रोही-जीवन की अवज्ञा को थाम न पाई। कला विद्रोही-जीवन के साथ थी। अतः उसने समझदारी से काम लिया। उसने जीवन के विद्रोही वेग को भी समझा धर्म शास्त्र एवं नीति की समन्वित शक्ति को भी पहचाना। कला-मध्यस्थ बनी। उसने जहाँ एक ओर जीवन का पक्ष प्रतिपादित किया वहीं दूसरी ओर वह धर्म शास्त्र और नीति को भी आंशिक प्रश्रय देती रही। कला की इस मध्यस्थता ने एक बहुत बड़ा काम किया—जीवन को विक्षिप्त होने से ही नहीं बचाया विद्रोह-मंथन से प्राप्त होने वाले नवनीत को भी विस्मृति के पचड़ों से बचा लिया। यह सत्य है कि जीवन की उद्दामता से कला को शक्ति मिली पर उसकी उच्छृंखलता का अंध समर्थन कला ने नहीं किया। अतः कला और विशेषकर काव्य-कला में जीवन की धड़कन कालानुक्रम से सुरक्षित है।

जीवन की प्रथम धड़कन नारी की कोख से आती है, उसके स्नेहिल संरक्षण में पोषण पाते हुए रेंगी है घुटनों के बल सरकी है, पाँव चलना सीखी है। जीवन उसी की स्नेहमयी छाया में तुतलाया है, हर्ष-विमोहित अश्रु-विगलित और मोद-मुखरित हुआ है। जीवन आकर्षण एवं विकर्षण के क्षणों में, नारी द्वारा अनुप्राणित एवं प्रभावित होता रहा है। आसक्ति ने प्रवृत्ति का एवं विरक्ति ने निवृत्ति का मार्ग अपनाते हुए भी नारी को अनिवार्यता के रूप में अपने समक्ष रखा है। प्रथम जहाँ उसके उज्ज्वल स्वरूप को परखता रहा है वहीं द्वितीय ने उसके श्यामल पक्ष का प्रतिपादन करते हुए भी उसकी प्रभावपूर्ण सामाजिक स्थिति की अवज्ञा नहीं की है।

नारी जीवन की तरह काव्य की भी अनिवार्यता बन कर रही है। भावानुभूति सौन्दर्यानुभूति का माध्यम विशेष होने के कारण वह सदव से काव्य को अनुप्राणित करती चली आई है। काव्य और विशेषकर महाकाव्य का माध्यम-क्षेत्र—नर-क्षेत्र होता है। अतः इस माध्यम-क्षेत्र के मध्य नारी जहाँ सहज आकर्षण बन कर उपस्थित होती है, वहीं देश-काल से प्रभावित काव्य-दृष्टि नारी का मूल्यांकन भी करती चली आई है। समाज-शास्त्र की तरह साहित्य की दृष्टि भी नारी के प्रति सजग रही है क्योंकि समाज का दर्पण होने के कारण, साहित्य समाज के इस अर्धांग की अवहेलना नहीं कर सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत लगभग एक हजार वर्ष की उस काव्यात्मक-दृष्टि का अध्ययन करने का विनम्र लघु प्रयास किया गया है जो नारी का मूल्यांकन करते हुए, साहित्य के एक महत्वपूर्ण अंग—महाकाव्य—में नारी का चरित्रांकन करती रही है। सामन्तवादी वातावरण से लगाकर प्रजातन्त्रीय वातावरण तक आते आते भारतीय नारी के स्वरूप में जो परिवर्तन उपस्थित हुआ है, उस स्वरूप को समझने के लिए हिन्दी के आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' से लगाकर 'रावण महाकाव्य' तक के प्रमुख महाकाव्यों के आधार पर यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी-महाकाव्यों का यह नारी-चित्रण केवल साहित्यिक महत्व का विषय ही नहीं समाज शास्त्रीय महत्व का भी विषय है। एक सुदीर्घ साधना-लब्ध दृष्टिकोण का सांगोपांग विश्लेषण जिस विज्ञता की अपेक्षा रखता है उस विज्ञता का मुझ जैसे सामान्य श्रेणी के व्यक्ति में नितान्त अभाव है। प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत मेरा दृष्टिकोण एक जिज्ञासु छात्र के रूप में ही रहा है और कुछ आड़ी-टेढ़ी-मोटी रेखाओं के माध्यम से मैंने हिन्दी-महाकाव्यों में चित्रित नारी की एक स्थूल आकृति-मात्र खींचने का प्रयास किया है। इस प्रयास की सफलता को मैं गुरुजनों का 'प्रसाद' ही समझता हूँ, मैंने कोई बहुत बड़ा काम किया हो यह आत्मश्लाघा, न तो मैंने कभी अनुभव की और न करता हूँ।

यह प्रबन्ध प्रस्तुत करते समय मैंने जहाँ तक मुझसे सम्भव हुआ है विवाद का मार्ग नहीं अपनाया। हिन्दी के महाकाव्यों का महाकाव्यत्व स्वयं में विवाद का विषय है। इस दिशा में आजतक विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस विवाद में न पड़ते हुए मैंने अपने मूल विषय पर ही अपना ध्यान रखा और मोटे रूप से जिन काव्यों को महाकाव्य समझा जा सकता है, उन्हें अपने आधार-ग्रन्थ बनाने में हिचकिचाहट अनुभव नहीं की। इन महाकाव्यों में व्याप्त नारी चित्रण को भी जहाँ तक सम्भव हो सका है मैंने ग्रन्थकारों के शब्दों में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जहाँ-तहाँ मैंने कुछ आत्मिक-रंग अवश्य भरा है पर मूलतः मैंने ग्रन्थकारों की नारी-आकृतियों को अपने यथा रूप में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। चित्रण विषयक विशेषताओं अथवा सीमाओं पर पर मैंने अपनी मति के अनुसार कुछ कहने की चेष्टा की है।

हिन्दी-महाकाव्यों की नारी का स्वरूप निर्धारित करने के पूर्व मैंने उसकी ऐतिहासिक सामाजिक आध्यात्मिक एवं साहित्यिक स्थिति तथा मनोवैज्ञानिक मान्यताओं विषयक तथ्यों का पृष्ठभूमि के रूप में, संकलन करने का प्रयास किया है। साथ ही नारी विषय की प्रवृत्तियों पर भी संक्षिप्त दृष्टि डालने की चेष्टा की है। हिंदी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि में उसका स्वरूप निरूपण करते समय प्रधानतः मैंने कथा में उसकी स्थिति मनोभावों के अन्तर्गत व्यक्त उसके स्वरूप पर विचार किया है और उसकी चारित्रिक विशेषताओं एवं चित्रण विषयक सीमाओं पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है। भाव-भूमि के अंतर्गत उसके मनोभावों की झलक एवं कला भूमि में उसके अवयवी सौन्दर्य का निरूपण किया है। बौद्धिक भूमि महाकाव्यकारों के नारी विषयक दृष्टिकोण को व्यक्त करती है और तुलनात्मक भूमि में नारी के विभिन्न स्वरूपों का तुलनात्मक ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी-महाकाव्यों के माध्यम द्वारा भारतीय नारी के स्वरूप को समझने का प्रयास है।

प्रस्तुत प्रबन्ध डा० शिवमंगलसिंह जी 'सुमन' के मार्ग-दर्शन एवं निर्देशन में पूर्ण हुआ है। वस्तुतः यह उन्हीं की सद् प्रेरणाओं एवं प्रोत्साहन का परिणाम है। औपचारिकता के नाम पर उनका आभार मात्र मानकर मैं उनके गुरु-ऋण से मुक्त नहीं हो सकता हूँ। मैं उनके सहज स्नेह के समक्ष सदैव नत मस्तक एवं कृपाओं के कारण चिर ऋणी रहना ही उत्तम समझता हूँ। अतः मैं कैसे और किन शब्दों में उनका आभार मानूँ? उनकी गरिमा के समक्ष मेरी लघुता, लघुता ही बनी रहे यही मेरे लिए पर्याप्त है।

इस प्रबन्ध में कतिपय सुधार करने के सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी एवं डा० दीनदयालु गुप्त ने अपने जो बहुमूल्य सुझाव दिए थे उनके लिए मैं उनका अत्यधिक अनुगृहीत हूँ। साथ ही मैं उन समस्त विद्वानों का आभारी हूँ जिनके ग्रन्थों ने गुरुवत मेरा मार्ग-दर्शन किया है।

यह मेरी कृतघ्नता ही होगी यदि मैं इस अवसर पर भाई शंकर विजयवर्गीय एम ए बी टी एवं श्री गिरधारीलाल निगम एम ए का स्मरण न करूँ। लेखन काल में उक्त दोनों सज्जनों ने मेरी जो हार्दिक सहायता की है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

—श्यामसुन्दर व्यास

संकेत-निर्देशिका

र० मी०	रस मीमांसा
जी० का० सि०	जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त
सा०	साहित्यालोचन
भा० स० ऐ० वि०	भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण
भा० सं० इ०	भारत की संस्कृति और उसका इतिहास
भा० सांस्कृ० इ०	भारत का सांस्कृतिक इतिहास
हि० पु० स०	हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता
भा० प्रा० इ०	भारत का प्राचीन इतिहास
हि० स०	हिन्दू सभ्यता
साइको० सेक्स	साइकोलाजी आफ सेक्स
हि० सा० भू०	हिन्दी साहित्य की भूमिका
मनो०	मनोविज्ञान और शिक्षा शास्त्र
आधु० मनो०	आधुनिक मनोविज्ञान
थ्री ऐसे	थ्री ऐसेज् आन दी थियोरी आफ सेक्सुअलिटी
इनसाइ० आफ साइ०	इनसाइक्लोपीडिया आफ साइकोलाजी
किशोर मनो० भू०	किशोर मनोविज्ञान की भूमिका
डिफ० साइ० —	डिफरेन्शियल साइकोलाजी

•

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि ८७

चतुर्थ अध्याय

हिंदी-महाकाव्यों की भावभूमि १८५

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

हिंदी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि २५५

सप्तम अध्याय

०

प्रथम अध्याय

नारी-विकास की पृष्ठभूमि

- ऐतिहासिक विकास
- मनोवैज्ञानिक विकास
- आध्यात्मिक विकास
- सामाजिक विकास
- साहित्यिक विकास

हिन्दी-महाकाव्यों में वर्णित भारतीय नारी का अध्ययन करते समय अध्ययन-कर्ता के सम्मुख नारी के विविध स्वरूप उपस्थित होते हैं। यद्यपि "जिन रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से परिचित है, जिन रूपों और व्यापारों को सामने पाकर वह नर जीवन के आरम्भ से ही लुब्ध और क्षुब्ध होता आ रहा है उनका हमारे भावों के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है।"[1] तथापि संस्कारों के योग से जीवन की तरह काव्य की प्रकृति में भी थोड़ा-बहुत तदनुकूल परिवर्तन होता है।[2] अतः जिस काल में जो गुण या विशेषत्व प्रबल रहता है वही उस काल की प्रकृति या भाव कहलाता है।[3] यह स्वीकार कर लेने पर भी कि किसी प्रतिभाशाली ग्रन्थकार की स्थिति अपने ही काल और अपने ही व्यक्तित्व से सीमाबद्ध नहीं होती[4] हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि कवि अपने समय की स्थिति के सूचक होते हैं।[5] रामायणकार ने भारतीय समाज के जिस अरपोरम काल का चित्रण किया है वह उनके काल से बहुत अधिक पूर्व का है, परन्तु जो उद्गार उसने व्यक्त किए हैं वे कवि के समय की स्थिति के सूचक हैं। 'मानस' का समाज वही नहीं है जो तुलसी के समय का समाज था। फिर भी माध्यमिक युग की विचारधारा से तुलसी वंचित नहीं रह सके हैं। इसका यही अर्थ हुआ कि कवि भी तत्कालीन सामाजिक जीवन और सांसारिक परिस्थिति से बचा नहीं रह सकता उसकी सत्ता स्वतन्त्र नहीं हो सकती वह भी जाति के क्रमिक विकास की श्रृंखला के बन्धन के बाहर नहीं जा सकता।[6] अतः भारतीय नारी का सही मूल्यांकन करने के पूर्व यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि हम उन बातों पर भी विचार करें जिनके कारण नारी-चित्रण में तदनुकूल परिवर्तन होते हैं।

---

१ र० मी० पृ० ६।
२ की० का० शि० पृ० २२।
३ सा० पृ० ५२।
४ वही पृ० ४९।
५. वही पृ० ५२।
६ वही पृ० ५९।

हिन्दी-महाकाव्यों में वर्णित भारतीय नारी का अध्ययन करते समय अध्ययन-कर्ता के सम्मुख नारी के विविध स्वरूप उपस्थित होते हैं। यद्यपि "जिन रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से परिचित है, जिन रूपों और व्यापारों को सामने पाकर वह नर-जीवन के आरम्भ से ही लुब्ध और क्षुब्ध होता आ रहा है, उनका हमारे भावों के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है।[1] तथापि संस्कारों के योग से जीवन की तरह काव्य की प्रकृति में भी थोड़ा-बहुत तदनुकूल परिवर्तन होता है।[2] अतः जिस काल में जो गुण या विशेषत्व प्रबल रहता है, वही उस काल की प्रकृति या भाव कहलाता है।[3] यह स्वीकार कर लेने पर भी कि किसी प्रतिभाशाली ग्रन्थकार की स्थिति अपने ही काल और अपने ही व्यक्तित्व से सीमाबद्ध नहीं होती[4] हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि कवि अपने समय की स्थिति के सूचक होते हैं।[5] मानसकार ने भारतीय समाज के जिस अभ्युदय काल का चित्रण किया है वह उनके काल से बहुत अधिक पूर्व का है, परन्तु जो उद्गार उसने व्यक्त किए हैं, वे कवि के समय की स्थिति के सूचक हैं। 'मानस' का समाज वही नहीं है जो तुलसी के समय का समाज था। फिर भी माध्यमिक युग की विचारधारा से तुलसी अन्वित नहीं रह सके हैं। इसका यही अर्थ हुआ कि कवि भी तत्कालीन सामाजिक जीवन और सांसारिक परिस्थिति से बचा नहीं रह सकता उसकी सत्ता स्वतन्त्र नहीं हो सकती वह भी जाति के क्रमिक विकास की शृंखला के बन्धन के बाहर नहीं जा सकता।[6] अतः भारतीय नारी का सही मूल्यांकन करने के पूर्व यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि हम उन बातों पर भी विचार करें जिनके कारण नारी-चिन्तन में तदनुकूल परिवर्तन होते हैं।

---

१ र० मी पृ ६।
२ ची० का० शि पृ० २२।
३ सा० पृ० १२।
४ वही पृ० ४९।
५ वही पृ० १२।
६ वही पृ० १२।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कृतिजन्य रूप को स्थिर करने में तीन बातें सहायक हो सकती हैं—जाति, स्थिति और काल। जाति का अर्थ हमें जन-समुदाय के स्वभाव के रूप में ग्रहण करना होगा। स्थिति से तात्पर्य उस सामाजिक राजनीतिक धार्मिक और प्राकृतिक अवस्था से है जो उस जन-समुदाय पर अपना प्रभाव डालती है और काल से तात्पर्य उस समय के जातीय विकास की विशेषता से है।[७] दूसरे शब्दों में हम काल कला एवं दृष्टिकोण को परिवर्तन के प्रेरक तत्व मान सकते हैं। और इस दृष्टि से नारी के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक सामाजिक तथा साहित्यिक विकास की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के पश्चात् ही उसका सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

ऐतिहासिक विकास

(आदि काल से सन् १९४८ ई० तक)

इतिहास अतीत के सम्य युग में किए मानव प्रयास की अनुक्रमिक कथा है।[८] जिस प्रकार एक धागे का सहारा लेकर मिश्री के कण डलिया बन जाते हैं उसी प्रकार हमारे मन में भी किसी सूत्र का सहारा पाकर बहुत से विच्छिन्न भाव उसके चारों ओर एक स्थूल रूप में आकृति-मात्र करने का प्रयत्न करते हैं।[९] अतः यह कहा जा सकता है कि मानव प्रयास की आनुक्रमिक कथा काल-सूत्र में गुंफित विच्छिन्न भावों की वह स्थूल आकृति है जिसे हम इतिहास का नाम देते हैं। इस प्रकार इतिहास अतीत काल में सम्य मानव के प्रयास से समुद्भूत घटनाओं का क्रमबद्ध ग्रन्थन है।[१०] इस क्रमबद्ध ग्रन्थन को समझने के लिए "जब हम ऐतिहासिक क्रम से घटनाओं का वर्णन करते हैं तब उन्हें काल-प्रसार में वितरित करते हैं।[११] भारतीय नारी का ऐतिहासिक विश्लेषण करते समय हमें अनेक ऐतिहासिक युगों से गुजरना पड़ता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमारे विवेच्य युग इस प्रकार हो सकते हैं —

आदिम युग और नारी —इतिहास की दृष्टि, अतीत के जिस सुदूर तक झाँक सकती है, उसका अधिकांश अंधकारमय माना जा सकता है क्योंकि 'अतीत अनादि है उसका अधिकतर सुदूर भाग अज्ञात है।[१२] अतः इस अज्ञात आदिम युग में नारी की ऐतिहासिक स्थिति का स्वरूप निर्धारण करना एक कठिन समस्या बन जाता है। फिर भी भारत में मातृ-सत्ता दृढ़ होकर बहुत समय तक बसी थी।[१३] सामाजिक संगठन का रूप गण-संगठन होता था जिसका आधार मातृ-सत्ता थी।[१४] यूथ-विवाहों में

७ सा० पृ० ३३।
८ मा० ब० ऐ० वि० पृ० १।
९ साहित्य पृ० ३७।
१० मा० स० ऐ० वि० पृ० १०।
११ वही पृ० १।
१२ वही पृ० १।
१३ भारत पृ० ८२।
१४ वही पृ० ४२।

माता के ममत्व को ही पहचाना जा सकता था और यज्ञ—आर्थिक व्यवस्था—में अपनी प्रमुखता के कारण वह परिवार की स्वामिनी होती थी। इसीलिए मातृ-परम्परा के अनुसार पीढ़ियाँ चलती थीं।[15] आदिम समाज का जन्म और उसका निर्माण मातृ-सत्ता द्वारा ही हुआ था।[16] उनमें—आदिम साम्य संघ में—पिता की शासन सत्ता और श्रम की विविधता नहीं थी। जहाँ तक श्रम-विभाजन का सवाल था वहाँ उस समय केवल पुरुष और नारी के श्रम में अन्तर पाते हैं। पुरुष शिकार करता था युद्ध में जाता था और पशुओं को पालता था नारी घर का प्रबन्ध करती थी भोजन पकाती थी दूध दुहाती थी और बस्ती के आस-पास चारों ओर अन्न उपजाती थी। दोनों का श्रम सामाजिक श्रम था। सामूहिक श्रम से ही वह किया जाता था और सामाजिक ढंग से ही उसका उपयोग होता था। इसलिए निजी गृहस्थियाँ नहीं थीं और पुरुष तथा नारी की मर्यादा में कोई अन्तर नहीं था।[17] मातृ-सत्ताक-समाज में नारी बलवती थी गृह की स्वामिनी और सम्पत्ति की प्रभु।[18]

कालान्तर में समाज में एक अद्भुत परिवर्तन हुआ। पहले उसकी सत्ता मातृ सत्ताक थी अब पितृ सत्ताक होगई।[19] परिणामस्वरूप माता के सारे अधिकार पिता के हो गए। स्वयं नारी भी नर की दासी बन गई।[20] इस स्थिति में नारी नर के भोग का साधन उसका उत्पादक यन्त्र बन गई।[21] सैंधव सभ्यता तक आते-आते नारी के क्या अधिकार थे और उसकी क्या स्थिति थी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु उसकी दशा दयनीय नहीं थी इसका हमें कुछ आभास मिलता है।[22] उस सभ्यता की एक नर्तकी की मूर्ति से ज्ञात होता है कि गणिका का जीवन यहाँ आरम्भ हो गया था।[23] पर इस नर्तकी का रूप कुल्ली सभ्यता के अवशेषों में उपलब्ध स्त्री मूर्तियों से मिलता-जुलता है। अतः यह अनुमान किया गया है कि जिस स्त्री की यह मूर्ति है, वह सिन्धु देश की न होकर दक्षिणी बिलोचिस्तान की थी। नर्तन-क्रिया में दक्ष होने के कारण सम्भवतः कोई व्यापारी उसे सिन्धु देश में ले आया होगा।[24]

उक्त विवेचन के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारत में आदिम नारी की ऐतिहासिक स्थिति असन्तोषजनक नहीं थी। मातृ-सत्ताक युग में वह स्वामिनी बलवती एवं सम्मानिता थी और पितृ-सत्ताक युग में भी उसकी अवस्था दयनीय नहीं हो पाई थी।

---

१५. भारत पृ० ८४।
१६. वही पृ० ८६।
१७ वही पृ० ९७, ९८।
१८ भा० स० ऐ० वि० पृ० २९७।
१९ वही पृ० २९७।
२० वही पृ० २९८।
२१ वही पृ० २९८।
२२ वही पृ० २५४।
२३ वही पृ० २५४।
२४ भा० सं० इ० पृ० १०२।

वैदिक युग और नारी — नारी के विकास एवं अधिकार की दृष्टि से वैदिक युग का इतिहास भारतीय नारी का स्वर्ण काल है। वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति जितनी ऊँची थी, उतनी बाद में कभी नहीं रही।[२५] संगठन के सिद्धान्त और व्यवहार में स्त्रियों का पद बहुत ऊँचा था। साधारण जीवन के अलावा समाज के मानसिक एवं धार्मिक नेतृत्व में भी स्त्रियों का हाथ था।[२६] साहस और वीरता में भी स्त्रियाँ कम न थीं। कोई-कोई स्त्रियाँ तो समरभूमि में जाकर पुरुषों की तरह युद्ध किया करती थीं।[२७] वैदिक युग में स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह ही ऊँची शिक्षा प्राप्त करती थीं।[२८] जिन स्त्रियों में धार्मिक साहित्य रचने की शक्ति थी उनको अपनी इस प्रवृत्ति के अनुसार चलने में किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं थी। कई स्त्रियाँ ऋषि थीं जिनकी रचनाएँ पुरुषों की तरह ऋग्वेद संहिता में आज तक शामिल हैं।[२९] स्त्रियाँ सामाजिक जीवन में पूरा भाग लेती थीं। उस समय पर्दे की और स्त्रियों को सामाजिक समारोहों से दूर रखने की पद्धति नहीं थी।[३] खुले मैदान में स्त्री-पुरुष बड़े चाव से भाग लेते थे। स्त्रियों को नदियों और तालाबों में नहाने का बड़ा शौक था।[३१] यद्यपि आर्य्य कुटुम्ब का जीवन पैतृक सत्ता और स्त्री सम्मान पर आधारित था।[३२] पर इस काल की नारी शक्ति और औदार्य की सीमा है पुत्री की हैसियत से पिता की संपत्ति में उसका अधिकार है। युवती की हैसियत से वह अपना पति आप चुनती है। पत्नी की हैसियत काफी ऊँची है और इस ऋग्वैदिक ऊँचाई तक इस रूप में भारतीय नारी कभी नहीं उठी न पहले न पीछे। अपनी शक्ति और ऊँचाई का वह स्वयं प्रतीक है।[३३]

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि वैदिक युग में नारी नर के अधिकारों के काफी निकट पहुँच जाती है। घर-बाहर सभी ओर उसका सम्मान है। शिक्षा साहित्य समाज धर्म गृह-कर्म आमोद-प्रमोद एवं समर-भूमी क्षेत्रों में उसकी गति रहती है। संक्षेप में वैदिक युग उसके ऐतिहासिक विकास की चरम परिणति का काल है।

उपनिषद् काल में नारी :—वैदिक काल से इस काल की स्त्रियों की स्थिति में अन्तर आने लगा था। इस युग के अन्त तक उनकी अवस्था काफी गिर चुकी थी।[३४] इस युग में कर्म-कांड की जटिलता बढ़ने के कारण अब स्त्रियाँ पतियों के साथ बैठकर

---

२५. भा० संस्कृ० इ० पृ० ५१।
२६. हि० पु० स० पृ० ३७।
२७. वही पृ० ३७।
२८. भा० संस्कृ इ० पृ० ५१।
२९. हि० पु० स० पृ० ३७।
३०. भा० संस्कृ० इ पृ० ५१।
३१. हि पु० स पृ० ४४।
३२. वही पृ० ४४।
३३. भा० स० ऐ० वि० पृ० २५५।
३४. भा० संस्कृ० इ पृ० ५४।

समूची यज्ञ-क्रिया नहीं कर सकती थी।[३४] स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर विद्याध्यन करती थी। जब कोई कुमारी विवाह के लिए मण्डप में आती थी तो वह न केवल वस्त्रों से भली भाँति आच्छादित होती थी पर, साथ ही यज्ञोपवीत को भी धारण किए होती थी। यज्ञोपवीत विद्याध्यन का चिह्न था।[३५] अनेक स्त्रियाँ प्रथम विदुषी बन सकी थीं। मैत्रेयी गार्गी जैसी कुछ स्त्रियाँ इस युग में भी ऊँची शिक्षा प्राप्त करती थीं और बड़े से बड़े विद्वानों के साथ विवाद करने की योग्यता रखती थीं।[३६] पर इसमें सन्देह नहीं कि कतिपय अपवादों को छोड़कर सर्व साधारण स्त्रियाँ विवाह द्वारा गृहस्थ-धर्म के निर्वाह में तत्पर रहती थी।[३७]

जैसे-जैसे जाति के बंधन कड़े होते गये वैसे-वैसे स्त्रियों का पद गिरता गया। वर्ण-व्यवस्था के कारण और खास कर अनार्यों की उपस्थिति के कारण स्त्रियों का पुरुषों से स्वतंत्रतापूर्वक मिलना कम होने लगा। अभी पर्दा प्रारम्भ नहीं हुआ था पर स्त्रियाँ पुरुषों की गोष्ठियों से कुछ अलग रहने लगी थीं। इस प्रायक्रम से उनका ज्ञान और अनुभव परिमित होने लगा और इसीलिये उनका आदर कुछ कम होने लगा।[३८] पुत्रियों का जन्म इस युग से एक मुसीबत समझा जाने लगा। स्त्रियों के 'दाय' का अधिकार भी छीन लिया गया। फिर भी ये व्यवस्थाएँ अभी सर्वमान्य नहीं हुई थी।[३९] इसके अतिरिक्त अनुलोम प्रथा से भी स्त्रियों की पदवी को हानि पहुँची तथा तपस्या की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण जब संसार-त्याग एक आदर्श होने लगा तो स्त्री जो इस त्याग में सबसे बड़ी बाधा है अनादर की दृष्टि से देखी जाने लगी।[४१]

विभिन्न ऐतिहासिकों के उक्त मतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी का वह ऐतिहासिक विकास और ऊंचाई जो उसने वैदिक युग के प्रारम्भिक काल में प्राप्त की थी कम होने लगी और उसका ऐतिहासिक महत्व अधिकारों की दृष्टि से शनैः-शनैः कम होना प्रारम्भ हो गया। भारतीय नारी की अधोगति का आरम्भ यहीं से समझना चाहिए।

वीर-काव्य-काल में नारी :—वीर-काव्य-काल तक आते-आते नारी की स्थिति में काफी अंतर आ गया। उत्तर वैदिक युग की स्त्रियों की स्थिति में जो ह्रास होना प्रारम्भ हुआ था वह इस युग में भी बना रहा।[४२] इस युग में बहु विवाह की प्रथा

---

३४. भा० संस्कृ० इ० पृ० ६४।
३५ भा० प्रा० इ० पृ० २१८।
३७. भा० संस्कृ० इ पृ० ६६।
३८. भा० प्रा० इ० पृ० २१६।
३६ हिं पु० स० पु० ७३, ७४।
४० भा० संस्कृ० इ० पृ० ६६।
४१ हिं० पु० स० पृ० ७३ ७४।
४२ भा संस्कृ० इ० पृ० ६६।

प्रचलित थी एवम् बाल-विवाह की प्रथा का भी प्रारम्भ हो गया था।[४३] स्त्री को वेदाध्ययन का अधिकार न था। विवाह के अतिरिक्त उसके सब संस्कार अमंत्रक किए जाते थे और वह अपने पुरुष संबंधियों के संरक्षण में रहती थी। कानून की दृष्टि में वह 'स्त्री-धन' के अतिरिक्त संपत्ति की स्वामिनी नहीं बन सकती थी। उसका मुख्य कर्तव्य घर का प्रबन्ध करना था जिसमें आय की रक्षा और व्यय भी शामिल थे।[४४] नारी-विरोधी वर्ग पुत्रियों के जन्म को बुरा मानता था उन्हें सारी बुराइयों का मूल समझता था।[४५] नियोग की प्रथा भी इस समय शास्त्र-सम्मत थी। पर्दे की प्रथा का सूत्रपात भी इस काल से प्रारम्भ हो गया था। पर मध्य काल की सी परतंत्रता और घोर पर्दा प्रथा नहीं थी। स्वयंवर आदि में वे सबके सामने आती थीं।[४६] फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि घोर काल सारे भूमंडल पर नारी-पतन का घटानाद है।[४७] रामायण-महाभारत-काल की नारी यदि बड़ी है तो इसलिए कि वह अपने एकाकी नर की छाया है, उसकी सतत् अनुगामिनी है।[४८] इन बातों से यही प्रकट होता है कि नारी का मान-महत्त्व अब कम होने लगा था और चारों ओर से उसे जकड़ने एवम् उसके अधिकारों को सीमित करने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया था।

बौद्ध-युग में नारी —इस युग में नारी की स्थिति में विशेष अंतर नहीं आ पाया था। बौद्धकालीन गणराज्यों में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। शाक्य लोगों में स्त्रियों की दशा बहुत उन्नत थी। उनमें बहु विवाह की प्रथा नहीं थी और वे अपनी स्त्रियों तथा कन्याओं को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे।[४९] लिच्छवि लोग भी स्त्रियों का बड़ा आदर करते थे और उनमें स्त्रियों का सतीत्व पूर्णतया सुरक्षित था।[५०] कन्याओं का विवाह सामान्यतया सोलह वर्ष की आयु में किया जाता था। बाल-विवाह की प्रथा उस समय प्रचलित न हो पाई थी। उस काल में विवाह के समय वधुओं को दी जानेवाली शिक्षाओं[५१] एवम् भिक्षुणि संघ की स्थापना के समय व्यक्त की गई बुद्ध की विचारधारा[५२] को देखने से यही प्रकट होता है कि स्त्रियों का यह सम्मान अधिकार के रूप में नहीं दया के रूप में था। नारी को चारों ओर से बाँधने का प्रयत्न पूर्ववत् जारी था और उसके व्यक्तित्व के विकास की सीमा गृह और परिवार तक ही सीमित थी।

---

४३ भा० स० इ० पृ० १७१, ८१।
४४ हि० सभ्यता पृ० १११।
४५. भा० संस्कृ० इ० पृ० ६६।
४६ वही पृ० ७०।
४७ भा० स० ऐ० वि० पृ० १००।
४८. वही पृ० २११।
४९. भा० भा० इ० पृ० ११२, ११३।
५० वही पृ० ११६।
५१ भा० सं० इ० पृ० २६८, ६६।
५२ हि० सभ्यता पृ० २४५।

मौर्य युग एवम् उत्तर हिन्दूकाल में नारी —मौर्ययुग तक पहुँचते-पहुँचते स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। दाय में उन्हें पूरा अधिकार था। कुछ अवस्थाओं में वे तलाक दे सकती थी और पुनर्विवाह कर सकती थी। विधवाओं को भी पुनर्विवाह करने का अधिकार था। पति यदि स्त्री का तीन बार से अधिक पीटे तो स्त्री उसके विरुद्ध प्रशासन में अभियोग चला सकती थी।[५३] फिर भी स्त्रियों की स्थिति बहुत ऊँची नहीं थी। मैगस्थनीज ने स्त्रियों को खरीदने और बेचने की बात लिखी है।[५४] अवरोध-हरम तथा बहुविवाह की परिपाटी राज-परिवारों में प्रचलित थी। नियोग की पद्धति भी प्रचलित थी। कुछ स्त्रियां आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर दर्शनशास्त्र का अध्ययन करती थीं।[५५] मौर्य काल में स्त्रियां प्रायः पर्दे में रहती थी।[५६]

गुप्त-युग में उच्च वर्गीय स्त्रियों की स्थिति बड़ी उन्नत थी। वे शासन-प्रबन्ध में प्रमुख भाग लेती थी। कुछ प्रान्तों में विशेषतः कर्नाटक प्रदेश में वे प्रान्तीय शासक और गांव के मुखिया का भी कार्य करती थी। दक्षिण में स्त्रियों का पृथक् पर्दे में रखने की परिपाटी नहीं था। बाल-विवाहों का प्रचलन काफी हो गया था। कुलीन स्त्रियां उच्च शिक्षा भी प्राप्त करती थी। किन्तु साधारण स्त्रियों की दशा गिर रही थी। बाल विवाह प्रचलित होने से उनका उपनयन असम्भव हो गया। वैदिक शिक्षा न होने पर भी स्त्रियों को कला और साहित्य की शिक्षा दी जाती रही। इस युग में शील भट्टारिका आदि अनेक स्त्री-लेखिकाएं और कवियित्रियां हुई।[५७] पर भारतीय इतिहास के इस स्वर्ण-युग में भी नारी अपनी ऋग्वेद-कालीन स्थिति के निम्न छोर के अधिकारों तक भी नहीं उठ सकी।[५८]

गुप्तकाल के अनन्तर नारी की स्थिति निरन्तर गिरती चली गई। यद्यपि वेदाध्ययन से वंचित होने पर भी कुलीन परिवारों की स्त्रियां लौकिक साहित्य और दर्शन का अच्छा अभ्यास करती थीं। स्त्रियों को ललित-कलाओं की शिक्षा तो विशेष रूप से दी जाती थी।[५९] अनेक स्त्रियों ने संस्कृत-काव्य की भी रचना की। इन्दु लेखा विज्जिका शीला सुभद्रा महालक्ष्मी आदि कितनी ही कवियित्रियों की रचनाओं का आभास इस युग के अलंकार-ग्रन्थों द्वारा मिल जाता है।[६०] ललित-कलाओं के

---

५३ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १२६।
५४ भा० सं० इ० पृ० १८०।
५५ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १२६।
५६ भा० प्रा० इ० पृ० ५०७।
५७ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १४४।
५८ भा० स० ऐ० वि० पृ० २६४।
५९ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १०४।
६० भा० प्रा० इ० पृ० ६६६।

अतिरिक्त कुछ स्त्रियों ने उस समय शासन प्रबन्ध तथा रण-कौशल जैसे पुरुषोचित कार्यों में भी अपनी पटुता प्रदर्शित की।[११]

स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार होने पर भी इनकी स्थिति अब निरन्तर हीन होती जाती थी। विधवा-विवाह अब बुरा माना जाने लगा था और सती प्रथा का भी प्रारम्भ हो गया था।[१२] साधारण स्त्रियों की पराधीनता और परवशता इस काल में निरन्तर बढ़ती चली गई, दाम्पत्य अधिकारों में विषमता आने लगी और नारी का दर्जा गिरता चला गया। इस समय यह सिद्धान्त सर्वमान्य हुआ कि स्त्री सदैव परतन्त्र रहनी चाहिए उसे कुशील और कामवृत्त पति की भी सेवा करनी चाहिए।[१३]

उक्त ऐतिहासिक तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी का पद और महत्त्व सतत् गिरता चला जा रहा था। कतिपय अपवादों को छोड़कर उसकी स्थिति दयनीय होना प्रारम्भ हो गई थी। भारतीय इतिहास के इस सांस्कृतिक काल से हृ्रुता के साथ उसके अधिकारों की कम होना प्रारम्भ हो गई थी।

राजपूत-काल एवम् नारी —राजपूत-काल में नारी की स्थिति में सुधार की अपेक्षा गिरावट ही आती चली गई। कन्या का जन्म अमाङ्गल्य का द्योतक समझा जाने लगा। मध्य तथा पश्चिमी भारत में राजपूतों जाटों मेवातों में कन्या का जन्म होते ही उसे अफीम आदि देकर या अन्य ढंगों से मार दिया जाता था ताकि कन्या के विवाह के समय दहेज आदि के कारण जो अपमान सहना पड़ता है तथा परेशान होना पड़ता है उससे मुक्ति हो जाय।[१४] बाल-विवाह का प्रचलन भी इस काल में प्रबल हो उठा। सती-प्रथा भी जोर पकड़ बैठी और पर्दे का प्रचलन भी बढ़ गया।[१५] प्रायः स्त्रियाँ अशिक्षित ही होती थीं। राजपूत स्त्रियों का आदर करते थे और प्रायः अनेक मामलों में उनकी सलाह भी लिया करते थे। पर यह सब अपवाद-स्वरूप ही माना जा सकता है। साधारण स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। स्त्रियों की पराधीनता एवम् परवशता इस काल में बढ़ती चली गई, दाम्पत्य अधिकारों में भी विषमता आने लगी और नारी का दर्जा गिरता चला गया। बाल-विवाह का प्रचलन और स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार न होने से शूद्रों के समान समझा जाना इस दुरावस्था के प्रधान कारण थे।[१६] यद्यपि तत्कालीन राजपूत घरानों का इतिहास देखने से प्रतीत होता है कि अन्तःपुर में भी नारी की सत्ता थी जौहर उसके शौर्य, ओज और गरिमा को प्रकट करता है। पर इन्हें नारी के अपने व्यक्तिगत गुण कहा जा सकता है। नारी

११ —भा० संस्कृ० इ० पृ० १७४।
१२ भा० सा० इ० पृ० २६२।
१३ भा० संस्कृ० इ० पृ० १७५।
१४ वही पृ० २७३।
१५ भा० सं० इ० पृ० १०६।
१६ भा० संस्कृ० इ० पृ० १७५।

समाज की अवस्था दयनीय थी। काल की कठोरता ने उसके अधिकारों एवम् स्वामि मान को दयनीय बना डाला था। मध्य युगीन चरम पतन का प्रारम्भ नारी के लिए राजपूत-काल से ही प्रारम्भ हो गया था।

मुस्लिम युग में नारी —मुस्लिम युग में नारी-अवस्था अत्यन्त कारुणिक हो गई। पर्दे की प्रथा का प्रचलन साधारण-सी बात हो गई। हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ पर्दे में रहने लगी। बहु विवाह एवम् बाल-विवाह की प्रथा ने भी जोर पकड़ा। उच्छृंखल मुस्लिम सैनिकों व राज्य कर्मचारियों के भय से हिन्दू लोग बचपन में ही अपनी बालिकाओं का विवाह करने लगे।[१७] सती प्रथा का भी जोर बढ़ा। धार्मिक व्यवस्था का रूप दे देने के अतिरिक्त विधवाओं की सम्पत्ति के लोलुप सगे-सम्बन्धी भी स्त्रियों को सती होने के लिए बाधित करने लगे। इस कार्य की पूर्ति के लिए बड़े ही दारुण उपायों का उपयोग होने लगा। स्त्रियों से सती होने की स्वीकृति पाने के लिए उन्हें अफीम जैसे मादक पदार्थ खिलाकर बिल्कुल बेसुध कर दिया जाता था। स्त्रियाँ चिता की ज्वाला प्रज्वलित होने पर वहाँ से उठकर भागती तो उन्हें बाँसों से जबरदस्ती चिता में ठेला जाता था। उनका करुण चीत्कार दर्शकों के हृदय विदीर्ण न कर सके इसलिए ढ़ोल नगाड़े आदि वाद्य खूब जोर से बजाये जाते थे। स्त्रियाँ उठकर भाग न सकें इसलिए प्रायः उन्हें चिता के साथ रस्सियों से खूब कस कर बाँध दिया जाता था।[१८] यद्यपि मुहम्मद तुगलक तथा अकबर ने इस कुप्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु यह बन्द नहीं हुई। दासियों का क्रय-विक्रय भी उस युग की साधारण-सी बात थी। नारी की उन्नति के सारे मार्ग रुद्ध थे। साधारणतः नारी जीवन नारकीय हो गया था और ७१२ ई० के मोहम्मद बिन कासिम के अरब-आक्रमण से लेकर १७०७ ई० में मुगल-साम्राज्य के पतन तक भारतीय स्वाधीनता का इतिहास नारी अपने रक्त से लिख रही थी।[१९]

मुस्लिम युग में नारी की स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि ऋग्वेद-काल उसके उत्कर्ष की चरम सीमा थी तो मुस्लिम काल उसके पतन की चरम सीमा सिद्ध होती है। इस काल में उसके अधिकारों का ही अपहरण नहीं हुआ अपितु जीने के लिए उसे शुद्ध प्राणवायु भी मिलना कठिन हो गई। युग के स्वार्थ ने उसके विकास को अधीन भाव और अनैतिकता का खिलौना बना डाला। नारी के प्रति बर्ता गया ऐसा घिनौना दृष्टिकोण इसी काल में सम्भव हो सका और सम्भवतः भारतीय नारी के विकास के इतिहास का सबसे काला पृष्ठ यही काल है।

---

१७ भा० सं० इ० पृ० ६०६।

१८ भा सांस्कृ० इ० पृ० २७२।

१९ भा० स० ऐ० वि० पृ० २६४।

चुका है प्रत्येक वयस्क को मतदान का अधिकार है तथा सन् १९४८ की केन्द्रीय घोषणा के अनुसार अब स्त्रियां भारतीय शासन की प्रतियोगिता-परीक्षाओं में भी सम्मिलित हो सकती हैं।[७६] संयुक्त राष्ट्र संघ की सर्व प्रथम महिला अध्यक्षा बनने का श्रेय भी भारतीय नारी का ही प्राप्त है। हिन्दू कोड बिल ने भी नारी की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि आधुनिक काल में नारी की स्थिति में आश्चर्य जनक परिवर्तन हुआ है। उसकी ऐतिहासिक स्थिति पुरस हो गई है। मातृ सत्ताक युग में जहाँ वह बलवती स्वामिनी एवम् संपत्ति की अधिकारिणी थी वैदिक युग में जहाँ वह पुरुष के अधिकारों से काफी निकट पहुँच चुकी थी वहीं आधुनिक काल में सैद्धांतिक रूप में उसका दर्जा किसी भी प्रकार कम नहीं है। मध्य युगीन अंधकार काल को छिन्न-भिन्न कर आज वह समानता के वातावरण में साँस ले रही है।

मनोवैज्ञानिक विकास

मनोविज्ञान व्यक्ति की वातावरण से सम्बन्धित चेष्टाओं का वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है।[१] मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है जीवन की साँस का विज्ञान एवम् शताब्दियों से इसकी परिभाषा आत्मा का विज्ञान अथवा दर्शन के रूप में की जाती रही है।[२] आज के मनोविज्ञान को न तो शब्दश अर्थ से और न प्राचीन परिभाषा से ही स्पष्ट किया जा सकता है। मनोविज्ञान आज एक नवीन विद्या मानी जाती है। प्राचीन समय में यह तर्क-शास्त्र और दर्शन शास्त्र का एक अंग था। तर्क-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र से आरम्भ होकर इस विद्या ने अनेक रूप बदले। पहले यह आत्म विद्या हुई, फिर मनोविद्या। उसके उपरान्त चेतन विद्या और फिर मनो-व्यवहार की विद्या।[3] इस परिवर्तन के फलस्वरूप मानसिक विषयों के सम्बन्ध में निरीक्षण परीक्षण और सामान्यीकरण की आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग होने लगा।[४] मनुष्य के मन के ऊपरी स्तरों से संतुष्ट न होकर मन के भीतरी स्तरों का भी अध्ययन आरम्भ हुआ और मनोविज्ञान को मनोविश्लेषण का रूप प्राप्त हुआ। यही नहीं मनोविज्ञान द्वारा व्यक्ति का अध्ययन सामाजिक दृष्टि से किया जाता है। व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक दशा का महत्व दूसरे व्यक्तियों की दृष्टि से है। अतः मनोविज्ञान का एक सामाजिक पक्ष भी है जो कि

---

७६ भा० संस्कृ० इ० पु० २५०, ५१।

१ साइ० पु० १०।

२ वही पु० १।

३ मनो० पु० ५।

४ मन की बातें पु० ५।

व्यक्तियों के समूहों एवम् समाज की गुत्थियाँ सुलझाना चाहता है।[५] इस अध्ययन का स्वरूप पाँच पद्धतियों—अंतर्दर्शन निरीक्षण प्रयोग तुलना और मनोविश्लेषण द्वारा निश्चित होता है। इसका क्षेत्र जीवन की वे गूढ़ और रहस्यमयी प्रवृत्तियाँ हैं जो मानव समाज की सभ्यता और संस्कृति में सहायक होती है।[६]

मनोविज्ञान की विस्तृत चर्चा यहाँ न तो अभीष्ट है और न उचित ही। कवि कर्म के लिए आज यह विद्या आवश्यक ही समझी जाती है और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मनोविज्ञान का ज्ञान उपादेय होता है। परन्तु नवीन विद्या होने के कारण उसे अपने वर्तमान रूप में हमारे प्राचीन साहित्य में नहीं पाया जा सकता। फिर भी जीवन की वे गूढ़ तथा रहस्यमयी प्रवृत्तियां जो मानव-समाज की सभ्यता और संस्कृति में सहायक होती हैं हमारे आलोच्य विषय के साथ जुड़ी हुई है। इसलिए मनोविज्ञान का किसी-न-किसी रूप में नारी-चित्रण के साथ भी सम्बन्ध रहा है। हमारे मनीषियों एवं कवियों ने नारी-चित्रण में व्यवहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया है। इन मनीषियों के पास आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की तरह साज-सज्जा साधन-सुसज्जित प्रयोग शालायें नहीं थीं। उनकी प्रयोगशाला थी नित्य प्रति बदलता रहनेवाला समाज। अतः उनके सामान्यीकरण में अंतिमता भले ही न आई हो पर वे एक निश्चित धारणा अवश्य निर्धारित कर चुके थे। और फिर, विज्ञान तथा दर्शन की खोज में अंतिमता आती भी तो नहीं। अतः उचित यही है कि हम उन सिद्धान्तों की चर्चा पर विचार करें जो नारी के मनोवैज्ञानिक विकास में सहायक सिद्ध हुई हैं।

नारी-जीवन के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के विकास को दृष्टिगत रखते हुए, सर्व प्रथम हमारा ध्यान वात्स्यायन कृत काम-सूत्र की ओर जाता है। काम-सूत्र इस विषय में लिखा गया सर्वप्रथम ग्रन्थ है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि वात्स्यायन के पूर्व भी अनेक आचार्यों ने ऐहिक सुख भोगों के नाना अंगों पर ग्रन्थ लिखे थे और इन सबका सार संग्रह करके सन् ई० की पहली या दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन ने अपना प्रसिद्ध काम-सूत्र लिखा।[७] स्वयं वात्स्यायन ने काम-शास्त्र की परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा है कि महादेवजी के अनुचर नन्दी ने सर्वप्रथम एक हजार अध्याय में काम-सूत्र की रचना की।[८] फिर महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने काम-शास्त्र का पाँच सौ अध्याय में संक्षिप्त निरूपण किया।[९] इसके पश्चात् बभ्रु के पुत्र पांचाल ने

---

५ शिक्षा शास्त्र पृ० १६६।
६ वही पृ० १६८।
७ हि० सा० भू० पृ० १९४।
८. कामसूत्र पृ० १, १ ८।
९. वही पृ० १ १, ९।

साधारण साम्प्रयोगिक कन्या-संप्रयुक्तक भार्याधिकारिक पारदारिक वैशिक और औपनिषदिक—ऐसे सात अधिकरणोंवाले एक सौ पचास अध्यायों में काम-शास्त्र का विवेचन किया।[10] बाद की परम्परा के अनुसार दत्तकाचार्य ने पाटलीपुत्र की गणिकाओं की प्रेरणा से बाभ्रव्यकृत काम-शास्त्र के छठे वैशिक अधिकरण को पृथक किया।[11] इसी प्रकार चारायण ने साधारण सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक घोटकमुख ने कन्या-सम्प्रयुक्तक गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक गोणिका पुत्र ने पारदारिक और कुचुमार ने औपनिषदिकाधिकरण को पृथक कहा। इसके बाद ग्रन्थों के वृहद् स्वरूप अथवा एकांगिता को दूर करने की दृष्टि से कामसूत्र का प्रणयन हुआ।[12]

उक्त परम्परा को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानव-जीवन के गूढ़ एवम् रहस्यमय व्यापारों भावों तथा प्रवृत्तियों के अध्ययन के प्रयत्न उस काल से ही प्रारम्भ हो गये थे। चिन्तन एवम् लोक-अध्ययन के पश्चात् ही वे कुछ शास्त्रीय तथ्य लोकार्थ रख सके होंगे। नारी विषयक उनकी धारणा का सही स्वरूप क्या था यह कह सकना असम्भव-सा हो सकता है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी उनके अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु अवश्य थी। अधिकरणों के विषयों पर दृष्टिपात करने से यह बात जानी जा सकती है। कामसूत्र में स्थान स्थान पर उक्त आचार्यों के मतों का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट है कि वात्स्यायन के पूर्व ही काम को आधार मानते हुए नारी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ हो गया था।

कामसूत्र यौन मनोविज्ञान का सर्वप्रथम सुव्यवस्थित स्वरूप प्रस्तुत करनेवाला ग्रंथ माना जा सकता है। काम का स्वरूप निरूपण करते हुए वात्स्यायन ने 'आत्मा से संयुक्त अन्तर्मन से अधिष्ठित श्रोत्र त्वक् चक्षु, जिह्वा और घ्राणेन्द्रियों की अपने अपने विषयों में अनुकूल रूप से प्रवृत्त प्रवृत्ति को काम माना है। यह प्रवृत्ति जब स्पर्श सयोगाग्नि द्वारा आनन्द की विशेष प्रतीति कराती है तो प्रधान काम माना जाता है और शेष प्रतीतियां अप्रधान रहती हैं।[13] काम को स्त्री-पुरुषों के संप्रयोग के पराधीन होने से उपाय की आवश्यकता रहती है और शरीर की स्थिति के लिए काम भी आहार की तरह समान धर्मी है। अतः वात्स्यायन के मतानुसार इस उपाय का ज्ञान कामसूत्र से होता है।[14]

---

१० कामसूत्र १, १ १०।

११ वही १ १, ११।

१२ वही १, १, १३: १४।

१३ कामसूत्र १।२।११, १२।

१४ वही १।२।१४, १७ १२।

काम के स्वरूप एवम् प्रयोजन पर विचार करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि वात्स्यायन ने सैकड़ों वर्ष पूर्व काम को एक प्रवृत्ति ही माना था और इस प्रवृत्ति द्वारा आनन्द की विशेष प्रतीति के हेतु ही उपाय ज्ञान की दृष्टि से कामसूत्र की रचना की थी। यह उपाय ज्ञान मानव-जीवन के गूढ़ एवम् रहस्यमय व्यापारों चेष्टाओं तथा प्रवृत्तियों का ही अध्ययन प्रस्तुत करते हुए चला है। कामसूत्र की विषय-सामग्री के अंतर्गत नारी-मनोविज्ञान का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है वह संक्षेप में इस प्रकार है —

'साधारण अधिकरण' के अंतर्गत नारी विषयक तथ्यों का जो मनोवैज्ञानिक स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है वह यह है कि नारी को काम-प्रवृत्त करने के हेतु वातावरण एवम् प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। कन्या पुनर्भू एवम् वेश्या की अपनी-अपनी कमजोरियां हैं। कला-ज्ञान द्वारा वातावरण की सृष्टि कर इन कमजोरियों का परिहार भी किया जा सकता है और इन कमजोरियों का लाभ भी उठाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कला ज्ञान उस वातावरण की सृष्टि करता है जो व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध होता है। कला ज्ञानी नारी राजा से सदा सम्मानित गुणियों से प्रशंसित सार्वभौम अभिगम्य एवम् लक्ष्यभूता हो जाती है। पतियों को वश में कर सकती है तथा वियोग-काल एवम् निर्धनावस्था में भी आनन्द-पूर्वक रह सकती है।[15] यही वातावरण नारी-मन को विचलित भी कर सकता है क्योंकि कलाओं में चतुर, वाचाल चाटुकारक मनुष्य बिना जान-पहचान के भी स्त्रियों के चित्त को हर लेता है।[16] इसका मनोवैज्ञानिक भाव यह लगाया जा सकता है कि स्त्री का मन चातुर्य वाचालता तथा चाटुकारिता का भूखा होता है और इनके वशीभूत हो सकता है।

'पर स्त्री गमन'[17] के कारणों से भी नारी-विषयक मनोभावों का जो दुर्बल एवं सबल पक्ष दृष्टिगोचर होता है उसके अनुसार समर्थ व्यक्ति की पत्नी अपने प्रेमी के धन से पति को विमुख कर सकती है। कार्य-सिद्धि धन-लाभ ऐश्वर्य-भोग में सहायक सिद्ध हो सकती है। निर्धनता दरिद्रता बेरोजगारी आदि को दूर कर सकती है। अनुरक्त होकर अतृप्त रह जाने पर रहस्योद्घाटन द्वारा हानि पहुँचा सकती है, कलंकित कर सकती है अथवा दोषी न होने पर भी दोषी सिद्ध कर सकती है। अन्य प्रेमिका प्राप्ति का माध्यम अथवा दुर्लभ प्रेमिका प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती है।

---

१५. कामसूत्र १।३।१८ से २०। १७ वही १।५।८ से २१।
१६ वही १।३।२१।

रागात्मकता के साथ प्राप्त होनेवाले उक्त प्रसंग वात्स्यायन द्वारा नारी के व्यवहार वादी मनोवैज्ञानिक स्वरूप को हमारे सामने उपस्थित करते हैं।

सांप्रयोगिक अधिकरण के अंतर्गत वात्स्यायन ने यौन-मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी को तीन नायिकाओं—मृगी-वड़वा एवम् हस्तिनि के रूप में देखा है।[१८] भाव प्राप्ति के सम्बन्ध में स्त्रियों के विषय में उत्पन्न मतभेद पर विचार करते हुए वात्स्यायन द्वारा इस मत का प्रतिपादन किया गया है कि पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी आनन्द की उपलब्धि होती है। उपाय-भेद प्राकृतिक है, पुरुष कर्ता है युवती अधिकरण है। कर्ता तथा आधार का कार्य-व्यापार अलग-अलग है। अतः प्राकृतिक उपाय-भेद से व्यापार भेद हो जाता है। पुरुष इस व्यापार में स्वयं को कर्ता समझ कर अनुरक्त होता है तथा युवती स्वयं को भाव-प्राप्ति का आधार समझ कर अनुरक्त होती है।[१९] रति-सुख के विभिन्न उपायों एवम् उपादानों की चर्चा से यह मनोवैज्ञानिक तथ्य निकलता है कि स्त्री की राग-वृद्धि में विचित्रता सहायक होती है क्योंकि पारस्परिक राग-विचित्रता से ही पैदा किया जाता है।[२०]

वात्स्यायन द्वारा नारी की रागात्मक प्रवृत्ति को जाग्रत करनेवाली वस्तुओं में देशोपचार को भी महत्त्व दिया गया है किन्तु साथ ही वे स्वर्ण नाभ के इस मत से कि "देशाचार से स्वभाव के उपचार अधिक बलवान है। अतः प्रकृति के विरुद्ध देश के आचार भी नहीं करना चाहिए, सहमत जान पड़ते हैं क्योंकि कालक्रम के अनुसार एक देश के उपचारादि दूसरे देश में पहुँच जाया करते हैं।[२१] इस प्रकार वात्स्यायन ने कालानुसार होनेवाले मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को भी स्वीकार किया है।

वात्स्यायन द्वारा स्त्रियों को भिखारिनी भिक्षुणियां नटियों शकुन परीक्षा करनेवाली स्त्रियों व्यभिचारिणियों एवम् जादू-टोना करनेवालियों के संसर्ग से दूर रहने की सलाह दी गई है।[२२] साथ ही वे दुर्वचन बुरी दृष्टि दूसरी ओर मुख करके बातें करना द्वार पर खड़े होना देखना वाटिकाओं में सलाह करने और एकान्त में बहुत समय तक खड़े रहने का निषेध करते हैं।[२३] इस वर्णन द्वारा वात्स्यायन ने यह मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत किया है कि स्त्रियों में भावुकता की मात्रा अधिक होती है। किसी संवेगात्मक आवेग में वे शीघ्र ही आ जाती हैं और संवेगावेग के कारण उनकी तर्क शक्ति का ह्रास हो जाता है।

---

१८. कामसूत्र २।१।१।
१९. वही २।१।२३, २६।
२०. वही २।४।२५।
२१. वही २।५।३४ से ३५।
२२. वही ४।१।६।
२३. वही ४।१।२९।

'स्त्री-पुरुष शीलावस्थापन प्रकरण' के अंतर्गत वात्स्यायन गोणिका पुत्र के इस मत को उद्धृत करते हुए कि 'स्त्री किसी भी उज्ज्वल पुरुष को देखकर चाहती है और पुरुष भी उज्ज्वला स्त्री को देख कर चाहता है किन्तु अपेक्षा से रुके हुए एक-दूसरे में प्रवृत्त नहीं होते' यह प्रगट करते हैं कि यह विशेषता स्त्री में अधिक होती है।[२४] साथ ही वे इस चाह-व्यावर्तन के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। इस व्यावर्तन के प्रमुख कारण हैं पति का सामीप्य एवम् प्रेम अपत्य की अपेक्षा आयु का ढलाव तथा दुःख अनादर की आशंका दुष्प्राप्यता की शंका हाथ से निकल जाने अथवा रहस्योद्घाटन हो जाने का भय तेजस्विता का भय कला चातुर्य के समक्ष लज्जा भाव अथवा अनादर अनिष्ट की आशंका सदोष अथवा स्वजनों का भय धर्माधर्म एवम् पति प्रेषित की शंका आदि है।[२५] इससे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य गृहीत किया जा सकता है कि नारी में संवेग का आधिक्य होने के बाद भी पीड़ा प्राप्त करने पर वह अपने संवेगों को नियंत्रित कर सकती है और इस संवेग-नियंत्रण का प्रधान कारण नारी की सामाजिक स्थिति है। विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों के फलस्वरूप नारी में यह व्यावर्तन-प्रवृत्ति भी जाग्रत हो जाती है।

उक्त तथ्यों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि वात्स्यायन द्वारा कामसूत्र की रचना करते समय नारी का जो स्वरूप उपस्थित किया गया वह केवल कामशास्त्रीय ही नहीं मनोवैज्ञानिक भी था। वात्स्यायन के पश्चात् भी काम-शास्त्र संबंधी ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा किन्तु ये ग्रन्थ काम-विषयक विशेषताएं अधिक रखते हैं मनोवैज्ञानिक विशेषताएं कम। साथ ही न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ कामसूत्र का प्रभाव इन ग्रन्थों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नारी-विषयक मनोवैज्ञानिक सामग्री का प्राचुर्य रस सिद्धान्त एवम् नायिका भेद के अंतर्गत भी पाया जाता है। रस सिद्धान्त और नायिका भेद को यदि मूल प्रवृत्तियों एवम् संवेगों की साहित्यिक व्याख्या माना जाये तो अत्युक्ति न होगी। वास्तव में देखा जाये तो रस सिद्धान्त तथा नायिका-भेद के अंतर्गत नारी का जो मनोवैज्ञानिक व्यवहारवादी स्वरूप उपस्थित किया गया है वह नारी-संवेगों एवम् मानवीय मूल प्रवृत्तियों पर ही प्रकाश नहीं डालता अपितु वातावरण एवम् तत्कालीन संस्कृति से उत्पन्न प्रभावों के अंतर्गत पाये जानेवाले व्यवहारवादी अन्तर को भी स्पष्ट करता है।

फ्रायड की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति नारी-मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी एक नवीन -क्षेत्र का वैज्ञानिक सूत्रपात करती है। यद्यपि फ्रायड के पूर्व भी नारी की यौन

कामसूत्र ५।१।८ ९।

२५ वही ५।१।१८ से ४२।

प्रवृत्ति को लेकर अनेक व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न मत प्रगट किये गए हैं। नारी के सम्बन्ध में पुरुषों द्वारा प्रगट किये गए इन मतों में विभिन्नता के साथ वैज्ञानिक सूझ का तो अभाव है ही साथ ही वे मत-कर्ताओं के यौन-संवेगों एव आकर्षणशीलता द्वारा रंगीन बना दिये गए हैं।[२६] गाल (Gall) के मतानुसार पुरुषों की यौनेच्छा स्त्रियों से कहीं अधिक बलवती होती है। लासन टेट (Lawson Tait) ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कहा है कि पुरुषों की काम प्रवृत्ति प्रबल एवं स्त्रियों की काम-प्रवृत्ति कमजोर होती है।[२७] वेनटे (Venette) के मतानुसार प्रेम के क्षेत्र में तुलनात्मक दृष्टि से पुरुष स्त्री के सामने बच्चे हैं। इस मामलों में स्त्रियों की कल्पनाएँ अधिक सजीव होती हैं और प्रेम-विचार के लिए उनके पास अधिक फुर्सत रहती है। मांटेने (Montaigne) ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुए यह मत प्रगट किया है कि प्रेम स्त्रियों का वह अनुशासन है जो उनकी शिराओं में उत्पन्न होता है।[२८]

सत्रहवीं शताब्दी के अधिकांश चिकित्सकों ने निश्चयात्मक रूप से यह मत प्रगट किया है कि इच्छा एवं आनन्द दोनों ही स्त्रियों में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।[२९] फेरेंड (Ferrand) की राय में निस्सन्देह स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक भावुक होती है और प्रेम के दुष्परिणामों का प्रभाव स्त्री को ही अधिक पीड़ित करता है।[३०] स्त्री मनोवैज्ञानिक एलन के (Ellen Key) के मतानुसार स्त्री की प्रेम प्रवृत्ति मौन होकर भी अधिक बलवती होती है।[३१] किश के मतानुसार नारी में यौन-प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि जीवन के निश्चित काल तक अपनी मूल शक्ति द्वारा नारी प्रवृत्ति को प्रभावित करती रहती है।[३२]

नारी की यौन-प्रवृत्ति को लेकर मत-मतान्तर चले आ रहे हैं। एक दल की विचारधारा जहाँ नारी में यौन-प्रवृत्ति का प्राबल्य पुरुष से अधिक बताती है वहीं दूसरे दल की विचारधारा के अनुसार पुरुष में यौन प्रवृत्ति का प्राबल्य नारी की अपेक्षा अधिक होता है। एक तीसरी विचारधारा के अनुसार स्त्री और पुरुष दोनों ही में यौन-प्रवृत्तिमान रूप से पाई जाती है।[३३] नारी में पाई जानेवाली निष्क्रियता एवं सक्रियता ही इस मत-मतान्तर के मूल में काम करती है। सदियों से उलझे चले *आए इस विषय पर एक राय होना कठिन है किन्तु सिग्मण्ड फ्रायड से काम प्रवृत्ति* को लेकर फ्रायड द्वारा जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, वह संक्षेप में इस प्रकार है —

---

२६ साइको० सैक्स पृ० १९३।
२७ वही पृ० १९४, ९५।
२८ वही पृ० १९८।
२९ वही पृ० १९९।
३० वही पृ० १९९।
३१ वही पृ २०।
३२ वही पृ० २०१।
३३ वही पृ० २०१।

मनुष्य की मूल शक्ति कामशक्ति है। इसके सुचारु रूप से प्रकाशन करने पर ही मनुष्य स्वस्थ रहता है। इसके प्रकाशन में बाधा होने से विक्षिप्तता तथा अन्य मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है। कामशक्ति के प्रकाशन की चार अवस्थाएँ हैं—आत्म-प्रेम माता-पिता का प्रेम समलिंगी प्रेम और विषम लिंगी प्रेम।[३४]

फ्रायड की धारणा है कि सभी मानसिक रोगों का प्रधान कारण प्रेम की मनोवृत्ति में विकार का पैदा हो जाना है। विकृत प्रेम भावना ही रोग है।[३५] विकृतियों के कारण यौन-उद्देश्य सक्रिय एवं निष्क्रिय रूपों में मिलता है।[३६] इन विकृतियों में कामजन्य प्रिय पीड़न एवं कामजन्य आत्म-पीड़न का महत्वपूर्ण स्थान है।[३७] विकृतियाँ इस बात को व्यक्त करती हैं कि यौन-प्रवृत्ति को कुछ मानसिक शक्तियों द्वारा रुद्ध होना पड़ता है जिनमें लज्जा और अरुचि प्रमुख हैं।[३८]

फ्रायड के मतानुसार यौन-कर्म की दृष्टि से कुछ पुरुष ऐसे होते हैं जिनका पुरुषों के प्रति ही लगाव होता है और कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जिनका लगाव पुरुष के प्रति न होकर स्त्रियों के प्रति होता है। इस प्रकार की विरोधी यौन भावना को फ्रायड द्वारा "इनवर्टस्" की संज्ञा प्रदान की गई है और उनकी इस प्रवृत्ति को "इन्वर्तन" माना है।[३९] स्त्रियों में पाई जानेवाली समलिंगी रति भावना इसी का परिणाम है।

फ्रायड की एक शिष्या डेमन का कथन है कि स्त्रियों को सम लिंगी रति भावना की दृष्टि से उनके अन्तर को व्यक्त करते हुए दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम के अन्तर्गत वे स्त्रियाँ आती हैं जो अपने उद्देश्य एवं आचरण दोनों ही में मर्दानगी का प्रदर्शन करती हैं। उनकी शारीरिक बनावट से भी यही व्यक्त होता है। उनकी कण्ठ-ध्वनि बालों का उगना अथवा उरोजों का अविकसित रह जाना इसके उदाहरण हैं। द्वितीय के अन्तर्गत वे स्त्रियाँ आती हैं जिनकी शारीरिक बनावट तो नारी सुलभ होती है किन्तु जिनका व्यवहार मर्दानगी का प्रदर्शन करता है। यह सम लिंगी रतिशीलता या तो तरुणावस्था के अजित व्यवहार के अन्तर्गत बाद के जीवन में भी स्त्री सुलभ आचरण के भीतर चलती रहती है या न्यूनाधिक रूप से मर्दानी आचरण ग्रहण कर लेती है।[४०] इस प्रकार के प्रदर्शन द्वारा वे स्त्रियाँ अपनी लैंगिक हीनता को दबाने का प्रयत्न करती हैं।[४१] स्त्रियों का समलिंगी रति-प्रेम विषम रतिवान प्रेम से कहीं अधिक भावुक एवं भयंकर होता है।[४२]

---

३४ भापु० मनो० पृ० १०८।
३५. वही पृ० १११।
३६ थ्री ऐसे० पृ० १६।
३७ वही पृ० १७।
३८. वही पृ० ४०।
३९. वही पृ० १४।
४० साइ० आफ वुमन पृ० २२६।
४१ वही पृ० २२८।
४२ वही पृ० २६१।

शैशव अथवा बचपन की अपेक्षा कैशोर काल तथा तरुणावस्था नारी-मनोविज्ञान को समझने में अधिक-सहायक सिद्ध होती है। मनोविज्ञान के अध्ययन से हम नारी विषयक निम्न तथ्यों को ग्रहण करते हैं —

[१] कैशोर का प्रारम्भ मनोवैज्ञानिकों ने १२ १३ वर्ष से माना है। लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा यह काल पहले से प्रारम्भ हो जाता है।[४३]

[२] कैशोर काल के प्रारम्भ से आत्म-चेतना की भावना के साथ लज्जा और संकोच लड़कियों में अधिक होता है। यह शरीर तथा कुछ गुप्त प्रवृत्तियों के शीघ्र विकास का फल होता है।[४४]

[३] लड़कियों में चर्बी की मात्रा अधिक होती है और वे लड़कों से एक या दो वर्ष पूर्व ही तरुणावस्था प्राप्त कर लेती हैं।[४५]

[४] मासिक धर्म के प्रथम दर्शन के साथ ही स्त्रियों के सन्तानोत्पत्ति संबन्धी सभी अवयव प्रौढ़ होने लगते हैं। प्रौढ़ता प्राप्ति के विभिन्न समय का कारण वंशानुक्रम तथा वातावरण पर निर्भर करता है। गर्म देश में रहनेवाली लड़कियाँ अथवा जिनका रहन-सहन विलासपूर्ण होता है उनमें काम सम्बन्धी प्रौढ़ता अधिक शीघ्र आ जाती है। ठंडे देश की लड़कियाँ अथवा जिन्हें अपने जीवन-यापन के लिये नित्य कठिन श्रम करना पड़ता है वे यह प्रौढ़ता दूसरों की अपेक्षा कुछ देर से पाती हैं।[४६]

[५] कैशोर में बालिका की आवाज पहले से अधिक मधुर एवम् कुछ धीमी हो जाती है, कन्धे कुछ अधिक चौड़े हो जाते हैं और मांस के बढ़ने से शरीर के विभिन्न अवयव पहले से अधिक मोटे हो जाते हैं।[४७]

[६] मासिक धर्म के कारण स्तन तथा उपांग के विकास से बालिका पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। उसकी लज्जा एवम् चिन्ता बढ़ जाती है। इस भाग के आकार को छिपाने के लिए वह कभी-कभी कसा सीना कर तथा झुककर चलने का प्रयत्न करती है। इससे उसमें कुछ सिकुड़ कर चलने की आदत-सी पड़ जाती है।[४८]

[७] प्रथम मासिक धर्म के साथ ही बालिका में घृणा एवम् डर की भावना का प्रादुर्भाव हो जाता है। ऐसे समय में उसका चिड़चिड़ा और असामाजिक हो जाना

---

४३ किशोर मनो॰ भू॰ पृ॰ ११।
४४ वही पृ १०।
४५ इनसाइ॰ ब्राक्लाइ॰ पृ २१७।
४६ किशोर मो॰ भू॰ पृ ११।
४७ वही पृ॰ १२।
४८ वही पृ॰ १६।

आश्चर्यजनक नहीं होता। उदासीनता आलस्य तथा थकावट के लक्षण भी दृष्टिगोचर होते हैं।[४९]

[८] कैशोर के प्रारम्भिक काल से ही बालिका के व्यवहार पर प्रभाव पड़ने लगता है। मानसिक अशान्ति असामाजिकता एवम् एकान्तवास के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। दूसरों द्वारा किए गए कार्यों के प्रति अरुचि हट क्रोध आलस्य उदासीनता अपने से घृणा तथा समाज के प्रति एक प्रकार का द्वेष भाव उदित होने लगता है। काम-सम्बन्धी बातों को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, मास घुमाकर एक कोने में बैठने की आदत और भावुकतावश अथवा अपना विद्रोह प्रगट करने के लिए वे प्रायः आँखों में आँसू ले आया करती हैं।[५०]

[९] कैशोर काल से ही बालिकाओं में निम्न संवेग से[५१] का प्रादुर्भाव हो जाता है:—

चिन्ता चिन्ता प्रायः काल्पनिक कारणों से उत्पन्न होती है। सौन्दर्य पढ़ाई और विवाह अथवा प्रेम ही इसके कारण होते हैं।

भय भय का संवेग अर्जित होता है अर्थात् अपने अनुभवों के आधार पर व्यक्ति इसे सीखता है। प्राय भय के कारण व्यक्तिगत वस्तु विषयक अथवा सामाजिक होते हैं। मानसिक अपरिपक्वता अथवा वातावरण के प्रभाव से स्त्रियों में भय की मात्रा अधिक होती है।

द्वेष द्वेष का रूप सामाजिक होता है। यह प्रायः क्रोध से उत्पन्न होता है। बाधाएं सामाजिक अवरोध अथवा प्रतिद्वन्द्विता इसका कारण होती हैं। कुण्ठा के कारण प्रायः स्त्रियों में द्वेष की भावना अधिक पाई जाती है।

क्रोध स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति में अवरोध उत्पन्न होने पर क्रोध का उदय होता है। क्रोध का कारण प्रायः सामाजिक हुआ करता है। किशोर बालिकाएं अपनी इच्छा के अवरोध व्यंग अपमान अथवा चिढ़ाए जाने पर क्रोधित हो जाया करती हैं।

ईर्ष्या ईर्ष्या का सम्बन्ध किसी एच्छिक वस्तु से होता है। इसका कारण व्यक्तिगत रहता है। प्रतिद्वन्द्विता अथवा बराबरी करने की भावना ईर्ष्या के मूल में

---

४९ किशोर मनो० पू० पृ० ३६, ४०।

५० किशोर मनो० पू० पृ ४१ से ४३।

५१ इनसाइ० ब्राक साइ० पृ० ४६ से ५६ ११२ से १४०, २१५ से २१८, ६२० से ६२० तथा किशोर मनो० पू० पृ० ६६ से ७९ तक।

होती है। इसकी प्रतिक्रियाएं प्रायः शारीरिक होती हैं। यह निन्दा का रूप ग्रहण कर लेती है। स्त्रियों में निन्दा करने की आदत ईर्ष्या का ही परिणाम है।

चिढ़ः कैसन (Cason) के मतानुसार दूसरों का विचित्र व्यवहार चिढ़ का कारण होता है। किशोर काल में चिढ़ने की प्रवृत्ति कम होती है परन्तु प्रौढ़ हो जाने पर अथवा बुढ़ापा आ जाने पर यह प्रवृत्ति स्वभाव का एक अंग बन जाती है। मनोनुकूल वातावरण के न मिलने पर स्त्रियाँ प्रायः चिढ़ चिढ़ी हो जाया करती हैं।

जिज्ञासाः यह प्रवृत्ति बचपन में बहुत प्रबल होती है। मानसिक विकास के साथ ही जिज्ञासा के स्तर में भी वृद्धि होती है। युवतियों के कारण प्रायः जिज्ञासा का दमन करना पड़ता है जो कुण्ठा में परिणित हो जाती है। सामाजिक वातावरण स्त्रियों की जिज्ञासा-पूर्ति में बाधक होता है इसलिए नारी की जिज्ञासा वृत्ति दमित वासनाओं अथवा कुण्ठा में परिणित हो जाती है।

स्नेहः स्नेह के मूल में आनन्द की भावना रहती है। बचपन की अपेक्षा कैशोर में यह संवेग अधिक प्रबल होने लगता है। नियंत्रण के कारण अथवा स्नेह प्रकाशन में अवरोध उपस्थित होने पर स्त्रियों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

आनन्दः आनन्द उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत-कुछ निर्भर होता है। पर साथ ही मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार चार प्रकार की अन्य स्थितियाँ भी आनन्द की उपलब्धि में सहायक होती हैं। प्रथम योग्यतानुसार वातावरण की स्थिति है द्वितीय हँसी की बात को पहचानने की तृतीय अप्रत्याशित स्थिति और चौथी स्थिति यह है जिसके द्वारा अपनी उत्कृष्टता का आभास मिलता है। हीनता ग्रन्थी स्त्रियों के आनन्द में बाधक होती है।

प्रायः यह देखा जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक भावुक होती हैं। किसी संवेगात्मक आवेग में वे शीघ्र आ जाती हैं किन्तु प्रौढ़ता प्राप्त करने पर स्त्रियाँ अपने संवेगों पर पुरुषों की अपेक्षा अधिक नियंत्रण रखती हैं।

[१] व्यक्तिगत रुचियों का प्रारम्भ नारी में किशोर काल से ही हो जाता है। लड़कियाँ लोगों को यह दिखलाना चाहती है कि वह स्त्री-पुरुषों से सम्पन्न हैं। उनका अधिकांश समय अपने शरीर को सजाने में जाता है। अपने को सुन्दर और आकर्षक सिद्ध करने के लिए वे अपने शरीर की स्वच्छता बोलने के ढंग तथा हाव-भाव पर बहुत ध्यान देती हैं।[५२] वस्त्रों के सम्बन्ध में वे अपनी माँ या अन्य स्त्रियों का अनुसरण

---

५२ किशोर मनो० श० पृ ७८।

करती हैं। कभी-कभी वे प्रचलित रीति के प्रतिकम भी चली जाती हैं परन्तु शीघ्र ही प्रचलित रीति के अनुसार चलने लगती हैं।[४३] उनमें महत्वाकांक्षा की मात्रा कम किन्तु स्वप्नदर्शिता अधिक होती है। कैशोर काल उनके लिए अपनी तरंगों में डूबे रहने का समय होता है। कैशोर के प्रारम्भ में तरंगें बहुधा सुखान्त ही हुआ करती हैं। मध्य कैशोर में कल्पनाओं का सम्बन्ध निराशा चिन्ता भय और निरसाह से अधिक होता है।[४४] मन-तरंगों में डूबी रहने के कारण वे प्राय खोई-खोई-सी लगती हैं।

[११] मनोरंजन सम्बन्धी रुचियों की दृष्टि से भी कशोर काल से ही नारी में रुचि भेद पाया जाता है। ब्लिटसे के मतानुसार लड़कियाँ प्रत्येक अवस्था में लड़कों से अधिक वस्तुएँ एकत्रित करती हैं। संग्रह-वृत्ति के साथ-साथ उनमें शृंगार-सौंदय-प्रसाधनों को एकत्रित करने की वृत्ति पाई जाती है।[४५] इसके साथ ही उनकी रुचि कैशोर के आगमन-काल से ही संवेगात्मक भावनाओं से पूर्ण साहित्य के पढ़ने की ओर जाती है। हिरलक के अनुसार लड़कियाँ रहस्यपूर्ण कहानियाँ, उपन्यास तथा प्रेम सम्बन्धी कहानियाँ पढ़ने में अधिक रुचि रखती हैं।[४६] संगीत एवम् नृत्य के प्रति भी उनकी रुचि अधिक रहती है। काव्य की संवेगात्मक भावनाओं का प्रभाव लड़कियों पर अधिक पड़ता है।

[१२] मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार प्रेम के आदर्श का विकास बचपन से ही प्रारम्भ हो जाता है। ६ ७ वर्ष की अवस्था तक लड़के-लड़कियाँ आपस में खेलना पसन्द करते हैं। आठवें वर्ष के प्रवेश-काल से प्राय लड़की लड़कियों के बीच खेलना पसन्द करती है। १४ वें वर्ष के बाद प्राय दोनों का आकर्षण जाग्रत होता है। कन्र फील्ड के अनुसार बचपन से ही लड़के व लड़कियाँ एक-दूसरे के प्रति अनजान में आकर्षित होने लगते हैं। किशोर के सामने यदि यह पूर्व निश्चित आदर्श न होता तो प्रथम भेंट पर सच्चे प्रेम का उत्पन्न होना मनोवैज्ञानिक सत्य न होता।[४७] मध्य कैशोर में प्रेम समलिंगी और विषमलिंगी दोनों रूपों में पाया जाता है। लड़कियों की लड़कों के प्रति अरुचि भावना अधिक कड़ी और अधिक समय तक रहती है।[४८]

[१३] लिंग भेद की दृष्टि से मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों ने नारी-हीनता के परम्परागत सिद्धांत को गलत बताया है। रंग-बोध की मात्रा स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।[४९] विवरण-विस्तार एवम् ध्यान-परिवर्तन की शीघ्रता की दिशा

---

४३ किशोर मनो० पु० पृ० ७८७२।
४४ वही पृ० ८१।
४५ वही पृ० १०२।
४६ वही पृ० १४६।
४७ वही पृ० १४७।
४८ वही पृ० १४७।
४९ डिफ० साइ० पृ० १४७।

में भी वे पुरुषों से आगे हैं।[९] अनेक बौद्धिक प्रयोगों में भी नारी पुरुषों से अग्रणी है। जहाँ तक शब्दभंडार अथवा भाषा का सम्बन्ध है स्त्रियाँ शैशवकाल से प्रौढ़त्व तक पुरुषों से आगे ठहरती हैं। विभिन्न प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्कूल-पूर्वावस्था में लड़कियों का शब्दज्ञान लड़कों से अधिक रहता है वे वाक्य-रचना का प्रारम्भ भी लड़कों से पूर्व करती हैं और वाक्यों में अधिक शब्दों का प्रयोग करती हैं। पठन क्रिया में भी उनकी प्रगति द्रुत होती है।[११] स्मरण-शक्ति के प्रयोगों में भी वे लड़कों से आगे हैं।[१२] जहाँ तक विचारशील प्रगति का प्रश्न है, उन्हें लड़कों से अधिक सफलता मिलती है।[१३] रुचि अथवा दृष्टिकोण भेद के अनुसार सम्पत्ति व्यापारिक मामलों एवम् खेल कूद मादमियों के बातचीत के विषय अधिक रहते हैं अन्य स्त्रियाँ तथा कपड़े स्त्रियों की बातचीत के सामान्य विषय हैं। लोगों के बारे में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक बातचीत करती हैं।[१४] आदर्श ज्ञान एवम् सामाजिक दृष्टिकोण के मामलों में भी लड़कियाँ प्रयोगों में लड़कों से आगे पाई गई हैं।[१५]

संवेगात्मक भावों की दृष्टि से लड़कों में आक्रामक वृत्ति दुस्साहस अथवा निवेदनों को ठुकराना हँसने-चिढ़ाने एवम् धूर-धूर्त करने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है जब कि लड़कियों में परोक्षता अंतर्मुखी व्यवहार बेलकूद से कतराना बड़ों के निकट रहने का प्रयत्न प्रशंसा-प्राप्ति एवम् सरलतापूर्वक समर्पण कर देना पाया जाता है।[१६] लड़कियाँ लड़कों की तरह शारीरिक कमजोरियों का प्रयोग न कर, भावात्मक उपमाओं का प्रयोग करती हैं। अपनी सामाजिक मर्यादा पर आघात होते देख कर वे पुरुषों की अपेक्षा शीघ्र क्रोधित हो जाती हैं और द्वेष की भावना भी उनमें अधिक होती है।[१७]

स्वप्नों के अध्ययन की दृष्टि से भी पता चलता है कि लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा विविध प्रकार के लोगों के स्वप्न और साथ ही अपने परिवार तथा घर के सपने अधिक मात्रा में देखा करती हैं।[१८] जहाँ तक अंतर्मुखी और बहिर्मुखी प्रवृत्ति के अन्तर का प्रश्न है पुरुष प्रायः मुँहफट स्वयं के साधनों पर कार्य करनेवाले सहायता ग्रहण करने में हिचकिचानेवाले सामाजिक अवसरों पर स्वयं को पृष्ठ-भूमि में रखनेवाले, पहनावे के मामले में तरद्दुद उठानेवाले पुरातन-पन्थी और आत्म-निरीक्षणशील होते हैं जब कि

---

१० डिफ०साइ० पृ० १४८।
११ वही पृ० १११।
१२ वही पृ० ११४।
१३ वही पृ० ११६।
१४ वही पृ० ११६।
१५ वही पृ० ११८।
१६ वही पृ० १७१।
१७ वही पृ० १७३।
१८ वही पृ० १७३।

स्त्रियाँ मैथुन के समय प्रचुर मानेवाली बिना योग्य कारण के उदास-पुनम अनुभव करनेवाली साधारण मामलों के निर्णय में भी हिचकिचाहट अनुभव करनेवाली सोच विचार कर काम करनेवाली और शीघ्रता से चोट अनुभव करनेवाली होती हैं।[११]

उक्त विवेचन को दृष्टिगत रखते हुए जब हम नारी के मनोविज्ञानिक विकास पर दृष्टि डालते हैं तो वात्स्यायन से बायड और उसके बाद की मान्यताएँ यही प्रगट करती हैं कि जहाँ तक नारी के मनोवैज्ञानिक विकास का प्रश्न है मनोविश्लेषण द्वारा उसकी कई गुत्थियाँ स्पष्ट हो चुकी हैं। मनोयौनिक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि नारी-हीनता की परम्परागत धारणा वास्तव में परम्परागत विश्वास मात्र है वैज्ञानिक सत्य नहीं। शैक्षणिक सांस्कृतिक अथवा अन्य प्रकार की सुविधाओं के अभाव में शारीरिक गठन के अन्तर तथा वातावरण वैभिन्य के प्रभाव से ही नारी के व्यक्तित्व विकास एवं संवेगात्मक स्वरूप में कुछ वैभिन्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु वह हीनता नहीं है। जहाँ वह समानता की भूमि पर, सम वातावरण में सम सुविधाओं का लाभ उठा रही है वहाँ उसने मनोवैज्ञानिक रूप से परम्परागत हीनता के विश्वास को उखाड़ फेंका है।

आध्यात्मिक विकास

भारतीय नारी के आध्यात्मिक विकास पर दृष्टि डालते समय हमारा ध्यान उस विचार-चिन्तन एवं जीवन-दर्शन की ओर आकर्षित होता है जिसे आध्यात्म-शास्त्र की संज्ञा प्रदान की जाती है। आध्यात्म-शास्त्र चिकित्सा-शास्त्र के समान चतुर्व्यूह है। जिस प्रकार चिकित्सा-शास्त्र रोग रोग-निदान आरोग्य तथा भैषज्य-इन चार तथ्यों के यथार्थ निरूपण में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार आध्यात्म-शास्त्र दुःख दुःख-हेतु, मोक्ष तथा मोक्षोपाय इस सिद्धांत चतुष्य को मूलभूत मानकर इनकी व्याख्या में यथा शक्ति प्रयत्नशील रहता है।[१] साथ ही भारतवर्ष में दर्शन तथा धर्म का तत्वज्ञान तथा भारतीय जीवन का गहरा सम्बन्ध है। त्रिविध ताप से संतप्त जनता की शान्ति के लिए, क्लेशमय संसार से आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति करने के लिए ही दर्शन-शास्त्र का आविर्भाव हुआ है। दर्शन-शास्त्र द्वारा सुचिन्तित आध्यात्मिक तथ्यों के ऊपर ही भारतीय धर्म की दृढ़ प्रतिष्ठा है।[२] अतः इस चिन्तन एवं विचारधारा के अन्तर्गत नारी की स्थिति पर विचार करना भी आवश्यक-सा है क्योंकि कान्यान्तरगत आनेवाले नारी-निन्दा एवं प्रशंसा के अनेक प्रसंगों का मूल इन्हीं विचारधाराओं में निहित है।

---

११. विक० साइ० पृ० १७१।

१ भारतीय दर्शन पृ० १०। २ वही पृ० ११।

साधारणतः जीवन के चार पुरुषार्थ—अर्थ, धर्म, मोक्ष और काम—माने गए हैं। इन चार पुरुषार्थों की साधना से ही जीवन सफल होता है। परन्तु भारतीय चिन्तन क्षेत्र में प्राणी मात्र के जीवन-यापन के लिए दो मार्गों—प्रेयो मार्ग तथा श्रेयो मार्ग—का निर्देशन है।[३] प्रेयो मार्ग में मनुष्य रमणीय विषयों की ओर आकृष्ट होकर संसार में प्रवृत्त होता है। इस प्रवृत्ति के मूल कारण राग तथा द्वेष हैं। श्रेयो मार्ग वास्तव में विषयोन्मुखी इन्द्रियों को बाह्य पदार्थों से बलात् खींचकर अन्तर्मुखी बनानेवाला मंगलमय मार्ग है जिसके लिए आत्म-संयम तथा बुद्धि की नितान्त आवश्यकता है।[४] भारतीय जन-जीवन जो धर्म द्वारा अनुप्राणित रहा है, इन्हीं दो मार्गों का अनुसरण करता आया है।

प्रेयो मार्ग का अनुसरण करते समय जीवन सांसारिक रहा है और इस सांसारिकता के बीच नारी की अवहेलना करना असम्भव है। श्रेयो मार्ग का रास्ता वास्तव में नारी-विरोध का रास्ता है। विषयोन्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाने के लिए जिस आत्म-संयम एवं बुद्धि की नितान्त आवश्यकता है उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए बाह्य पदार्थों से विषयोन्मुखी इन्द्रियों का मुक्त करना भी आवश्यक है और इन बाह्य पदार्थों में नारी का आकर्षण अथवा उसका सामीप्य भी श्रेयो मार्ग के लिए बाधक है। अतः प्रेयो मार्ग का दृष्टि-भेद नारी के मूल्यांकन में भी भेद-दृष्टि को जन्म देता है। उसकी प्रशंसा अथवा निन्दा का द्विविध स्वरूप भी जीवन-मार्ग की इसी द्विविधता का परिणाम कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जहाँ प्रवृत्ति-मार्ग प्रशंसामूलक है वहाँ निवृत्ति-मार्ग निन्दापरक है।

भारतीय अध्यात्म के अनुसार विश्व की एकमात्र सत्ता ब्रह्म अथवा पुरुष है जो मायावश अपने को दो रूपों में विभक्त कर लेता है। ये दो रूप हैं—जीव तथा प्रकृति या आत्म और अनात्म। आत्म सक्रिय है और अनात्म निष्क्रिय इसलिए भारतीय दार्शनिकों ने आत्म को पुरुष और अनात्म को नारी रूप में देखा है। पुरुष-रूप आत्म अपना विस्तार जिन क्रियाओं द्वारा करता है उनमें प्रजनन प्रमुख है। अतः प्रजनन के हेतु वह नारी-रूप अनात्म के रूप की कामना करता है। प्रकृति को ईश्वर की मायाशक्ति कहा गया है तथा प्रकृति का अधिपति ईश्वर मायी कहलाता है।[५] प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही विश्व की सृष्टि उत्पन्न होती है। दोनों का संयोग ही सृष्टि का उत्पादक है। प्रकृति के जड़ होने से यह संसार केवल उससे उत्पन्न नहीं हो सकता न स्वभावतः निष्क्रिय पुरुष से ही।[६] पुरुष प्रकृति के संयोग का

---

३ कठोपनिषद् १।२।२।
४ भारतीय दर्शन पृ ४६।
५ वही पृ० ११२।
६ वही पृ० ११६।

इच्छुक इसलिए बना रहता है कि वह उससे विवेक-ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष की सिद्धि करता है।[7] इस प्रकार जहाँ एक ओर भारतीय दर्शन की आध्यात्मिक विचारधारा नारी-स्वरूपा प्रकृति को मोक्ष-मार्ग की बाधा नहीं समझती वहीं दूसरी ओर यह विचार भी व्यक्त किया गया है कि पुरुष स्वभावतः असंग और मुक्त है परन्तु अविवेक के कारण उसका प्रकृति के साथ संयोग निष्पन्न होता है। सांख्य-सूत्र के अनुसार अपवर्ग का स्वरूप है प्रकृति पुरुष का परस्पर वियोग होना या एकाकी होना अथवा पुरुष की ही प्रकृति से असंग स्थिति।[8]

प्रकृति को ईश्वर की माया-शक्ति कहा गया है। अतः चिन्तन-क्षेत्र में नारी को भी माया के रूप में देखा गया है। माया के सम्बन्ध में भी काफी मतभेद है। शंकराचार्य ने माया तथा अविद्या शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप से किया है।[9] परन्तु परवर्ती दार्शनिकों ने इन दोनों शब्दों में सूक्ष्म अर्थ भेद की कल्पना की है। परमेश्वर की बीज-शक्ति का नाम माया है। माया रहित होने पर परमेश्वर में प्रवृत्ति नहीं होती और न वह जगत की सृष्टि करता है। यह अविद्यात्मिका बीज-शक्ति 'अव्यक्त' कही जाती है यह परमेश्वर में आश्रित रहनेवाली महा शक्ति रूपिणी है जिसमें अपने स्वरूप का न जानने वाले संसारी जीव शयन किया करते हैं। त्रिगुणात्मिक माया-ज्ञान विरोधि भाव रूप पदार्थ है। यह अभावरूपा नहीं है। माया न तो सत् है, न असत्। इन दोनों से विलक्षण होने के कारण उसे 'अनिर्वचनीय' कहते हैं।[10] माया की दो शक्तियाँ होती हैं आवरण तथा विक्षेप। आवरण-शक्ति ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को मानों ढक लेती है और विक्षेप-शक्ति उस ब्रह्म में आकाशादि प्रपंच उत्पन्न कर देती है।[11] संक्षेपशारीरककार की सम्मति में शुद्ध ब्रह्म ही जगत का उपादान है परन्तु विवरणकार मायाशबलित ब्रह्म को उपादान मानते हैं। तत्त्व-निर्णयकार ब्रह्म और माया दोनों को पर सिद्धांत-मुक्तावलीकार केवल माया-शक्ति को जगत का उपादान बतलाते हैं। पंचदशी के मत से शुद्ध सत्वमयी है परन्तु अविद्या रजोगुण और तमोगुण के प्राधान्य होने पर होती है।[12] माया विषयक मत-मतान्तरों के परिणाम-स्वरूप ही नारी को अविद्यारूपिणी मायाविनी आदि कह कर उसकी निन्दा की गई है और कहीं उसे प्रकृति अजा शाश्वत एवम् कल्याण की साधनभूता ईश्वरी आदि कह कर उसकी वन्दना हुई है।

---

७ भारतीय दर्शन पृ० ३३०।
८ वही पृ० ३३८।
९ वही पृ० ४९२।
१० वही पृ० ४२३।
११ वही पृ० ४२५।
१२ वही पृ० ४२४।

श्रुति स्मृति आगम भागवत परम्परा आदि से लेकर पाश्चात्य आदर्शवादी दार्शनिकों की विचार-परम्परा तक नारी विषयक आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि मोक्षोपाय के नाम पर प्रवृत्ति एवम् निवृत्ति में मार्ग-भेद से ही नारी विषयक भेद-दृष्टि को जन्म दिया है। ऋग्वेद का नारी विषयक दृष्टिकोण निन्दात्मक नहीं है। अदिति उषा इन्द्राणी इला भारती होत्रा सिनीवाली श्रद्धा पृश्नि आदि वैदिक देवियां अनेक तत्वों की अधिष्ठात्री हैं। पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी के मतानुसार ऋग्वेद में अदिति का उल्लेख ८० बार हुआ है और वहीं उसे सर्वशक्तिमती सर्वव्यापिनि विश्वजन्या आकाश अन्तरिक्ष माता पिता पुत्र और समस्त देव के रूप में देखकर, पापों से बचानेवाली तथा मन्त्र-वक्त्री माता गया है।[१३] अदिति के साथ दिति का ऋग्वेद में तीन ही बार उल्लेख है परन्तु सर्वत्र दिति देवी ही मानी गई है दैत्यमाता नहीं।[१४]

ऋग्वेद में सरस्वतीदेवी को पतितपावनी, धनदात्री सत्यप्रेरिका शिक्षिका और ज्ञानदात्री कहा गया है। भारती को मनु के यज्ञ में हवि का सेवन करनेवाली देवों को यज्ञ में बुलानेवाली और सत्यवादिनी माता गया है।[१५] स्त्रियां दो प्रकार की थीं—एक ब्रह्मवादिनी दूसरी तुरन्त विवाह करनेवाली। जो ब्रह्मवादिनी थी वे हवन करती थीं वेद पढ़ती थी और भिक्षा मांग कर खाती थी। उनके लिये कुछ अविदित नहीं था वे सबकी अधिकारिणी होती थी।[१६] अतः यह स्पष्ट है कि स्त्रियों का मार्ग भेद-दृष्टि का मार्ग नहीं था। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से नारी-जाति को हेय निन्दनीय अथवा अविद्या रूपिणी नहीं माना गया था। डाक्टर बेनीप्रसाद के मतानुसार उत्तर वैदिक काल में ऋग्वेद की अपेक्षा जीवन का आनन्द कम हो गया था और तपस्या की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। जब संसार-त्याग एक आदर्श होने लगा तो स्त्री को इस त्याग में सब से बड़ी बाधा है अनादर की दृष्टि से देखी जाने लगी।[१७] स्वामी विवेकानन्दजी का कहना है कि सन्यास वेद प्रतिपादित है परन्तु वैदिक सिद्धांत के अनुसार सन्यासाश्रम में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं रहता।[१८]

निगम-मार्ग की तरह ही आगम-मार्ग में भी स्त्री-पुरुष के बीच भेद भाव जैसी बात नहीं है। डाक्टर हजारीप्रसादजी द्विवेदी के कथनानुसार सभी आगम अपने-अपने उपास्य देव को परम तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं। देवता की शक्ति या शक्तियों में और ईश्वर की इच्छा-शक्ति तथा क्रिया-शक्ति में विश्वास करते हैं। जगत को

---

१३ वैदिक साहित्य पृ० ६४।
१४ वही पृ० ६६।
१५ वही पृ० ७६।
१६ वही पृ० ७६।
१७ हि० मु स० पृ० ७१।
१८ भारतीय नारी पृ० ६४।

परम तत्व का परिणाम मानते हैं भगवान की क्रमिक उद्भूति आदि का समर्थन करते हैं। माया के कोप वचुक की कल्पना करते हैं उपासना में सभी वर्णों और पुरुष तथा स्त्री दोनों का अधिकार मानते हैं।[१९]

श्वेताश्वतरोपनिषद में ईश्वर के रूप की सुन्दर कल्पना करते हुए उसे 'तू स्त्री है तू पुरुष है, तू ही कुमार या कुमारी है' आदि सम्बोधित किया गया है।[२०] देवी भागवत में परमात्मा की पराशक्ति का उत्कर्ष दिखाते हुए देवी को विष्णु, ब्रह्मा आदि का गुरु कहा गया है।[२१] इतना ही नहीं मीमांसा-दर्शन में भली प्रकार से सिद्ध कर दिया है कि मूल प्रकृति से स्त्री-धारा का विशेष सम्बन्ध है। सप्तशती एवम् देवी भागवत के अनुसार समस्त विद्या और सब स्त्रियां देवी की ही रूप हैं। सभी ग्राम्य देवियां और समस्त विश्व-स्थित स्त्रियां प्रकृति माता की ही अंशरूपिणी हैं।[२२]

शाक्त सम्प्रदाय के अंतर्गत भी स्त्री-तत्व की उपासना का विधान है। ईश्वर ने जो स्त्री-तत्व उत्पन्न किया वही प्रकृति के नाम से सम्बोधित हुआ। उसे ही माया महामाया अथवा शक्ति के नाम से पुकारते हैं। उसका तथा ब्रह्म का स्वभाव एक ही माना गया है। जैसे ब्रह्म अनादि और अनन्त है वैसे ही प्रकृति भी। संसार में जितने स्त्री-तत्व किंवा स्त्रियों के स्वरूप हैं सब उसी अनादि प्रकृति के स्वरूप माने गये हैं।[२३] इसी प्रकार भी वैष्णव सम्प्रदाय के अंतर्गत लक्ष्मी को परमात्मा की शक्ति माना है। लक्ष्मी नित्य मुक्ता है नाना रूपधारिणी भगवान की भार्या है। ब्रह्मा आदि अन्य देवतागण शरीर के क्षरण होने से क्षर' हैं। परन्तु लक्ष्मी दिव्य विग्रहवति होने से 'अक्षरा' है। परमात्मा देश काल तथा गुण—इन तीनों वस्तुओं के द्वारा अपरिच्छिन्न हैं परन्तु लक्ष्मी गुण में परमात्मा से न्यून होकर भी देश और काल की दृष्टि से उनके समान व्यापक है।[२४]

उक्त विचारधाराओं के अंतर्गत नारी-अवहेलना अथवा भेद-दृष्टि का व्यवहार दृष्टिगोचर नहीं होता। वास्तव में भेद-दृष्टि का उदय अथवा स्त्रियों की हीनता का प्रादुर्भाव बौद्धधर्म के पतनकाल में ही हुआ। स्वामी विवेकानन्दजी की विचार-धारा के अनुसार, बौद्धधर्म भिक्षु-धर्म था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक पीत वस्त्रधारी भिक्षु सम्मानास्पद हो गया। जिसका एक अनिवार्य फल यह हुआ कि भिक्षुणियों का स्थान भिक्षुओं की अपेक्षा निम्न हो गया और इस धर्म की यह

---

१९. मध्य० धर्म साधना पृ० ३७।
२०. विश्व-धर्म-दर्शन पृ० ११।
२१. वही पृ० १९८।
२२. कल्याण नारी-अंक पृ० २१।
२३. विश्व-धर्म दर्शन पृ० २१२।
२४. भारतीय दर्शन पृ० ४८१, ८२।

अभिमानास्पद विशेषता ही उसकी दुर्बलता का मुख्य कारण बन गई।[२५] जैनियों के दिगम्बर-सम्प्रदाय द्वारा भी यह व्यक्त किया गया कि स्त्रियों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। पुरुष का जन्म लेकर ही स्त्रियों के लिये मोक्ष-प्राप्ति की सम्भावना है।[२६]

चार्वाक-दर्शन द्वारा यह भावना व्यक्त की गई कि यही लोक आत्मा का क्रीड़ा-स्थल है। इसके बाद परलोक नामक कोई वस्तु नहीं है यह शरीर ही आत्मा है मरण ही मुक्ति है। अतएव जब तक इस शरीर में प्राण है तब तक सुख प्राप्ति की चिन्ता करना चाहिए। अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं है। मानव-जीवन के लिए 'काम' ही पुरुषार्थ है।[२७] यह प्रतिक्रिया यज्ञानुष्ठान एवम् तपस्याचरण के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुई थी। अतः ऐहिक सुखवाद चार्वाकों के अनुसार प्राणी मात्र का प्रधान लक्ष्य है। चार्वाकों ने मानव-जीवन को विशृंखल होने से बचाया और पारलौकिक सुख की मृग तृष्णा में अपने बहुमूल्य शरीर को व्यर्थ गलानेवाले अविवेकी लोगों के सामने इस जीवन को सुखमय बनाने का ठोस उपदेश दिया।[२८] स्वभावतः आधिभौतिक सुखवाद का समर्थक होने के कारण यह मत मोक्ष एवम् परलोक के नाम पर कंचन एवम् कामिनी को माया माननेवालों का विरोधी रहा और नारी के हित में एक स्वस्थ दृष्टिकोण ही साबित हुआ।

आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में जब ज्ञान-मार्ग एवम् योग-मार्ग का डंका बजने लगा तो नारी की स्थिति पुनः निन्दात्मक हो उठी। पातञ्जल-योग-दर्शन का चतुर्व्यूह है हेय हेय हेतु, हान और हानोपाय की चर्चा करते हुए अनागत दुःख को हेय मानता है।[२९] द्रष्टा एवम् दृश्य का संयोग हेय हेतु है।[३०] उसका हेतु अविद्या है।[३१] अविद्या के अभाव से जो संयोग-नाश है वही हान है और वही द्रष्टा कैवल्य है।[३२] अविप्लवा विवेकख्याति हान का उपाय है।[३३] योगांग के अनुष्ठान द्वारा अशुद्धिक्षय होने से विवेकख्याति पर्यन्त ज्ञान-दीप्ति होती रहती है।[३४] आगे चल कर जब पातञ्जल-योग दर्शन की विचार प्रधानता का स्थान प्रक्रिया-प्रधानता ने ग्रहण कर लिया तो यम के नाम पर ब्रह्मचर्य पर जोर दिया जाने लगा। अतः ब्रह्मचर्य-पालन को स्त्री-वर्जन स्त्री-निन्दा आदि का रूप मिला है।[३५]

---

२५ भारतीय नारी पृ० ५३ ५४।
२६ ग्राम्य-संस्कृति पृ० ३१९।
२७ भारतीय दर्शन पृ० १५५।
२८ वही पृ० १५७।
२९ पातंजल योग-दर्शन पृ० १३२।
३० वही पृ० १६१।
३१ वही पृ० १६८।
३२ वही पृ० १६९।
३३ वही पृ० १७०।
३४ वही पृ० १७१।
३५ मध्य० धर्म-साधना पृ० ७४।

भक्ति-भाव का उदय जो निर्गुण एवम् सगुण धारा के रूप में प्रकट हुआ था पूर्ववर्ती धर्म मतों पर ही आधारित था। सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अर्थात् नाथ-पंथी साधकों के निर्गुण परब्रह्म को। पहली साधना ने हिन्दू जाति की बाह्याचार की शुष्कता को आन्तरिक प्रेम से सींच कर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने शास्त्र का सहारा लिया दूसरी ने अनुभव का एक ने श्रद्धा को पथ-प्रदर्शक माना दूसरी ने ज्ञान को। पर आन्तरिक प्रेम-निवेदन दोनों को इष्ट था अहेतुक भक्ति दोनों को काम्य थी।[३६]

निर्गुण भक्ति ने माया को 'ठगिनी' तो माना ही पर नारी को भी 'विकार' समझ कर उसकी निन्दा की। दैनिक जीवन को शाश्वत जीवन की ओर 'सहज' रूप से अग्रसर करनेवाला स्वीकार किया और साधना में दैनिक तथा नित्य के बीच कोई विरोध न मान कर भी वे नारी-निन्दा के मार्ग का परित्याग न कर सके। इसका कारण इस भक्ति की ज्ञानपरकता भी मानी जा सकती है।

वैष्णव-दर्शनों में ज्ञान की अपेक्षा मोक्ष-साधन में भक्ति की ही प्रधानता है। अतः मायावाद का खंडन भक्ति-विरोधी होने से सर्वत्र समभावेन किया गया है।[३७] भगवान में जितने सम्बन्ध की कल्पना हो सकती है उनमें कान्ता-भाव का प्रेम ही श्रेष्ठ माना गया है।[३८] लक्ष्मी नारायण की शक्ति है। शक्ति निषेध व्यापाररूपा होती है। स्त्री में इसी शक्ति का प्राधान्य है। इसीलिए स्त्री निषेध व्यापाररूपा या अपने आप को समर्पण करके भी सार्थक होती है। कान्त के लिए आत्म-समर्पण की भावना चरम सीमा पर पहुँचती है। यही कारण है कि भक्त कान्ता-भाव के भजन को इतना श्रेष्ठ समझते हैं।[३९] इसलिए भगवान ने कहा है 'हे उद्धव मेरी सुदृढ़ भक्ति मुझे जिस प्रकार प्राप्त कर सकती है उस प्रकार न योग न सांख्य न धर्म न स्वाध्याय न तप और न दान ही करा सकता है।[४०] अतः 'हे उद्धव अब तुम श्रुति स्मृति प्रवृत्ति निवृत्ति श्रोतव्य और श्रुत—सबका परित्याग करके अनन्यभाव से समस्त देहधारियों के आत्म-स्वरूप एक मेरी ही शरण में आ जाओ और मेरे आश्रित होकर सर्वथा निर्भय हो जाओ।'[४१] इन बातों से भक्ति की महिमा के साथ-साथ कान्ता भाव का महत्त्व भी प्रतिपादित होता है और भक्ति नारी-गौरव का राजपथ सिद्ध होती है।

---

३६ मध्य० धर्म-साधना पृ० ९९,१०० । ३९ वही पृ० १२० ।
३७ भारतीय दर्शन पृ० ५०९ । ४० भागवत-धर्म पृ० ३०६ ।
३८ मध्य० धर्म-साधना पृ० १४१ । ४१ वही पृ० २६२ ।

प्रति अरुचि होती है तथा भय एवम् लज्जा का भाव कुछ कम होने पर पति की ओर आकर्षित होनेवाली नायिका विश्रब्ध नवोढ़ा मानी जाती है।[15]

मध्या नायिका में लज्जा एवम् काम समान रूप से पाये जाते हैं। उसमें अकुलाहट एवम् संकोच समानरूप से रहता है।[16] प्रौढ़ा नायिका में लज्जा की कमी एवम् काम का प्राचुर्य होता है तथा वह रति-कला में परम प्रवीण रहती है।[17] प्रौढ़ा में रति-प्रियता एवम् आनन्द सम्मोहिता भी रहती है। प्रथम रति-केलि में अत्यन्त रुचि प्रदर्शित करती है और दूसरी अपने पति के रति-सुख-जनित प्रेमानन्द में सदा निमग्न रहती है। इसके अतिरिक्त मध्या प्रौढ़ा के धीरादि भेद भी किये गए हैं। पति की पर-स्त्री के प्रति आसक्ति देखकर मध्या एवम् प्रौढ़ा में जो कोप उत्पन्न होता है उसका स्वरूप या तो गुप्त रहता है, या प्रकट रूप में रहता है अथवा प्रकट एवम् गुप्त दोनों रूपों में पाया जाता है। अतः इस प्रकार की नायिकाओं को क्रमशः धीरा अधीरा एवं धीराधीरा की संज्ञा प्रदान की गई है।[18] धीरा का कोप व्यंग्योक्ति एवम् रति से उदासीनता द्वारा अधीरा का कोप कटु वचन एवम् ताड़ना द्वारा एवम् धीराधीरा का कोप रुदन तथा उपालम्भ द्वारा प्रकट होता है।[19] इसके अतिरिक्त बहुपत्नीत्व के आधार पर स्वकीया के ज्येष्ठा एवम् कनिष्ठा भेद भी पाये जाते हैं। पति का स्नेहाधिक्य पानेवाली ज्येष्ठा एवम् न्यून स्नेह प्राप्त करनेवाली कनिष्ठा कही जाती है।[20]

मोटे रूप से परकीया के अनूढ़ा एवम् ऊढ़ा दो भेद होते हैं। अविवाहित अवस्था में ही अन्य पुरुष से प्रेम करनेवाली अनूढ़ा एवम् विवाहित होकर भी अन्य

---

१५ पति की कछु परतीत उर, धरै नवोढ़ा नारि।
सो विश्रब्ध नवोढ़तिय, बरनत बिबुध बिचारि॥ —'जगद्विनोद'

१६ इन दुखियाँ अँखियान को, सुख सिरज्यौ ही नाहिं।
देखत बने न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥ —'बिहारी सतसई'

१७ केलि-कला में चतुर अति, प्रीतम सों अति प्रीति।
लाज तजै यहु मदन बस, प्रौढ़ा की यहु रीति॥ —'कविकुल कल्पतरु'

१८ गोप कोप धीरा करै, प्रकट अधीरा कोप।
लच्छन धीर अधीर को, कोप प्रगट औ गोप॥ —'भाषा भूषण'

१९ केशव ग्रंथावली खंड १, पृ० १४ से १७।

२० जासों पति अति हित करै, सुतिय ज्येष्ठा ताहि।
जासों कछि हित मध्य करै, कहैं कनिष्ठा ताहि॥ —'सुन्दर शृंगार'

पुरुष से प्रेम करनेवाली को ऊढ़ा कहते हैं।[21] प्रणय-व्यापार में प्रवर्तित विशेष कार्य कलापों की अवस्थानुसार परकीया के छः भेद और किए जाते हैं। अपनी मनोभिलाषा की अकस्मात् पूर्ति होती देख कर प्रसन्न होनेवाली मुदिता कही जाती है।[22] चतुरता पूर्वक पर-पुरुषानुराग का संकेत करनेवाली विदग्धा होती है। विदग्धा के दो उपभेद हैं—जिसमें वचन चातुर्य हो उसे वचन-विदग्धा एवम् जिसमें क्रिया चातुर्य हो उसे क्रिया-विदग्धा कहते हैं।[23] पर-पुरुष से मिलने के स्थान एवम् अवसर को नष्ट होते देख कर दुःखित होनेवाली अनुशयना कही जाती है जो अपने उपभेदों के अनुसार प्रथम अनुशयना द्वितीय अनुशयना और तृतीय अनुशयना होती है। संकेत-स्थान का नष्ट होते देख कर दुःखित होनेवाली प्रथम अनुशयना, भविष्यत् संकेत-स्थल के लिये चिन्ताकुल द्वितीय अनुशयना एवम् निश्चित संकेत-स्थल पर किसी कारणवश न जा सकने से दुःखित होनेवाली तृतीय अनुशयना कही जाती है।[24] पर-पुरुष-प्रेम को छिपाने की चेष्टा करनेवाली गुप्ता होती है। घटना-कालक्रम के अनुसार भूत गुप्ता भविष्यत् गुप्ता एवम् वर्तमान गुप्ता कही जाती है।[25] जिसका पर-पुरुष प्रेम सब पर प्रकट हो जाता है उसे लक्षिता[26] एवम् अनेक पुरुषों से प्रीति करनेवाली कामासक्ता को कुलटा कहा जाता है।[27]

---

२१ ऊढ़ा ब्याह विवाहिता, अविवाहिता अनूढ़। —'रसिक प्रिया'

२२ चहै बात बनि आवई, जो चित चाहत होय।
तातें आनंदित महा मुदिता कहिये सोय। —'शृंगार निर्णय'

२३ वचनन की रचनान सों जो साधे निज काज।
वचन-विदग्धा नायिका ताहि कहत कविराज॥
जो तिय साधे काज निज करि कछु क्रिया सुजान।
क्रिया-विदग्धा नायिका ताहि लीजिये जान॥ —'अमरविनोद'

२४ कैसि करौं कहुं संग सौं सो थल मिटौ निहारि। —'रस-राज'
होनहार संकेत को परि अभाव उर माहिं एवम्
जो तिय सुरति संकेत को समय गमन अनुमान। —'अमरविनोद'

२५ जब तिय सुरति छिपावई, करि विदग्धता काम।
भूत, भविष्य वर्तमान सों गुप्ता ताको नाम॥ —'शृंगार निर्णय'

२६ जहाँ प्रीति पर पुरुष की प्रगटित जग में होय .. —'कवि कुल कल्पतरु'

२७ मिलै बिन काहू ते रति करे सदा काम सों काम।
मीत अनेकन सों रमें कुलटा ताको नाम॥ —'सुन्दर शृंगार'

उक्त वर्गीकरण में नारी की प्रणय-प्रवृत्तियों का सामान्यीकरण प्रस्तुत किया गया है। स्वकीया परकीया एवम् सामान्या के रूप में प्रणय का जो स्वरूप हमारे सामने आता है उससे नारी की प्रेम-सम्बन्धी विभिन्न मौलिक रुचियों एवम् प्रवृत्तियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि धर्मानुसार किये गये इस वर्गीकरण में नारी के शील स्वभाव सांस्कृतिक धरातल एवम् मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक अभिरुचि का सामान्य स्वरूप प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। शुक्लजी का यह कथन कि 'जिस प्रकार बाह्य दृश्यों के अनन्त रूप हैं उसी प्रकार मनुष्य की मानसिक स्थिति के भी' जिस प्रकार पृथ्वी पर अनेक प्रकार के दृश्य हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अनेक स्वभाव और चरित्रवाले हैं'[२८] यद्यपि सत्य है और उक्त वर्गीकरण में 'अनेक रूपता' का अभाव भी हो सकता है। किन्तु प्रस्तुत वर्गीकरण में अनेकरूपता को एकरूपता देने का प्रयत्न किया गया है और एकरूपता की इस प्रवृत्ति के अनुसार, निरीक्षण तथा परीक्षण के पश्चात् ही किसी तथ्य का सामान्यीकरण सम्भव है। अतः यह कहना कि 'केवल गिनी गिनाई बातों को निर्दिष्ट शैली के अनुसार आँख मूँद कर कह दिया'[२९] मेरी विनम्र सम्मति में उचित नहीं है। प्रस्तुत वर्गीकरण के आधार पर नारी की प्रणय-प्रवृत्तियों का एक सामान्य स्वरूप हमारे सामने निश्चितरूप से उपस्थित हो जाता है। इसे हम प्रणय विविधता का नहीं प्रणय-रूप की एकता का सामान्य सिद्धान्त मान सकते हैं। यह प्रणय-व्यापार का काव्य-शास्त्रीय सैद्धान्तिक मूल्यांकन है चिकित्सा-शास्त्रीय शल्य-क्रिया नहीं।

दशानुसार —दशा के अनुसार नारी के प्रधानतः तीन भेद पाये जाते हैं— गर्विता अन्य संभोग दुःखिता एवम् मानवती। जो स्त्री अपने प्रियतम के प्रेम और अपने रूप पर गर्व करे, उसे गर्विता कहा जाता है। गर्विता दो प्रकार की होती है— एक प्रेम-गर्विता दूसरी रूप-गर्विता। अपने प्रिय के प्रेम का गर्व करनेवाली प्रेम गर्विता होती है[३०] और अपने रूप का गर्व करनेवाली रूप गर्विता मानी जाती है।[३१] जो नारी अन्य स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिन्ह देख कर दुःखित होती है, उसे

---

२८ रस-मीमांसा पृ० ६५।

२९ रस मीमांसा पृ० ६४ ६५।

३० जाके प्रिय की प्रीत को, मन में होइ गुमान।
प्रेम-गर्विता नारि को सुन्दर यहै बखान॥ —'सुन्दर शृ गार'

३१ जाके अपने रूप को अति ही होय गुमान।
रूप-गर्विता कहत हैं ताको चतुर सुजान॥ —'रस राज'

अन्य संभोग दुःखिता कहा जाता है।[१२] एवम् अपने प्रिय को किसी अन्य की ओर आकर्षित जानकर ईर्ष्यापूर्वक मान करनेवाली नारी मानवती मानी जाती है।[१३]

उक्त वर्गीकरण में नारी के मान-गुमान को दृष्टिगत रखते हुए उसकी मनोदशा का चित्रण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यद्यपि इस वर्गीकरण में धर्मानुसार किये गये वर्गीकरण से अधिक कोई बात नहीं कही गई है और इसका समावेश आसानी से उसी के अंतर्गत हो सकता था क्योंकि यह सारा मान-गुमान प्रणय-संबंधों पर ही आधारित है। संभवतः मान-गुमान को जो नारी-जीवन का एक प्रमुख अंग है अलग से व्याख्या करने के हेतु ही यह वर्गीकरण किया गया है।

अवस्थानुसार —प्रणय-परिस्थितियों की अवस्थानुसार नारी के प्रकारगत आठ भेद उपस्थित किए गये हैं। प्रथम स्वाधीनपतिका है जो नायक को सदैव अपने वशीभूत रखती है।[१४] द्वितीय वासकसज्जा है जो प्रियतम के आगमन की आशा में सविलास रति गृह-द्वार की ओर निहारा करती है।[१५] तृतीय उत्कंठिता नायिका होती है जो केलि-स्थान में नायक की प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक करती रहती है।[१६] चतुर्थ अभिसारिका है जो स्वयं कामार्त होकर नायक के पास जाती है या उसे अपने पास बुलाती है।[१७] पाँचवीं विप्रलब्धा कही जाती है जो केलि-स्थान पर नायक को न पाकर व्याकुल होने लगती है।[१८] छठी खंडिता नायिका होती है जो अपने प्रिय के

---

१२ प्रीतम प्रीत प्रतीति को, और तिया तन पाई।
दुःखित होय सो जानिये, अन्य सुरत दुख दाई॥ —'जगद्विनोद'

१३ जदि नायक औगुन करै, जो उपजा करि मान।
मानवती ताको कहै, जे कवि बुद्धि-निधान॥ —'रसिक विनोद'

१४ केशव जाके गुन बंध्यो सदा रहै पति-संग।
स्वाधीन पतिका तासु को बरनत प्रेम-प्रसंग॥ —'रसिक प्रिया'

१५ वासक सज्जा होइ सो, कहि केशव सविलास।
चितवै रति गृह-द्वार त्यों प्रिय आवनि की आस॥ —'रसिक प्रिया'

१६ प्रिय संकेत आयो नहीं चिंता मन में आनि।
सोच करै संताप सों, उत्कंठिता बखानि॥ —'भाषा भूषण'

१७ केलि-हेत मित-भौन गवन, करै जितनउ कोई।
पियहि बुलावै आपु बस, अभिसारिका सु होई॥ —'हित तरंगिणी'

१८. मिलन थान कर आइ तिय, मिलै न पिय संकेत।
विप्रलब्धा सो जानिये विरह-विकल चित चेत॥ —'रस-राज'

शरीर पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्न देखकर ईर्ष्या करती है अथवा दुखी होती है।[३९] सातवीं नायिका, कलहान्तरिता होती है जो नायक का अपमान करने के पश्चात्, पश्चाताप करने लगती है।[४०] आठवीं प्रवत्स्यत्प्रेयसी होती है जो अपने प्रियतम के भविष्यत् वियोग की आशंका से दुखित होने लगती है।[४१] नौवीं वह विरहणी नायिका है जो अपने प्रियतम के वियोग से दुखित होती है। ऐसी नायिका को प्रोषित पतिका कहा जाता है।[४२] दसवीं नायिका आगत पतिका मानी जाती है जो अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होती है।[४३]

उक्त दसों नायिकाओं के मुग्धा, मध्या प्रौढ़ा परकीया एवम् सामान्या उपभेद भी किये हैं। केशवदास ने इन्हें "प्रच्छन्न" एवम् "प्रकाश" नामक दो उपभेदों में ही विभक्त किया है जबकि शेष आचार्यों ने पूर्व कथित उपभेदों को ही स्वीकार किया है।

अवस्थानुसार की गई इस व्याख्या में नारी की प्रणयावस्था एवम् परिस्थितियों का सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति प्रधानतः दृष्टिगोचर होती है। अपने प्रियतम को स्ववश रखने के हेतु नारी सदैव सजग रहती आई है। प्रियतम के आगमन की आशा में उसका सविलास रति-गृह-द्वार की ओर निहारना और केलि-स्थल पर उत्सुकता पूर्वक उसकी प्रतीक्षा करना नायक के पास जाना या उसे अपने पास बुलाना पर-स्त्री संसर्ग के लक्षण देखकर ईर्ष्या करना या दुखी होना कलहोपरान्त दुखी होना भविष्य में होनेवाले वियोग की आशंका से व्याकुल हो उठना आदि प्रणय-पथ के नारी सुलभ लक्षण हैं। परिस्थितियाँ प्राय भावों के संकल्प-विकल्प की विधायक होती हैं और बुद्धिभेद के अनुसार जो मनोभाव या मनोविकार नारी-जीवन में उपस्थित होते हैं, उसी को एक साहित्यिक एवम् सैद्धांतिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न अवस्थानुसार

---

३९ प्रगत रमै रति चिह्न लखि प्रीतम के शुभ गात।
दुखित होई सो खंडिता बरनत मति अवदात॥ —'शृंगार निर्णय'

४० प्रथम कछु अपमान कर पिय को फिर पछिताइ।
कलहान्तरिता नायका तहि कहत कविराइ॥ —'काव्यविनोद'

४१ होनहार पिय के विरह बिकल होइ जो बाल।
ताहि प्रवत्सति प्रेयसी बरनत बुद्धि बिसाल॥ —'रस राज'

४२ जाको पति देशान्तर रहै। मनि संताप विरह दुख सहै।
दुर्बल तन व्याकुल होई। प्रोषित पतिका कहिये सोई॥ —'रस मंजरी'

४३ बहु दिन बिते तें जाको आवे कन्त।
आगत पतिका नायिका, ताहि कहत मतिमंत॥ — 'रसिक विनोद'

किये गए भेद में परिलक्षित होता है। इस प्रवृत्ति को हम साहित्यिक परिधान वेष्टित मनोवैज्ञानिक एवम् विश्लेषणात्मक चेष्टा मान सकते हैं।

गुणानुसार—गुण के अनुसार नारी के तीन भेद किये गये हैं—उत्तमा मध्यमा और अधमा। उत्तमा प्रायः मानविहीन मध्यमा किञ्चित मानिनी एवम् अधमा बिना अपराध के भी अत्यधिक मान करनेवाली होती है।[४४] उत्तमा का स्वभाव निस्वार्थी होता है। स्वयं के प्रति प्रियतम का अहित भाव देखकर भी वह उसके हित की ही सोचती है। मध्यमा समभ्यवहारिणी होती है। वह हित के बदले हित और अहित के बदले अहित की कामना रखती है। अधमा का आचरण एकदम अधम प्रवृत्ति का द्योतक होता है। प्रियतम द्वारा हित प्रदर्शन के पश्चात् भी वह हित प्रदर्शन से परे रहती है।[४५]

हरिऔधजी ने उत्तमा को पति-प्रेमिका परिवार-प्रेमिका जाति-प्रेमिका देश प्रेमिका जन्मभूमि-प्रेमिका निजतानुरागिनी लोक-सेविका एवम् धर्म प्रेमिका के रूप में भी देखा है और मध्यमा को वे कर्तव्य-विरक्ता तथा मर्मपीड़िता के रूप में भी देखते हैं।[४६]

गुणानुसार वर्णित भेदों में नारी की सहन-शक्ति और उसके शील स्वभाव की व्याख्या का प्राधान्य पाया जाता है। काम-शास्त्रीय आधार पर जिस प्रकार नारी के जाति-अनुसार भेद प्रस्तुत किये गये हैं उसी प्रकार गुणानुसार वर्णित भेद का आधार नारी का आचार-व्यवहार माना जा सकता है।

व्याख्यात्मक प्रवृत्तियों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रवृत्ति परम्परागत रही है। भरत मुनि से लगाकर मानुदत्त तक और कृपाराम से लेकर हरिऔध तक इसका सिलसिला बराबर जारी रहा। प्राय: प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर सम्वत् १९८८ तक न्यूनाधिक अंतर से यह प्रवृत्ति काव्य-क्षेत्र में काम करती रही। विस्तार-भेद का कार्य भी चलता रहा। नारी निरीक्षण एवम् परीक्षण की कसौटी पर कसी जाकर कुछ सामान्य सिद्धान्तों में प्रस्तुत की गई। प्रणय के अंतर्गत उसके विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या की गई। यह व्याख्यात्मक प्रवृत्ति नायिका-भेद के नाम

---

४४ उत्तम मान विहीन है लघु मध्यम अधि मान।
बिन अपराधहुँ करत है अधम नारि गुन मान॥ —'शृंगार निर्णय'

४५ अनहित सो हित उत्तमा मध्य सों सम अधि जान।
अधमा हित हूँ सो न हित तीनों तिय पहचान॥ —'शृंगार निर्णय'

४६ रस-कलश पृ० १८ से १०१।

से प्रसिद्ध है। नायिका भेद का विषय जहाँ नाट्य-शास्त्रीय ग्रन्थों से लिया गया वहाँ उसका व्यवहारिक अंग काम शास्त्रीय ग्रन्थों से अनुप्राणित था।[४७] सच पूछा जावे तो नायिका भेद की रचनाओं में स्त्री-पुरुषों के अनेक स्वकीय विचारों एवम् भावों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है,[४८] और प्रकृति अवस्था और स्थिति के अनुसार स्त्रियों का वर्णन ही नायिका भेद कहलाता है।[४९] कतिपय साहित्यिक महारथियों के मतानुसार यह कार्य 'वाणी की विगर्हणा है'[५०] तथा 'नायिका भेद चरित्र-चित्रण में सहायक नहीं, बाधक हुए हैं।[५१]

नायिका भेद की आवश्यकता-अनावश्यकता अथवा उपयोगिता अनुपयोगिता के नाम पर विवाद खड़ा करना प्रस्तुत अध्ययन के क्षेत्र से परे की वस्तु है। हम नायिका भेद को नारी-चित्रण की व्याख्यात्मक प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि नायिका भेद काव्य-शास्त्र के अंतर्गत एक मनोवैज्ञानिक विवेचन है। कुछ थोड़ी सी नायिकाओं का उल्लेख नारी-मन के विकारों का अध्ययन करने के लिये आवश्यक है जिससे दृश्य और श्रव्य काव्यों में पात्रों के चरित्र चित्रण सम्बन्धी कोई अस्वाभाविक बात न कह दी जावे।[५२] अतः हम इस प्रवृत्ति को चरित्र चित्रण में बाधक नहीं मान सकते। साथ ही इस प्रवृत्ति को वाणी की विगर्हणा भी नहीं माना जा सकता क्योंकि नायिका भेद की रचनाओं द्वारा मनोवैज्ञानिक शैली में नारियों की विभिन्न मनोदशाओं का ऐसा विदग्धतापूर्ण वर्णन हुआ है जिसके कारण पाठकों को गृहस्थ की अनेक उलझनों को सुलझाने में सुविधा होती है। उनके द्वारा वे नारियों की प्रवृत्ति से परिचित हो जाने के कारण दाम्पत्य जीवन में कटुता उत्पन्न होने के अनेक अवसरों से अपने को बचा सकते हैं।[५३]

सामान्यतः कोई भी व्याख्या अपने आप में कभी पूर्ण नहीं कही जा सकती। नारी चरित्र जिसे देवताओं के लिए भी अज्ञेय समझा जाता है, नायिका भेद द्वारा पूर्ण-रूपेण ज्ञेय हो सकता है यह कहना भी सरासर भूल ही होगी। फिर भी हम इस प्रवृत्ति को नारी चित्रण का व्याख्यात्मक प्रयत्न मान सकते हैं जो अपनी संकीर्ण सीमा में भी विलक्षणीय और मनोरम है।

---

४७ हि० सा० भूमिका पृ० १२४।
४८ रस-कलश पृ० १३०।
४९ रस-रत्नाकर पृ० ७७।
५० रसज्ञ-रंजन पृ० ७१।
५१ रस-मीमांसा पृ० ६६।
५२ ब्रज भाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० ११६।
५३ वही पृ० ४२।

शैलीगत प्रवृत्तियाँ

नारी के साहित्यिक स्वरूप एवम् व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते समय हमारा ध्यान शैलीगत प्रवृत्तियों की ओर जाता है। नारी-चित्रण की आधारभूत सामग्री एवम् उसके स्वरूप-निर्धारण में शैलीगत प्रवृत्तियों का प्राधान्य रहता है। नारी-चित्रण की प्रमुख शैलीगत प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं:—

कथात्मक:—जीवन अपने आप में एक गाथा है। जीवन के इस कथात्मक स्वरूप का ही दूसरा नाम चरित्र है क्योंकि प्रत्येक चरित्र का व्यक्तित्व उसकी जीवन कथा के साथ गुम्फित रहता है। साहित्य में पात्रों की सृष्टि किसी कथा के माध्यम द्वारा ही होती है। हिन्दी-साहित्य में नारी-पात्रों की सृष्टि एवम् उनका चित्रण पौराणिक ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक कथाओं के आधार पर किया गया है। सीता, राधा कैकेयी यशोदा उर्मिला मांडवी आदि की चरित्र-सृष्टि का आधार जहाँ पौराणिक है वहीं नूरजहाँ यशोधरा आदि का चित्रण ऐतिहासिक आधार पर हुआ है। पद्मावती नागमती आदि का चित्रण काल्पनिक अधिक है, ऐतिहासिक कम क्योंकि पद्मावत का पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कल्पित कहानी है।[२४] अतः जहाँ तक नारी-चित्रण की कथात्मक सामग्री का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि उसकी आधारभूत सामग्री या तो पौराणिक गाथाओं से ली गई है या इतिहासों से या कल्पना अथवा जनश्रुतियों पर आधारित है। कथात्मक शैली के अन्तर्गत आधिकारिक एवम् प्रासंगिक चरित्रों के विधान की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। मानस में पार्वती की चरित्र-कथा प्रासंगिक है और सीता की चरित्र-कथा आधिकारिक। नूरजहाँ में अनारकली का चित्रण प्रासंगिक रूप में ही हुआ है जबकि नूरजहाँ का चित्रण आधिकारिक कथा पर आधारित है।

कथात्मक शैली के अंतर्गत कथानक रूढ़ियाँ भी पाई जाती हैं जिनका आधार या तो लोक-विश्वास होता है या कवि-कल्पित रहता है। प्रथम प्रकार की रूढ़ियाँ प्रायतः आठ प्रकार की हो सकती हैं:—

[१] संभावना अथवा कल्पना पर आधारित।

[२] अलौकिक अथवा अमानवीय शक्तियों से सम्बन्धित।

[३] अतिमानवीय और अतिरंजनायुक्त मानवीय शक्ति से सम्बन्धित।

[४] आध्यात्मिक एवम् मनोवैज्ञानिक।

[५] संयोग तथा भाग्य से सम्बन्धित।

---

२४ जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृ० २२।

[६] शरीर-वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित।
[७] निषेध और शकुन से सम्बन्धित।
[८] सामाजिक संगठन और रीति रिवाजों से सम्बन्धित।

कवि-कल्पित कथानक रूढ़ियों में नारी-चित्रण के हेतु प्रधानतः दो प्रकार की रूढ़ियाँ पाई जाती हैं—दौत्य कर्म सम्बन्धित और प्रेम सम्बन्धित। प्रथम के अंतर्गत किसी दूत अथवा दूती की सहायता से भावाभिव्यक्ति होती है। यह दौत्य कर्म का संपादन पंछी पवन आदि भी कर सकते हैं और पथिक अथवा प्रिय पात्रक भी। द्वितीय के अंतर्गत रूप-गुण श्रवणमय आकर्षण चित्र-दर्शन स्वप्न-दर्शन प्रिय-प्राप्ति के लिए शिव-पार्वती पूजन बारह मास के माध्यम से विरह-निवेदन आदि आते हैं।

कथात्मक रूढ़ियाँ वास्तव में कथात्मक शैली का एक अभिन्न अंग हैं क्योंकि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिये कुछ ऐसे अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे हैं जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ि में ढल गये हैं।[२५]

भावात्मक—नारी-चित्रण की द्वितीय शैलीगत प्रवृत्ति भावात्मक रही है। नारी-चित्रण का वास्तविक स्वरूप उसके भावात्मक रूप में ही व्यक्त होता है क्योंकि 'भाव प्रत्येक व्यक्ति की अंतरात्मा का एक विशेष धर्म है।[२६] यह भावात्मक चित्रण प्रधानतः दो रूपों में पाया जाता है—वर्णनात्मक रूप में और मनोवैज्ञानिक रूप में। प्रथम में वर्णन का प्राधान्य होता है और द्वितीय में सांकेतिकता द्वारा मनोवैज्ञानिक रूप से नारी का भावात्मक स्वरूप चित्रित किया जाता है। राधा के मनोभावों की झाँकी निम्न पद में प्रधानतः वर्णनात्मक रूप में ही प्रस्तुत की गई है—

नारि मन भई अरुमाइ।
अति विरह तनु तई व्याकुल, घर न नैकु सुहाइ॥
स्यामसुन्दर मदनमोहन मोहिनी-सी लाई।
चित चंचल कुवरि राधा, खान-पान भुलाई॥
कबहुँ बिहँसति, कबहुँ बिलपति, सकुचि रहति लजाई।
मातु पितु कौ त्रास मानति, मन बिना भई बाइ॥
जननि सौं दोहनी माँगती बेगि दै री माइ।
सूर प्रभु कौं खरिक मिलिहौं, गए मोहिं बुलाइ॥[२७]

---

२५ हिन्दी-साहित्य का आदि काल पृष्ठ ७४।
२६ साहित्यालोचन पृष्ठ २२७।
२७. सूरसागर पृ० खंड पद संख्या १२६६।

मन का उलझना विरह-विह्वल होना घर का बात भी अच्छा न लगना खान पान का भूल जाना कभी हँसना, कभी विलाप करना और कभी सजा कर सकुचा कर रह जाना आदि मनोभावों का यहाँ स्पष्ट वर्णन है। अतः हम इसे भावात्मक प्रवृत्ति का वर्णनात्मक रूप ही मान सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक रूप में नारी के मनोभावों की झाँकी हमें निम्न चौपाइयों में दृष्टिगोचर होती है —

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिनहि सिय सैनहि॥[२८]

सीता का आँचल से अपने चन्द्र मुख को ढकना प्रियतम की ओर बाँकी भौंहों से निहारना अपने नेत्रों को तिरछा करना और इंगित द्वारा यह व्यक्त करना कि यह मेरे पति हैं भारतीय नारी की उस लज्जा का द्योतक है जो ऐसे क्षणों में जाग्रत हो उठती है। अतः यहाँ सांकेतिकता द्वारा सीता के मनोभाव को व्यक्त किया गया है। यह सांकेतिकता अपने आप में मनोवैज्ञानिक है। अतः हमें यहाँ चित्रण की मनोवैज्ञानिक शैली के दर्शन होते हैं।

भावात्मक शैली द्वारा भाव-निरूपण का काम किया जाता है जो कहीं वर्णनात्मक आधार लेकर चलता है और कहीं मनोवैज्ञानिक आधार। नारी-जीवन के जो भी भावात्मक चित्र हिन्दी-साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं वे प्रायः पूर्व कथित प्रवृत्तियों को लेकर ही चले हैं।

बौद्धिकः—नारी-चित्रण की तृतीय उल्लेख्य प्रवृत्ति बौद्धिक कही जा सकती है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत नारी को बुद्धि की कसौटी पर कस कर उसका मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया गया है। यह कहीं गुणात्मक रूप में प्रकट हुआ है कहीं प्रभावात्मक रूप में और कहीं अपेक्षात्मक रूप में। बौद्धिकता की दृष्टि से नारी-जीवन के गुण-दोषों का जहाँ विवेचन मात्र हुआ है वहाँ चित्रण का तुलनात्मक रूप हमारे सामने आता है। जैसे—

नारी का वह हृदय! हृदय में
सुधा-सिन्धु लहरें लेता,
बाड़व ज्वलन उसी में जल कर,
कंचन-सा जल रंग देता।[२९]

---

२८ मानस अयोध्या कांड।

२९. कामायनी पृष्ठ २०१।

अथवा

नारि-स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक असौच अदाया॥[६०]

या

पुरुष-मन में रुचि का विस्तार,
नारि-मन में संकोच अपार।
पुरुष का हो अनन्त पर चाव
नारि का एक कान्त पर भाव॥[६१]

जहाँ नारी-जीवन के गुण-दोषों की मीमांसा विवेक प्रधान हो जाती है तथा तथ्य को सत्य का शाश्वत रूप प्रदान कर दिया जाता है, वहाँ चित्रण के प्रभावात्मक रूप के दर्शन होते हैं। जैसे—

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानि तब परिहरि, नारी बड़ा विकार॥[६२]

अथवा

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।[६३]

अथवा

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥[६४]

अथवा

मोह न नारि-नारि के रूपा।
पन्नगारि यह रीति अनूपा॥[६५]

मोटे अक्षरों वाली पंक्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये तथ्य बुद्धि पर नहीं विवेक पर आधारित हैं। यह गुण-अवगुण का निर्वचन मात्र ही नहीं इसका निचोड़ है। अतः इसमें नारी-चित्रण का प्रभावात्मक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

---

६० लंका-काण्ड (मानस)
६१ साकेत-सर्ग पृष्ठ १ । ४५ ।
६२ कबीर की साखी पृष्ठ १११ ।
६३ कामायनी पृ० १०६ ।
६४ यशोधरा पृ० ४७ ।
६५. मानस, उत्तर कांड ।

बौद्धिक चित्रण के अन्तर्गत जिस तृतीय शैली के दर्शन होते हैं, उसे नारी चित्रण का उपदेशात्मक रूप कहा जा सकता है। प्राय यह चित्रण उपदेशात्मकता लेकर चलता है। यथा—

कामिनी की तनु मानु कहिए सघन बन
जहाँ कोऊ जाय सो तो भूले ही परतु है।
कुंजर की गति कटि केहरि को भय जामे,
बेनी कारी नागिनीऊ फन को धरतु है॥
कुच हैं पहार जहाँ काम चोर रहै तहाँ
साधि के कटाच्छ बान प्रान लूट हरत है।
सुन्दर कहत एक और डर या मैं अति
राक्षसी बदन खाउँ खाउँ ही करतु है॥[16]

अथवा

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की॥[17]

बौद्धिक चित्रण के तीनों ही रूपों में प्राय काव्य का स्थान सूक्तियाँ ग्रहण करती रही हैं क्योंकि इस शैली के अन्तगत मार्मिकता के बजाय कथन के ढंग का अनूठापन ही अधिक दृष्टिगोचर होता है।

कलात्मक—नारी-चित्रण की चतुर्थ शैलीगत प्रवृत्ति कलात्मक कही जा सकती है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत सौन्दर्य-निरूपण का प्राधान्य होता है। 'मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौन्दर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं।'[18] दूसरे शब्दों में सौन्दर्योपासना का ही दूसरा नाम कलात्मकता है। जो कविता नारी के रूप-माधुर्य से हमें तृप्त करती है वही अंतर्वृत्ति की सुन्दरता का आभास देकर हमें मुग्ध भी किया करती है। प्रथम प्रवृत्ति कलात्मकता है, द्वितीय भावात्मक। अत रूप-माधुर्य की प्रतीति कलात्मक शैली के अन्तर्गत ही होती है।

कलात्मक चित्रण के अन्तर्गत दो प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है। जहाँ नारी-सौन्दर्य के सहज स्वरूप के दर्शन होते हैं उसे हम स्वाभाविक और जहाँ इस सौन्दर्य कथन के हेतु चमत्कार की सहायता ली जाती है उसे आलंकारिक कह सकते हैं। उस शैली के अन्तर्गत प्राय अलंकारिता का ही प्राधान्य पाया जाता है, सहज स्वाभाविक सौन्दर्य के चित्र बहुत कम मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि स्त्री-रूप के जो

---

१६ हिंदी-सन्त-काव्यसंग्रह पृ० १७९,८०। १८ रस-मीमांसा पृ० ३०।
१७. कामायनी पृ० १६२।

अथवा

नारि-स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक असौच अदाया॥[१०]

या

पुरुष-मन में छवि का विस्तार,
नारि-मन में संकोच अपार।
पुरुष का हो अगम्य पर चाव
नारि का एक कान्त पर भाव॥[११]

जहाँ नारी-जीवन के गुण-दोषों की मीमांसा विवेक प्रधान हो जाती है तथा तथ्य को सत्य का शाश्वत रूप प्रदान कर दिया जाता है वहाँ चित्रण के प्रज्ञात्मक रूप के दर्शन होते हैं। जैसे —

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानि तब परिहरि, नारी बड़ा विकार॥[१२]

अथवा

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।[१३]

अथवा

✓ अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥[१४]

अथवा

मोह न नारि-नारि के रूपा।
पन्नगारि यह रीति अनूपा॥[१५]

मोटे अक्षरों वाली पंक्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे तथ्य बुद्धि पर नहीं विवेक पर आधारित हैं। यह गुण-अवगुण का निदर्शन मात्र ही नहीं, इसका निचोड़ है। अतः इसमें नारी-चित्रण का प्रज्ञात्मक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

---

१० लंका-काण्ड (मानस)
११ साकेत-संत पृष्ठ १।४५।
१२ कबीर की साखी पृष्ठ ११३।
१३ कामायनी पृ० १०६।
१४ यशोधरा पृ० ४०।
१५ मानस, उत्तर कांड।

बौद्धिक चित्रण के अन्तर्गत जिस तृतीय शैली के दर्शन होते हैं, उसे नारी चित्रण का उपदेशात्मक रूप कहा जा सकता है। प्राय: यह चित्रण उपदेशात्मकता लेकर चलता है। यथा—

कामिनी की तनु मानु कहिए सघन बन
जहाँ कोऊ जाय सो तो भूले ही परतु है।
कुभर की पति कटि केहरि को भय जामे
बेनी काली नागिनीऊ फन को धरतु है॥
कुच हैं पहार जहाँ काम चोर रहे तहाँ
साधि के कटाच्छ बान प्रान कूं हरत है।
सुन्दर कहत एक और डर ता में अति
राच्छसी बदन खाऊँ खाऊँ ही करतु है॥[१६]

अथवा

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की॥[१७]

बौद्धिक चित्रण के तीनों ही रूपों में प्राय: काव्य का स्थान सूक्तियाँ ग्रहण करती रही हैं क्योंकि इस शैली के अन्तर्गत मार्मिकता के बजाय कथन के ढंग का अनूठापन ही अधिक दृष्टिगोचर होता है।

कलात्मक—नारी-चित्रण की चतुर्थ शैलीगत प्रवृत्ति कलात्मक कही जा सकती है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत सौन्दर्य-निरूपण का प्राधान्य होता है। 'मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौन्दर्य का प्रतिमान कान्ति प्रतिष्ठित है।[१८] दूसरे शब्दों में सौन्दर्योपासना का ही दूसरा नाम कलात्मकता है। जो कविता नारी के रूप-माधुर्य से हमें दूर करती है, वही संस्कृति की दुरवस्था का आभास देकर हमें सुख भी दिया करती है। प्रथम प्रवृत्ति कलात्मकता है, द्वितीय भावात्मक। अत: रूप-माधुर्य की प्रतीति कलात्मक शैली का अन्तर्गत ही होती है।

कलात्मक चित्रण के अन्तर्गत दो प्रकार की प्रवृत्ति पाए जाते हैं। जहाँ प्रकृति सौन्दर्य के सहज स्वरूप के दर्शन होते हैं, उसे हम स्वाभाविक और जहाँ इस सौन्दर्य वर्णन के हेतु चमत्कार की सहायता ली जाती है उसे चमत्कारिक कह सकते हैं। इस शैली के अन्तर्गत प्राय: चमत्कारिकता का ही प्राधान्य रहा है, प्रकृत सौन्दर्य सौन्दर्य के चित्र बहुत कम मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि ...

---

१६. हिंदी-सप्त-काव्यसंग्रह पृ० १०६,८०। १८. रामचन्द्रिका पृ० ३०।
१७. कामायनी पृ० १६२।

उपमान कवि-परिपाटी बन चुके हैं, उनकी अवहेलना करना असम्भव है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूप की चकाचौंध उत्पन्न करने के लिए चमत्कार-प्रदर्शन आवश्यक-सा हो गया है।

स्वाभाविक कलात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत नारी-सौन्दर्य का एक सहज स्वरूप सामने उपस्थित होता है। जैसे—

सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥
भूषण सकल सुदेस सुहाए। अंग-अंग रचि सखिन बनाए॥[६९]

अथवा

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही 'उर्मिला'।[७०]

या

कौन हो तुम वसन्त के दूत, विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
घन तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मन्द बयार॥[७१]

यहाँ केवल अतुलित छवि भारी स्वर्ग का सुमन वसन्त के दूत जैसे विशेषण लगा कर ही नारी के स्वाभाविक सौंदर्य की व्यंजना का प्रयत्न किया गया है किन्तु आलंकारिकता के अन्तर्गत उपमाओं रूपकों उत्प्रेक्षाओं की बाढ़-सी लग जाती है। अंग प्रत्यंग की शोभा को व्यक्त करने के लिए उपमाओं का अंबार-सा खड़ा कर दिया जाता है। यथा—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली॥
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीला मयी।
श्री राधा मृदु भाषिणी मृग दृगी माधुर्य की मूर्ति थीं॥[७२]

आलंकारिकता के साथ-साथ कूट कल्पनाओं का भी आधार लिया जाता है। जैसे—

अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गज बर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग॥[७३]

---

६९. मानस, बाल-कांड।
७०. साकेत पृ० २८।
७१. कामायनी पृ० ५०।
७२. प्रिय-प्रवास ४।४।
७३. सूरसागर खंड २, पद संख्या-२७२८।

शैलीगत प्रवृत्तियाँ वास्तव में कवि-कौशल की परिचायक होती हैं। कल्पना चातुर्य, भावगाम्भीर्य एवं वर्णन का चमत्कारपूर्ण विधान ही इसके अन्तर्गत पाया जाता है। कल्पनात्मक शैली नारी-चित्रण को आधारभूत सामग्री प्रदान करती है भावात्मक शैली के अन्तर्गत इसका स्वरूप-निरूपण होता है, बौद्धिक चित्रण रचयिता के नारी विषयक दृष्टिकोण का निर्देशक होता है और कलात्मक शैली के अन्तर्गत कवि के सौंदर्य-ज्ञान का स्वरूप व्यक्त होता है।

तृतीय अध्याय
हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र-भूमि

- नायिकाओं का व्यक्तित्व विश्लेषण
- उप-नायिकाओं का व्यक्तित्व विश्लेषण
- अन्य नारी पात्रों का विश्लेषण

कथा में उनका स्थान, स्वभाव एवम् मनोभावों के अन्तर्गत उनका व्यक्तित्व, चारित्रिक विशेषताएँ एवं दुर्बलताएँ।

नर क्षेत्र के भीतर रहनेवाली काव्यदृष्टि को अपनी यात्रा का अधिकांश भाग चरित्र भूमि पर ही व्यतीत करना पड़ता है। चरित्र भूमि महाकाव्यों का मुख्य यात्रा-क्षेत्र है। "हृदय पर नित्य प्रभाव रखनेवाले रूपों और व्यापारों की भावना को सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अंतःप्रकृति का सामञ्जस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है।[1] इस प्रकार का क्षेत्र चरित्र भूमि और प्रयास का नाम चरित्र चित्रण है। साथ ही "रस संचार से आगे बढ़ने पर हम काव्य की उस उच्च भूमि में पहुँचते हैं जहाँ मनोविकार अपने क्षणिक रूप में ही न दिखाई देकर जीवन-व्यापी रूप में दिखाई देते हैं।[2] अतः काव्य की इसी उच्च भूमि और मनोविकार के जीवनव्यापी रूप का ही दूसरा नाम चरित्र चित्रण है।

चरित्र चित्रण के स्वरूप

हिन्दी महाकाव्यों की चरित्रभूमि में नारी-चित्रण के अंतर्गत हम नायिकाओं उप नायिकाओं एवम् अन्य नारी-पात्रों का चित्रण पाते हैं। नायिकाओं के अंतर्गत अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से केवल हिन्दी-महाकाव्यों की प्रधान प्रमुख नायिकाओं का मूल्यांकन किया गया है। उप-नायिकाओं के अंतर्गत महाकाव्यों में प्राथमिकता अथवा गौण रूप से आनेवाले स्त्री-पात्रों की चर्चा की गई है एवम् अन्य नारी-पात्रों के अंतर्गत उल्लेख योग्य साधारण नारी-पात्रों का निरूपण प्रस्तुत किया गया है। रानी से लगाकर राजप

१ रस-मीमांसा पृ० ७।

२ गोस्वामी तुलसीदास पृ० ६७।

महाकाव्य तक आते-आते प्रधानतः तीन बातें चरित्र चित्रण की दृष्टि से हमारे सामने आती हैं —

प्रथम के अंतर्गत हमें चरित्र-चित्रण का कथात्मक रूप ही दिखाई पड़ता है जिसमें रूप-वर्णन और जीवन-वृत्त के माध्यम द्वारा ही नारी-पात्रों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मनोविकारजनित प्रकृतिस्थ स्वरूप का प्रायः अभाव है।

द्वितीय के अंतर्गत हमें चरित्र-चित्रण का वह प्रकृतिस्थ स्वरूप दृष्टि-गोचर होता है जहाँ मनोविकारों के इतने भिन्न-भिन्न प्रकृतिस्थ स्वरूप दिखाई पड़ते हैं कि पात्र का निज का व्यक्तित्व, जातिगत भावनाओं अथवा समुदाय विशेष का प्रतिनिधित्व करने लगता है।

तृतीय के अंतर्गत हमें चरित्र-चित्रण का वह सार्वकालिक शाश्वत स्वरूप दृष्टि-गोचर होता है जो देश, काल और कथा की परिधि से ऊपर उठ कर विश्वजनीन हो जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार चरित्र का विधान चार रूपों में हो सकता है—१ आदर्श रूप में, २ जाति-स्वभाव के रूप में ३ व्यक्ति स्वभाव के रूप में और ४ सामान्य स्वभाव के रूप में। साथ ही प्रबन्ध काव्य में स्वभाव की व्यंजना पात्रों के वचन और कर्म द्वारा ही होती है उनके स्वगत भावों और विचारों का उल्लेख बहुत कम मिलता है।[1] इसके अतिरिक्त महाकाव्यकार का मंतव्य दृष्टिकोण अथवा उसकी रुचि भी जो सांकेतिक वर्णनात्मक या विश्लेषणात्मक हो सकती है पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक होती है।

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि पर लगभग एक हजार वर्षों की चरित्र साधना का लेखा-जोखा संचित है। परम्परा के निर्वाह के साथ ही इस चरित्र-साधना में कालानुसरण की अद्भुत क्षमता दृष्टिगोचर होती है। नारी-चित्रण की दृष्टि से आज यह कहा जा सकता है कि नारी ने अपने समानाधिकार के दावे के साथ साहित्य में प्रवेश किया है और दृढ़ तथा उदात्त कंठ से पिछली शताब्दी की कल्पित अवास्तविक नारी-मूर्ति के चित्रण का प्रतिवाद किया है।[2] इस प्रकार यह चरित्र-साधना नवीनता और गतिशीलता से अनुप्राणित अवश्य हुई है। किन्तु दौर्भाग्यवश नवीनता के मद में हमारी सुदीर्घ साधना-जन्य नारी दृष्टि-भ्रमित नहीं होने पाई है। हिन्दी का महाकाव्यकार नवीनता का हिमायती होकर भी नारी चरित्र के उस रूप का हिमायती नहीं है जो हृदयहीन होकर सिर पर चढ़ा रहे।[3]

---

१ जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृ० १२०, ३ कामायनी पृ० २४१।
१२१।
२ हिन्दी-साहित्य की भूमिका पृ० १११।

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि पर अंकित नारी-विग्रह की चरित्र-साधना का सहज यथार्थ रूप समझने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम हिन्दी महाकाव्यों की नायिकाओं उपनायिकाओं एवम् अन्य नारी-पात्रों के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें। विश्लेषण करते समय कथा में उनका स्थान स्वरूप स्वभाव एवम् मनोभावों के के अंतर्गत उनका व्यक्तित्व जानना आवश्यक है। संक्षेप में इस विश्लेषण का स्वरूप महाकाव्यानुसार इस प्रकार है —

नायिकाओं का व्यक्तित्व विश्लेषण

"रासो" की संयोगिता—पृथ्वीराज रासो की प्रधान नायिका संयोगिता को हिन्दी-महाकाव्यों की प्रथम नायिका होने का गौरव भी प्राप्त है। रासो की नायिका रिक कथा-वस्तु के अंतर्गत उसका महत्वपूर्ण स्थान है। पृथ्वीराज और जयचन्द के बीच की शत्रुता को तीव्र स्वरूप प्रदान करते हुए संयोगिता के माध्यम द्वारा उस कलह की पृष्ठ-भूमि निर्मित की गई है जिसने कथा को एक नया मोड़ दिया है। संयोगिता-हरण का परिणाम है जयचंद की शत्रुता एवम् इस शत्रुता का परिणाम है पृथ्वीराज की कीर्ति-कथा का अंत। अतः रासो की कथावस्तु में संयोगिता का स्थान प्रासंगिक उल्लेख मात्र ही नहीं बनकर रह गया है।

संयोगिता का व्यक्तित्व कम रासो की चमत्कारमकता के अंतर्गत ही व्यक्त हुआ है। संयोगिता अपने "पूर्व जन्म की कथा"[४] के अनुसार मंजुघोषा नामक अप्सरा थी जिसे जरज ऋषि के शाप के कारण जयचन्द के घर जन्म लेना पड़ा था। "विनय मंगलप्रस्ताव"[५] के अनुसार संयोगिता के प्रति जयचन्द के स्नेह में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। बाल्य काल से ही उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था और मदन ब्राह्मणी उसकी पाठिका थी। संयोगिता दत्तचित्त होकर विद्याध्ययन करती थी और यौवन-काल के आगमन के साथ ही उसे 'विनय मंगल' का पाठ पढ़ाया गया था। 'विनय मंगल' द्वारा संयोगिता को स्त्रियों की पति के प्रति अनन्य प्रेम भावना स्त्री के लिए विनय-धारणा की आवश्यकता आदि का ज्ञान कराया गया था। रूप एवम् शिक्षा संयोगिता को रूप-गुण-संपन्ना बना रहे थे।

'शुक वर्णन'[६] नामक समय से ज्ञात होता है कि शुकी द्वारा ब्राह्मणी का वेश धारण कर संयोगिता के मन में श्रवणजन्य पूर्वानुराग उत्पन्न किया गया था। पृथ्वीराज के स्वाभाविक गुणों एवम् उसकी प्रशंसा सुन कर संयोगिता के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति अनुराग जागृत हो उठा और वह पृथ्वीराज से विवाह करने की प्रतिज्ञा कर, प्रेम में

---

४ पृथ्वीराज रासो समय ४२। ६ वही समय ४७।
५ वही समय ४६।

दूर होकर रात-दिन उसी के ध्यान में मग्न रहने लगी। यह प्रेम-निमग्नता संयोगिता के प्रेममय स्वरूप को व्यक्त करती है।

अवरोधों के बीच संयोगिता का यह प्रेममय स्वरूप और अधिक निखर उठता है। 'बालुकाराय समय'[७] से ज्ञात होता है कि संयोगिता के मन में पूर्वानुरागजनित विरह-वेदना संचरित होने लगी थी। जब पृथ्वीराज ने जयचन्द के राजसूय यज्ञ के आमन्त्रण को ठुकरा दिया और जयचन्द द्वारा पृथ्वीराज के अपमान की कथा संयोगिता तक पहुँची तो वह दुखित हो उठती है और पृथ्वीराज से विवाह करने के प्रण को दुहराती है। अपने प्रेमी का अपमान सहन करना उसके लिए कठिन हो जाता है। 'विनय मंगल' द्वारा वर्णित अनन्य प्रेम-भावना के दर्शन संयोगिता में हमें 'पज्जून विध्वंस'[८] एवं 'संयोगिता नेम'[९] के अन्तर्गत होते हैं। यह विध्वंस एवं पृथ्वीराज पर अपने पिता द्वारा की जानेवाली चढ़ाई के समाचार ज्ञात कर संयोगिता अपने प्रण को और भी सुदृढ़ करती रहती है। जयचन्द द्वारा स्वयंवर-आयोजन के समाचार भी उसके अनुराग में वृद्धि ही करते हैं। पिता द्वारा भेजी जानेवाली दूती की भी संयोगिता एक नहीं चलने देती और परिणामस्वरूप जयचन्द इस प्रेम-हठ के लिए कुपित होकर संयोगिता को गंगा के किनारे निवासस्थान देता है। इन कठिनाइयों की चिन्ता किए बगैर संयोगिता अपने प्रण पर अटल रहती है।

'कनवज्ज समय'[१०] के अन्तर्गत संयोगिता का प्रेममय हृदय कर्तव्य-बुद्धि और विवेक स्पष्ट हो जाता है। संयोगिता अपनी खिड़की से प्रथम बार पृथ्वीराज को देखती है प्रथम दर्शन से प्रेम-विमोहित-सी हो जाती है। पर इस जड़ता के बीच संयोगिता की कर्तव्य-बुद्धि जागृत होती है। दासी को मोतियों का थाल देकर वह पृथ्वीराज के निकट भेजती है। दासी पृथ्वीराज के सामने संयोगिता के प्रेम को व्यक्त करती है। शेष दासियाँ दोनों के पारस्परिक अनुराग को जानकर पृथ्वीराज को खिड़की में ले जाती हैं और पृथ्वीराज तथा संयोगिता का गान्धर्व विवाह हो जाता है। संयोगिता का यह आनन्द कुछ ही समय तक रह पाता है और पृथ्वीराज के जाते ही संयोगिता विरह विह्वल हो उठती है। वियोग विवेक को जागृत करता है और संयोगिता के मन में गुरुजनों तथा माता-पिता की आज्ञा न मानने का परिणाम परिताप के रूप में प्रगट होता है। इस परिताप के मध्य हम निश्चय संयोगिता के मन की दुर्बल नारी भावना के भी दर्शन हो उठते हैं। यह नारी-मन की दुर्बलता मरण को वरण करना चाहती है और उच्छ्वास अश्रु तथा मूर्च्छना से आवृत होकर संयोगिता का विरह-व्याकुल मनिमस्वरूप सामने आ जाता है।

---

७ पृथ्वीराज रासो समय ४८।
८ वही, समय ४६।
९. वही समय ५०।
१० वही, समय ६१।

काका कन्ह द्वारा प्रतिताड़ित होकर पृथ्वीराज के लौट आने पर संयोगिता पुनः अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाती है। बहुत्व सकोप का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। पृथ्वीराज द्वारा साथ चलने का आमंत्रण पाकर भी वह दुविधा में पड़ जाती है। इस दुविधा का कारण है अनुराग और आतंक—पिता की विशाल सेना का भय। यद्यपि पति के साथ ही उसकी गति है परन्तु पिता की विशाल चतुरंग-सेना का कुछ सामन्तों के साथ पृथ्वीराज का मुकाबला करना उसे फूंक से पहाड़ उड़ाने जैसा लगता है। पिता की सैन्य शक्ति उसकी बेबसी है और पति की शक्ति के प्रति अविश्वास अधर्म। अनुरागजनित आस्था और बुद्धिजनित आशंका संयोगिता के व्यक्तित्व को भय रसमय बना देती है। उस समय 'साक्षात् शृङ्गार रस-स्वरूप' संयोगिता अपना आमा पीड़ा खोलकर मन-ही-मन मुस्कराती हुई हास्य-रस की मूर्ति हो जाती है। उसके नयनों से करुण रस टपकता है पर उसका वाक्य-विलास अद्‌भुत रस का उद्दीपक उसकी हार्दिक दृढ़ता ही वीर और पिता के भय का आभास भयानक रस का भण्डार बन जाता है। समर-दृश्यों का मानचित्र बीभत्स और सामन्तों के पराक्रम के साथ उसके चित्त में आश्चर्य उत्पन्न करते हैं। पर इन सब बातों से उकता कर भावी के भरोसे जब वह ईश्वर पर सब कुछ छोड़ देती है तो शान्त रस की प्रतिमूर्ति बन जाती है।[11] बहुत विचार वितर्क के बाद संयोगिता के मन में विश्वास उत्पन्न होता है और वह पृथ्वीराज के घोड़े पर सवार होकर पितृ-गृह का परित्याग कर देती है। संयोगिता पृथ्वीराज और सामंतों के मध्य होनेवाला संवाद जहाँ संयोगिता के विवेकी स्वरूप को हमारे सामने रखता है, वहीं नारी के शंकाकुल स्वरूप की झांकी भी संयोगिता में दृष्टिगोचर हो जाती है।

'कनवज्ज समय' के अंतर्गत संयोगिता का वीरांगना-वेश और पितृ-स्नेह की झलक भी दिखाई पड़ती है। युद्ध-भूमि में पति के साथ घोड़े पर सवार होकर जाना[12] और केहरी कंठीर द्वारा पृथ्वीराज के गले में कमान डाल देने पर संयोगिता का प्रत्यञ्चा काट देना[13] संयोगिता के वीरत्व के द्योतक हैं। अतः संयोगिता का व्यक्तित्व अंतःपुर की शोभा ही नहीं क्षात्र-धर्म से अनुप्राणित नारी का रण-रंग रंजित दुर्गा-स्वरूप भी है। संयोगिता के व्यक्तित्व का दूसरा रूप उस समय उपस्थित होता है जब पृथ्वीराज कमान पर बाण चढ़ाकर जयचन्द को मारने के लिए तत्पर होता है। तभी संयोगिता कांपते हुए हाथ जोड़कर ऐसा करने के लिए पृथ्वीराज को रोकती है।[14] पितृ प्रेम के वशीभूत होकर ही संयोगिता में यह दुर्बलता आ गई थी। यह दुर्बलता नारी-सुलभ और स्वाभाविक ही है।

---

११ पृथ्वीराज रासो, समय ६१। १३ वही पृ० १८६७।
१२ वही पृ० १८२८। १४ वही, समय १८४४।

शुक चरित्र प्रस्ताव'[१४] के अनुसार संयोगिता के दाम्पत्य जीवन की झाँकी स्पष्ट हो जाती है। पृथ्वीराज संयोगिता को अर्ध आसन की अधिकारिणी बनाता है और संयोगिता का यह प्रभुत्व इछिनी के हृदय में संयोगिता के प्रति ईर्ष्या-भाव उत्पन्न कर देता है। संयोगिता को अपने प्रेम पर विश्वास है और इछिनी के षड्यंत्र से अपरिचित रह कर वह सभी रानियों को उचित आदर देती है। शुक द्वारा की गई प्रेम-परीक्षा में भी संयोगिता खरी उतरती है। संयोगिता के चरित्र में सौतिया डाह के लक्षण कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके अतिरिक्त अंतःपुर में निवास करते हुए भी संयोगिता के चरित्र में हीनता नहीं आने पाई है। कवि चंद का पुर्जा मिलने पर और गायत्री के आने के समाचारों से अवगत रहने के कारण जब पृथ्वीराज पश्चाताप करते हुए रुष्ट होकर दरबार में चला जाता है तो संयोगिता का स्वाभिमान जागृत हो उठता है। वह सोचती है कि 'स्त्रियों को तो लोग न जाने क्यों नीच बुद्धि समझते हैं। यह नहीं जानते कि इस सृष्टि की रचना स्त्रियों से ही है। जो स्त्री जन्मभर सुख-दुःख बटाती है और मरण में भी उसका साथ देती है उसे तुच्छ समझना अन्याय नहीं तो क्या है?'[१५] संयोगिता की यह विचारधारा उस युग की उस नारी का आक्रोश है जो अंतःपुर की घुटन में काम-केलि और विषय-वासना की पूर्ति का एक साधन मात्र समझी जाती थी। पति के बंदी होने के समाचार ज्ञात होते ही प्राणों का विसर्जन कर देना संयोगिता के प्रेम की चरम परिणति है।

जहाँ तक संयोगिता की चारित्रिक विशेषताओं एवम् दुर्बलताओं का प्रश्न है कथा के प्रवाह से उसकी चारित्रिक विशेषताएँ उभर आई हैं और रासोकार की कथानक रूढ़ियों में अप्रत्यक्ष रूप से उसकी चारित्रिक दुर्बलताओं को भी विशेषताओं के नाम पर प्रगट किया है। उसकी ऐतिहासिकता को अलौकिकता ने नारी-सुलभ शील स्वभाव को अतिरंजनापूर्ण रूप-वर्णन ने और उसके प्रेममय स्वरूप को घोर कामुकता परक शृंगार ने ढक लिया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'कनवज्ज समय' में जहाँ संयोगिता की चारित्रिक विशेषताओं को उभरने का अवसर मिला है वहीं 'शुक चरित्र प्रस्ताव' के अंतर्गत उसकी चारित्रिक विशेषताएं, उस युग की विलासितापरक काजल की कोठरी में दुर्बलताओं का शिकार होने के लिए छोड़ दी गई हैं।

पद्मावत की पद्मावती:—पद्मावती 'पद्मावत' की प्रमुख नायिका है। उसका चित्रण इसीलिए सर्वत्र प्रधान है। आधिकारिक कथावस्तु की गति एवम् प्रगति प्रदान करने में उसकी चरित्र-सृष्टि अपना विशिष्ट स्थान रखती है। कथावस्तु के पूर्वार्ध एवम् उत्तरार्ध का केन्द्र-बिन्दु पद्मावती ही है। अतः कथा में पद्मावती की

---

१४ पृथ्वीराज रासो समय ६२। १५ वही, समय ६६, छं० २६६से२६६।

स्थिति काल्पनिकता एवम् ऐतिहासिकता दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कथा की सांकेतिकता के नाम पर 'बुधि पदमिनी चीन्हा'[१७] के अनुसार रूपक अथवा अन्योक्ति के रूप में पद्मावती को बुद्धि का प्रतीक मानना महज गोरख-धंधा ही है।

पद्मावती सिंहल के राजा गन्धर्वसेन की प्रधान पटरानी चम्पावती की कोख से उत्तम घड़ी में उत्पन्न हुई थी। 'जन्म खंड'[१८] के अनुसार पाँच वर्ष की अवस्था में ही उसे पुराण पढ़ने बिठा दिया गया था और बारह वर्ष की अवस्था तक पहुँचते वह सयानी हो गई थी। वह अत्यन्त रूपवान थी। उसके कुरंग-नयन कीर-सी नासिका कमल-सा मुख माणिक-से अधर, हीरे के समान दाँत केहरि-कटि हृदय पर हुलसनेवाले कनक-गंभीर कुच और अंग सुवास सभी अद्वितीय थे। यौवन के भार से झुकी पद्मावती की संपूर्ण कलाओं को रच रचकर विधाता ने संवारा था। यौवनागमन ने उसकी चाह को जागृत कर दिया था और नारी-सुलभ चिन्ता उसके मन में जागृत होने लगी थी क्योंकि 'गंगा सदृश यौवन' आ जाने के बाद भी पिता उसके लिए कहीं 'बात' नहीं चला रहे थे और माता त्रास के कारण कह नहीं पाती थी। ऐसी स्थिति में हीरामन के समक्ष उसके उद्गार जहाँ उसके नारी-सुलभ स्वाभाविक स्वरूप को हमारे सामने रखते हैं वहीं अपने भविष्य के लिए चिन्तित होना पद्मावती की जातिगत विशेषता को भी प्रदर्शित करता है। पिता का बात न चलाना और माता द्वारा त्रास के कारण चुप्पी धारण करना हर कन्या की चिन्ता का विषय हो सकता है। आकुलता एवम् प्रियजन के निकट सहानुभूति की इच्छा से आत्माभिव्यक्ति स्वाभाविक ही है। अतः सयानी पद्मावती में यौवनागमन के साथ इस आकुलता एवम् आत्माभिव्यक्ति का पाया जाना सर्वथा नारीजनोचित ही है।

'मानसरोदक खंड'[१९] के अंतर्गत सखियों के कहने से नैहर-सुलभ खेल में प्रवृत्त हो जाना, जूड़ा खोलकर पानी में धँसना जल-क्रीड़ा करना हार का खेल रचना और हार के गुम होते ही घर पर उसके सम्बन्ध में पूछे जाने की चिन्ता से आँखों का डबडबा जाना पद्मावती की जातिगत विशेषताओं एवम् दुर्बलता को भी व्यक्त करते हैं। क्रीड़ा-कलाप की स्वच्छन्दता एवम् जल-क्रीड़ा के समय की उन्मुक्तता नारी के लिए नैहर में ही सुलभ है। विवाहोपरान्त प्रायः स्त्रियों में लज्जा एवम् जड़ता आ जाती है। इसी प्रकार राजपुत्री के लिए एक मोतियों की माला का खो जाना विशेष चिन्ता का विषय नहीं होता किन्तु माला के गुम जाने पर पद्मावती की आँखों का डबडबा जाना और पूछे जाने पर इस हानि की सफाई का प्रश्न पद्मावती की नारी

---

१७ जायसी ग्रंथावली पृ० ३०१।
१८ वही पृ० १९ से २२।
१९ वही पृ० २१ से २९।

पूर्णतः दुर्बलता के ही द्योतक हैं। अतः पद्मावती का यह सरला स्वरूप भी स्वाभाविक ही है।

पद्मावती का प्रेममय स्वरूप उसके व्यक्तित्व का विशिष्ट अंग है। राजा के योग के संताप से प्रेमवश होकर वह वियोग धारण कर लेती है और पर-पीड़ा से उसका हृदय पीड़ा पाने लगता है।[२०] पद्मावती का यह वियोग संयोग एवम् श्रवण जन्य आकर्षण के पूर्व ही उचित होता है जो संभवतः उसके प्रेमाकुल हृदय को व्यक्त करने के लिए ही चित्रित किया गया है। भावी की प्रतिच्छाया का पूर्वाभास प्रायः प्रेमाकुलों को हो जाया करता है। पद्मावती इसका अनुभव करती है। इसी वियोगावस्था में हीरामन का आगमन उसे संतोष प्रदान करता है। हीरामन को गले लगाकर उसका रोना और सखियों के पूछने पर पद्मावती का यह कहना कि बिछुड़न का जो दुःख हृदय में भरा हुआ था मिलनजन्य सुख के कारण वही दुःख नयनों का नीर होकर ढुलक चला है।[२१] उसकी यह सांत्वना क्षुभित प्रेमाकुलता का ही प्रतीक है।

प्रेमाकुलता में भी पद्मावती का प्रेम अंधा नहीं है। हीरामन के मुख से रत्नसेन की प्रशंसा सुनकर पद्मावती के मन में जागनेवाला अभिमान भी विवेकजन्य है। पद्मावती का यह कथन है कि कञ्चन को काँच का लोभ नहीं होता मन ही उसके साथ शोभा पाता है[२२] उसकी सजगता का द्योतक है। पिता के सम्मुख इस चर्चा को चलाने का अर्थ सिंह के मुख में हाथ डालने जैसा[२३] समझना उसकी आशंका को व्यक्त करता है। यह आशंका अनिश्चयजनित है। अतः शंका तक पहुँचता हुआ यह 'अनिश्चय प्रेम प्रसूत है एवं रति-भाव का द्योतक है।[२४] प्रायः प्रिय-प्राप्ति के अनिश्चय की आशंका प्रेमी हृदयों की आशाओं को दृढ़ता प्रदान करती है। पद्मावती के मन में जागी यह आशा कि यदि वह प्रेम-वियोगी मरता है तो हत्या मुझे ही लगेगी क्योंकि उसके वियोग का कारण मैं ही हूँ।[२५] प्रेमियों के हृदय में उठनेवाली आशा ही है और यह निश्चय कि 'जो वह जोग समारे छाला। पाइहि भुगुति देहुँ जय माला'[२६] इस आशा को दृढ़ता प्रदान करता है। यह दृढ़ता पद्मावती के मन में रत्नसेन को सूली देने के समाचार ज्ञात करके और अधिक बढ़ जाती है। पद्मावती का यह निश्चय कि योगी मेरे कारण मरता है तो मेरा उसका साथ धरती-स्वर्ग का है। वह रहता है तो जन्मभर उसकी सेवा करूँगी और यदि जाता है तो मेरे प्राण

---

२० जायसी ग्रंथावली पृ० ७१।
२१ वही पृ० ७६।
२२ वही पृ० ७७।
२३ वही पृ० ७७।
२४ जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृ० ९७।
२५ जायसी ग्रंथावली पृ० ७८।
२६ वही पृ० ७८।

ही उसका साथ देंगे[२७] पद्मावती के प्रेममय स्वरूप की महत्ता को व्यक्त करता है। प्रेम-परीक्षण के श्रम उत्सर्ग की कसौटी पर कंचन की रेखा में अंकित कर उसके व्यक्तित्व को सच्ची प्रेमिका के रूप में प्रकट करते हैं।

पद्मावती का विरहिणी स्वरूप भी उसके चरित्र की एक विशेषता है। संकट काल के लिए चतुर गृहिणियाँ प्रायः कुछ बचा लिया करती हैं। नारी की यह संचय वृत्ति उसके गृहिणी स्वरूप का एक अंग होती है। जगन्नाथपुरी पहुँचने पर जब रत्नसेन गाँठ में कुछ न रहने का संकेत करता है तो पद्मावती लक्ष्मी द्वारा चुपचाप प्राप्त रत्नों में से एक लाल राजा को देती है और चतुर गृहिणी की तरह यह कहने से भी नहीं चूकती कि 'संग्रह किया हुआ धन ही संकट के समय काम आता है।'[२८] यहाँ पद्मावती में गृहिणी की संचय-वृत्ति के साथ-साथ उपदेश देने की नारी-सुलभ उस प्रवृत्ति के भी दर्शन हो जाते हैं जो प्रायः ऐसे ही अवसरों पर पुरुषों की फिजूल खर्ची पर घुड़कियाँ देती है।

पद्मावती की दूरदर्शिता एवम् बुद्धिमत्ता का परिचय राघव चेतन के निष्कासन एवम् गोरा-बादल को राजा की मुक्ति के लिए तैयार करने के समय मिलता है। यह जानकर कि कवि की वाणी कृपाण की तलवार-सी होती है और यह बहुत करने के पश्चात् प्राप्त होता है अथवा थोड़े ही न मिलता है[२९] पद्मावती का राघव चेतन को बुलाकर, अपना एक कंगन दे देना उसकी दूरदर्शिता का द्योतक है। इसी प्रकार स्वयं गोरा-बादल के घर जाकर उसने अपनी बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है। सेवक के द्वार जाना रानियों को नहीं सोहता और गोरा-बादल के ही शब्दों में यह काम 'गंगाजल के विपरीत दिशा में बहने'[३०] जैसा था। किन्तु संकट के समय सेवक के द्वार जाकर रानियों के आचरण के विपरीत कार्य कर पद्मावती ने अपनी दूरदर्शिता एवम् बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है। इसी प्रकार पद्मावती ने अपनी बात जहाँ गोरा-बादल के सामने रोते हुए रखी है,[३१] वहीं गोरा-बादल को द्रोण, पार्थिव अनिरुद्ध, परशुराम राघव[३२] जैसी संज्ञाएँ भी प्रदान की हैं। प्रथम द्वारा उसने अपनी व्यक्तिगत बुद्धिमत्ता को प्रगट किया है और द्वितीय द्वारा व्यावहारिक बुद्धिमत्ता को। रोकर काम निकालना नारी-चातुर्य है और प्रशंसा कर काम करवाना व्यावहारिक चातुर्य।

पद्मावती ने देवपाल की दूती[३३] एवम् बादशाह की दूती[३४] के समक्ष जो

---

२७ जायसी ग्रंथावली पृ० ७४।
२८ वही पृ० १८६।
२९ वही पृ० २०१।
३० वही पृ० २८६।
३१ जायसी ग्रंथावली पृ० २७१।
३२ वही पृ० २८१।
३३ वही पृ० २६७ से २७४।
३४ वही पृ० २७१ से २७८।

उद्गार व्यक्त किये हैं उनसे उसकी पतिनिष्ठा एवम् पतिव्रत पर ही प्रकाश नहीं पड़ता अपितु, धर्म एवम् पुण्य बुद्धि मिश्रित दाम्पत्य प्रेम का भी स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। पद्मावती का अनन्य प्रेम उसे केवल प्रेम-गर्विता के रूप में ही चित्रित नहीं करता वह धर्म प्रेमिका भी सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त पद्मावती का व्यक्तित्व क्षत्राणी नारी सुलभ ओज एवम् उत्सर्ग भाव से भी उद्भासित है। गोरा-बादल को युद्ध के लिए उत्साहित[३५] करते समय उसकी ओजस्विनी वाणी में क्षत्राणी का जातिगत ओज प्रस्फुटित होने लगता है। चिता पर चढ़कर सती होने की उत्सर्ग-वेला में साईं का कंठ न छोड़ने का निश्चय तथा उस गाँठ को जो पति ने जोड़ी थी आदि-अंत तक न छोड़ने की *भावना*[३६] *उसके उत्सर्ग भाव और दृढ़ आस्था को प्रकट करती है।* अतः उत्सर्ग एवम् अनुराग का महीन ताना-बाना पद्मावती के व्यक्तित्व का निर्माण करता है जो वैयक्तिक विशेषताओं के साथ जातिगत गुणों से भी परिपूरित है।

व्यक्तिगत विशिष्टताएं रखने के बाद भी नारी होने के कारण पद्मावती का चरित्र जातिगत दुर्बलताएं लिये हुए है। बहुपत्नित्व प्रथा के परिणामस्वरूप पद्मावती को भी सौतिया डाह का शिकार होकर सामान्य नारी की तरह ईर्ष्या-भाव को प्रश्रय देना पड़ता है। नागमती के साथ होनेवाले पद्मावती के विवाद[३७] द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि पद्मावती में वे सारी दुर्बलताएं हैं जो प्रायः साधारण नारियों में सौत के प्रति हुआ करती हैं। नागमती को नागिन समझ कर अपने रूप-गुणों की प्रशंसा के साथ अपने प्रेम के बल पर नीचा दिखाने और जली-कटी सुनाने की प्रवृत्ति भी पद्मावती में पाई जाती है। कहा-सुनी से प्रारम्भ होनेवाली इस कमजोरी की अति 'हाथा-पाई' में दिखाई पड़ती है और यह 'चौदंता भिड़ंत' पद्मावती की जातिगत दुर्बलता को ही प्रगट करती है। उसकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता इस दुर्बलता में खो जाती है। यह जातिगत दोष जहाँ उसके व्यक्तित्व को कुछ छोटा कर देता है वहीं उसका चरित्र काल्पनिकता की अलौकिक भूमि से उतरकर लौकिक भावभूमि पर आसीन हो जाता है। इस प्रकार साधारणता-असाधारणता का यह ताल-मेल उसे कवि कल्पनाजनित आदर्श-नारी के साथ-साथ हाड़-माँस की नारी भी रखता है।

रामचरित मानस की सीता—मानस की प्रधान नायिका के रूप में सीता का चित्रण सात्विक एवम् आदर्श प्रधान है। मानस की आधिकारिक कथावस्तु में सीता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राम-रावण युद्ध का कथा की दृष्टि से एक कारण सीता भी है। इसी प्रकार राम के अवतार की सार्थकता अर्थात् पृथ्वी को पाप-भार से मुक्त

---

३५ जायसी ग्रंथावली पृ० २८१।   ३७ वही पृ० ११२ से ११७।

३६ वही पृ० ३००।

करने के सत्कार्य में भी सीता एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। यद्यपि कथावस्तु में सीता के चरित्र की सृष्टि नायक के शौर्य-प्रदर्शन एवम् लोकरंजक स्वरूप की पुष्टि करने के हेतु हुई है, किन्तु सीता की पति-परायणता एवम् राममयता ने पुष्पवाटिका के स्थान पर कथा को स्वाभाविक गति प्रदान की है। वस्तुतः कथा-भाग में सीता का स्थान गौण होते हुए भी नायक के शील एवम् शक्ति के लिए कसौटी के समान है। अतः कथावस्तु में वह हेतु मात्र ही नहीं है।

सीता का चरित्र भारतीय नारी के आदर्श को सामने रख कर सात्त्विकता की भाव-भूमि पर अंकित हुआ है। सीता के व्यक्तित्व के तीन प्रधान रूप हैं—आदर्श पुत्री का आदर्श कुलवधू का और आदर्श पत्नी का।

जनकतनया के रूप में सीता सुन्दरता को भी सुन्दर बनानेवाली एवम् शोभा के घर में दीपशिखा के समान है। सीता की शोभा उचित उपमानों के कारण अवर्णनीय ही नहीं अपनी अलौकिकता के कारण राम के सहज पुनीत मन को भी क्षुब्ध करने की शक्ति रखती है।[38] गौरी-पूजन को जाते हुए, पुष्पवाटिका में राम के रूप को ललचाये लोचनों से देखने के पश्चात् सीता के मन का पिता-प्रण को स्मरण कर क्षुब्ध होना और सखी की मृदु गिरा को सुन कर विलम्ब के कारण माता का भय मानना[39] सीता के आदर्श पुत्री स्वरूप को ही हमारे सामने रखते हैं। धनुष भंग के समय सीता के मन में उठनेवाला उद्गम और मनस्ताप भी पिता की 'दारुन हठ' के सामने मुखरित नहीं होता अपितु, अपनी व्याकुलता को बढ़ते देख कर सीता का सकुचा जाना[40] भारतीय पुत्री के उस आदर्श को ही हमारे सामने प्रगट करता है जिस आदर्श की दृष्टि में माता-पिता की इच्छा ही सर्वोपरि होती है।

सीता का आदर्श कुलवधू के रूप में हमारे सामने तब उपस्थित होता है जब राम-वनवास के समाचार सुनकर व्याकुल-सी सीता कौशल्या के चरणों की वन्दना कर सिर नीचा किए बैठ जाती है और अपने चरण-नख से धरती को कुरेदती हुई, अपने सुन्दर नेत्रों से आंसू बहाने लगती है।[41] सास की मर्यादा संकट-काल में भी सीता को मूक बनाये रखती है। सास एवम् पति द्वारा कानन-कष्ट की चर्चा सुन कर जब उत्तर देना आवश्यक हो जाता है तो सास के चरण-स्पर्श कर हाथ जोड़ते हुए सीता का अपनी अविनय के लिए क्षमा-याचना करना[42] सीता की कुलवधू-मर्यादा को स्पष्ट कर देता है। नीति आपत्ति-काल में मर्यादा-त्याग की अनुमति प्रदान करती है किन्तु

---

३८ मानस, बाल-कांड पृ० २२१, ३७।
३९. वही पृ० २२८ से ३०।
४० वही पृ० २८४, ८५।
४१ मानस, अयोध्याकांड पृ० ४५८,५९।
४२ वही पृ० ४६४।

उसे भी 'अविनय' मानकर की जानेवाली क्षमा-याचना भारतीय कुलवधू के सात्विक स्वरूप की चरम परिणति मानी जा सकती है। इसी प्रकार राजा दशरथ के सम्मुख भी सीता का संकोचवश उत्तर न देना एवम् वन में अपने पिता-समुरतुल्य-हितकारी सुमंत्र के सम्मुख उत्तर देने को अनुचित समझना तथा सम्मुख होने का कारण विपत्ति को बताना[४३] सीता के आदर्श कुलवधू-स्वभाव का ही द्योतक है। सीता के आदर्श कुलवधूस्वरूप की सर्वोच्च झलक उस समय स्पष्ट हो जाती है जब तापस वेश में माता-पिता से मिलने पर रातभर उन्हीं के पास रहना सीता को उचित नहीं जान पड़ता किन्तु संकोचवश मन-ही-मन अनुभव करने के बाद वह यह कह नहीं पाती।[४४] आदर्श पुत्री एवम् आदर्श कुलवधू की यह दुविधा केवल सीता के द्विविध स्वरूप को ही उच्च नहीं बनाती अपितु दोनों कुल पवित्र हो जाते हैं और सीता की कीर्ति रूपी : सुरसरि को भी विजित कर देती है।[४५]

सीता का आदर्श पत्नी का स्वरूप संकट-काल की कसौटी से प्रारम्भ होता और संकट-काल में ही निखार पाता है। सीता का पत्नीत्व विषाद के गंगाजल से होकर हमारे सामने आता है। सीता का पत्नीत्व उसे संकट की बाहु है। यह न तो वनवास से विचलित होती है न विपिन-वास से घबराती है। रावण द्वारा ह किये जाने के बाद भी यह पत्नीत्व लड़खड़ाता नहीं अशोक-वाटिका की यातनायें ए याचनायें इसे डांवाडोल नहीं करतीं और अग्नि-परीक्षा भी इस पत्नीत्व पर आंच न आने देती। सीता का आदर्श पत्नी-स्वरूप स्नेह एवम् रिश्तों को बिना पति के सूर्य भी अधिक तपानेवाला समझता है भोग-रोग के समान भूषण भार की तरह और संसार को यम की यातना के समान मानता है।[४६] उस पत्नीत्व की दृष्टि में वन पंथ वन भूमि पहाड़ सिंह, तालाब अथाह नदियां कोल भील हिंस्र पशी—स प्राणपति के साथ रहते हुए सुखदायी प्रतीत होते हैं।[४७] अशोक-वाटिका की असह्य अवस्था में भी यह पत्नीत्व खद्योत प्रकाश की नलिनी की तरह अवहेलना करते हुए तो राम की करि-कर सम भुजा को ही अपने कंठ के उपयुक्त समझता है या रावण तलवार को ही।[४८] अतः मन वचन और कर्म से पवित्र इस पत्नीत्व के लिए सब अति जलानेवाली अग्नि भी चंदन की तरह शीतल ही सिद्ध होती है।

सीता का यह त्रिविध स्वरूप जातिगत गुणों के साथ व्यक्तिगत विशेषताओं लेकर चलता है। कन्या कुलवधू एवम् पत्नी का आदर्श जातिगत गुणों और दुर्बलताओं

---

४३ मानस, अयोध्याकांड पृ० ४६७। ४६ रामचरित मानस पृ० ४६४।
४४ वही पृ० ६८६। ४७ वही पृ ४२८।
४५ वही पृ० ४८६। ४८ वही पृ० ८६०।

को सहज बनाकर व्यक्तिगत विशेषता में परिणित हो जाता है। सीता की जातिगत लज्जा कहीं नीति का पथ पकड़ती है और कहीं भावना का। जातिगत आकुलता कहीं कन्या कहीं कुलवधू और कहीं पत्नी की मर्यादा के नीचे दब कर व्यक्तिगत विशेषता के रूप में उभर आती है। मानस की चरित्र-भूमि में सीता की दुर्बलता केवल दो स्थलों पर ही नारी-सुलभ उत्तेजना एवम् आशंका के रूप में पूर्णरूपेण उभर पाई है। उत्तेजना का अवसर उस समय उपस्थित होता है जब स्वर्ण मृग के पीछे गये राम के लिए आतुर होकर सीता लक्ष्मण को मर्मस्पर्शी बात[49] कह कर राम की खोज में जाने को लाचार करती है। अशोक वाटिका-काल आशंका से पूर्ण है और वह सीता की नारी-सुलभ आशंकाओं को दुर्बलता के रूप में ही प्रकट करता है।

शारीरिक अथवा जातिगत दुर्बलताओं के साथ सीता में कुछ दुर्बलतायें मानसकार के दृष्टिकोण के कारण भी उपस्थित हुई हैं। सीता के व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से यह चित्रण सम्बन्धी दुर्बलता मानी जा सकती है। मानसकार की राममयता एवम् कथावस्तु ने सीता के दाम्पत्य जीवन एवम् गृहिणी-स्वरूप को उभरने का अवसर प्रदान नहीं किया है। सीता के गृहिणी-स्वरूप की झलक मात्र उतराई के लिए मुंदरी[50] देते समय अवश्य प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार राम द्वारा नर-लीला करने के हेतु सीता को सबकुछ कह चुकने के पश्चात् सीता का अनल में समाकर प्रतिबिम्ब ग्रहण कर लेना[51] सीता के विरह-विलाप-क्रम को दिखावे जैसी स्थिति में डाल देता है। इस स्पष्टीकरण को भूल जाने पर भी सीता के व्यक्तित्व में उस प्रखरता का अनुभव किया जा सकता है जो भारतीय नारी के चरित्र की सर्वोच्च ऊँचाई को सीता में समाहृत करता है। संक्षेप में सीता का व्यक्तित्व मानवीय कम अलौकिक अधिक है। उसके नारीत्व को देवत्व ने एवम् यथार्थ को आदर्श ने पृष्ठ-भूमि में पटक दिया है। इसलिए, वह जीवन से अनुप्राणित कम जीवन के लिए अनुकरणीय अधिक है।

रामचन्द्र चन्द्रिका की सीता—प्रधान नायिका के रूप में सीता का व्यक्तित्व 'रामचन्द्र चन्द्रिका' की चरित्र-भूमि में अस्पष्ट एवम् रेखाकृति-सा जान पड़ता है। चन्द्रिका की आधिकारिक कथावस्तु का अंत होने के बाद भी सीता केशव के प्रबन्ध शैथिल्य के कारण कथा में एक शिथिल-सी कड़ी का काम करती है। चन्द्रिका के ३९ प्रकाशों की कथा-सूची[52] देखने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रिका में सीता का स्थान गौण-सा रह गया है। 'रघुनाथ को अमल कमल की माल'[53] पहिनाने से

---

४९ रामचरित मानस पृ० ७८१। ५२ केशव-ग्रंथावली पृ० ४१७।
५० वही पृ० ८०२। ५३ वही पृ० २५१।
५१ वही पृ० ७७८।

लगाकर 'बड़भागी मिथिलेश-सुता का पुत्रों सहित शत्रुओं के पग लगने'[५४] तक का कथा-विस्तार, सीता के व्यक्तित्व को उभार नहीं पाया है। अतः रामचन्द्र चन्द्रिका की कथावस्तु में सीता का स्थान आधिकारिक होकर भी प्रासंगिक रह गया है। कथावस्तु में उसे वह प्रधानता प्राप्त नहीं हो सकी है जो किसी महाकाव्य की प्रधान नायिका को उपलब्ध होती है। कथा में वह हेतु मात्र बन कर रह गई है।

चन्द्रिका की सीता विश्वामित्र के शब्दों में वह तनुजा है जो मखभूषण के भूषणार्थ भूतल पर अवतरित हुई है[५५] और दशरथ के शब्दों में वह त्रिभुवन की शिरताज है।[५६] उसका पति-प्रेम वन-गमन के समय उसके चरित्र की जो झाँकी प्रस्तुत करता है, वह सीता की दृढ़ता एवम् पति के प्रति अगाध विश्वास का परिचायक है। वह नीच भूप उपहास मात्र को सहन कर सकती है विषपान कर सकती है बड़वा की अनल-ज्वाला में रहना उसे स्वीकार है, पति के प्रताप से तपन-ताप को भी सहन करने को तत्पर है, परन्तु रघुवीर का विरह उसके लिए असहनीय है।[५७] पति से दूर रहते हुए उसे न तो अयोध्या में रहना ही रुचिकर लगता है और न विदेह-धाम जाना ही क्योंकि क्षुधा के समय माता और विपत्ति के समय नारी की आवश्यकता को वह आवश्यक समझती है।[५८] पति का सामीप्य सीता के लिए सुखप्रद है। इसीलिए घाम भी सीता को शीतल लगती है।[५९] इस प्रवृत्ति के अंतर्गत भी सीता का पति-प्रेम एवम् उसकी पति-परायणता परिलक्षित होती है।

रावण द्वारा हरण के पश्चात् सीता के विरह वियोग-वेश का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है वह भी सीता की पति-परायणता एवम् अनन्य प्रेम का परिचायक है। मैली साड़ी में एकाकार हुई एक वेणीधारी सीता पंक से निकली हुई मृणाली की तरह प्रतीत होती है। संपूर्ण अंगों को अंग में छुपाने का प्रयत्न करते हुए नमित दृष्टि से अश्रुपात करती सीता[६०] राम की छाया-माया[६१] होकर भी विरह की साकार प्रतिमा बन पड़ती है। चन्द्रिका की सीता का व्यक्तित्व उसके पातिव्रत्य स्वरूप को ही हमारे सामने रखता है। इस पातिव्रत्य की चरम परिणति उस समय प्रगट होती है जब परित्यक्ता का जीवन व्यतीत कर भी सीता लव-कुश द्वारा नष्ट सेना को जीवित कर देती है। इस जीवन-दान का आधार भी वही 'मनसा वाचा कर्मणा' है जो राममय है और जिसके कारण सेना के जी उठने में घड़ी या विराम का विलम्ब नहीं होता।[६२]

---

५४ केशव ग्रंथावली पृ० ४१४।
५५ वही पृ० २५०।
५६ वही पृ० २५६।
५७. वही पृ० २०६।
५८ वही पृ० २०५।
५९. वही पृ० २७०।
६० वही पृ० २६६।
६१ वही पृ० २८६।
६२ वही पृ० ४११।

केशव का प्रबन्ध-वैशिष्ट्य सीता के व्यक्तित्व को उभरने नहीं देता है और मनोभावों के अंतर्गत भी उसके चरित्र पर कोई विशिष्ट प्रकाश नहीं पड़ता। निष्कासन के समय सीता की मूर्च्छा और पुनर्मिलन के समय सीता की भाव-हीनता भी खलती है। पुत्रों सहित सासुओं के पैर लगती हुई बड़भागी मिथिलेश-सुता[63] केवल शाब्दिक रूप से ही बड़भागी घोषित की जाती है, बड़भागिता के कोई मनोभाव सीता के मुख पर परिलक्षित होते हुए चित्रित नहीं हुए हैं। तुलसी की तरह ही केशव ने भी सीता की देह को पावक में रखवा कर छाया-शरीर द्वारा मृग की अभिलाषा[64] करवाई है मगर तुलसी की तरह केशव अशोक वाटिका में सीता के स्वाभाविक वियोगजन्य उद्गारों को व्यक्त नहीं कर पाये हैं। वास्तव में रामचन्द्रिका की सीता का व्यक्तित्व न तो चारित्रिक दृष्टि से और न मनोभावों की दृष्टि से ही उभर पाया है। मुट्ठीभर छन्दों में सीता का व्यक्तित्व सिमट कर केवल एक धूमिल-सा रेखाचित्र मात्र रह गया है।

प्रिय प्रवास की राधा—'प्रिय-प्रवास' की प्रधान नायिका के रूप में राधा का चित्रण भी प्रधानतः आदर्श प्रधान है। प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में राधा का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि कवि का दृष्टिकोण 'सच्चे स्नेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे नायक तक ही सीमित न रह कर' राधा जैसी सदय हृदया विश्वप्रेमानुरक्ता'[65] नायिका की ओर भी रहा है। अतः प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में राधा अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। सच पूछा जाये तो प्रिय-प्रवास-जनित व्यथा-कथा के भाव-पट राधा के अश्रु-उच्छ्वासों से ही बुने गये हैं।

'रमणि कुल शिरोमणि राधिका' का व्यक्तित्व जहाँ एक ओर उसकी कामांगना मोहिनी कमनीय कान्त छवि को रूपोद्यान की प्रफुल्लप्राय कलिका के रूप में शोभा वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य लीलामयी मूर्ति को प्रकट करता है,[66] वहीं दूसरी ओर कुसुमा प्रफुल्लवदना स्त्री-जाति रत्नोपमा राधा गुणयुता सर्वत्र सम्मानिता तथा रोगी-वृद्धजनोपकारनिरता के रूप में भी दिखाई पड़ती है।[67] प्रिय मुकुन्द-प्रवास प्रसंग से जहाँ वह एक ओर खिन्ना दीना, परम मलीना एवम् उन्मना[68] बन जाती है, वहीं दूसरी ओर उसका पर-पीड़ा-कातर मन पवन को अपना प्रणय-संदेश प्रदान करते समय भी क्लान्त पथिक[69] रोगी[70] क्लान्ता कृषक ललना[71] आदि को प्रेमार्द्र

63 केशव-ग्रंथावली पृ० ४१४।
64 वही पृ० २८६।
65 प्रिय-प्रवास पृ० १७। ५४।
66 वही पृ० ४। ४, ७।
67 वही पृ० ४। ८।
68 वही पृ० ४। ५३।
69 वही पृ० ६। १९।
70 वही पृ० ६। ४५।
71 वही पृ० ६। ४६।

होकर भूल नहीं पाता। प्रियानुराग और लोक-सेवानुराग ही राधा के व्यक्तित्व के वे दो पहलू हैं जो उसके व्यक्तित्व को विशिष्टता प्रदान करते हैं। राधा इस बात को नहीं भूल पाती कि वह नारी है, सरस हृदया है, प्यार-वंचिता है, अतः उसका विकल-विमना और व्यस्त हो जाना स्वाभाविक है।[७२] तारामों से खचित नभ को अथवा मेघों में मुदित बक-पंक्तियाँ निहार कर उसे श्याम का मुक्ता लसित उर याद आ जाता है,[७३] फूली सन्ध्या प्रिय की कान्ति-सी दृष्टिगोचर होती है[७४] आँखें जिधर भी फिर जाती हैं, उनमें श्याम की ही चाहना है।[७५] राधा के मन में यह आकांक्षा है कि प्रियतम आकर उससे मीठी बातचीत करें, प्यारपूर्वक गोद में लें नेत्र तृप्त हो जायें दुःख दूर हो और उसे आनन्द प्राप्त हो किन्तु साथ ही हृदय में यह भावना भी बनी रहती है कि प्रियतम भले जगत-हित करें, चाहे घर न भी आवें।[७६]

प्रियानुराग एवम् लोक-सेवानुराग का यह द्वन्द्व राधा में बराबर बना रहता है। प्रियानुराग प्राकृतिक है क्योंकि उर की लालसायें शमित नहीं होना चाहतीं। अतः राधा उन्हें सात्त्विकी वृत्ति में रंग देती है।[७७] यह कार्य प्रयत्नजन्य है। राधा इसे स्वीकार करती है कि उसमें मोह-माया का आधिक्य है, वह प्रणय रंग में नित्य रंजिता है फिर भी वह स्वयं को पूत कार्यावली में निरत कर देना चाहती है जिससे उसका प्रणय पूर्णतः व्याप्त हो जावे।[७८] राधा स्वयं के दुःख से इतनी व्यथिता एवम् शोकमग्ना नहीं है जितनी व्यथित वह ब्रजवासियों के दुःखों से है।[७९] अतः वह प्रियतम की आज्ञा को न भूलते हुए, विश्व के काम आना चाहती है और अपने कौमार्य-व्रत को भव में पूर्णता प्राप्त होते देखना चाहती है।[८०] इस दृष्टि से उसका प्रियानुराग लोक-सेवानुराग का अनुसरण करता है। लोक-सेवानुराग ही उसकी नवधा शक्ति है और इसीलिए राधा सुजन वीर की छाया सर्मों की नायिका कंगालों की परम निधि पीड़ितों की औषधि दीनों की बहन अनाथाश्रितों की जननि वृज-अवनि की आराध्या एवम् विश्व की प्रेमिका है।[८१]

मनोभावों के अंतर्गत राधा के चिर वियोगी स्वरूप की व्यंजना ही अधिक हुई है। उसकी करुणा ममता सहानुभूति सेवा और परदुःख-कातरता के मूल में भी वही प्रिय-प्रवासजन्य वेदना पछाड़े मारती-सी परिलक्षित होती है। उसका आलाप

---

७२ प्रिय-प्रवास पृ० १६। ५०।
७३ वही पृ० १६। ८०।
७४ वही पृ० १६। ८४।
७५ वही पृ० १६। ७०।
७६ वही पृ० १६। ८८।
७७ वही पृ० १६। १०१।
७८ वही पृ० १६। १३०।
७९ वही पृ० १६। १३२।
८० वही पृ० १६। १३२।
८१ वही पृ० १७। ४६।

प्रलाप की इसी वियोगी स्वरूप की प्रतिच्छाया के रूप में प्रकट होता है। यशोदा को सांत्वना प्रदान करते-करते जब राधा के धैर्य का बांध चसक कर वारि-बूंदों के रूप में गाल पर से टपक पड़ता है तब उसे आनन्द का नीर बता कर भाव सेवा का पुलकजन्य वारि प्रकट करना[८२] वास्तव में वेदना को छिपाने का नारी सुलभ प्रयत्न ही है। धैर्य के चलचले कगार पर यह आनुरीजन्य संयम राधा के मनोभावों की अद्भुत झाँकी ही प्रस्तुत करता है।

प्रिय प्रवास में राधा के संयोगी स्वरूप एवम् तज्जन्य मनोभावों का अभाव है जो उसके चरित्र-चित्रण को एकांगिता के दोष से बचा नहीं पाता। परन्तु प्रिय प्रवास की कथावस्तु में यह संभव भी नहीं था। नारी-चित्रण के सर्वांगीण चित्रण के समाहार की प्रिय-प्रवास की कथावस्तु से अपेक्षा भी नहीं की जा सकती है। प्रेम के विकास में आलम्बनों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के हेतु जिस भावना-क्रम की आवश्यकता थी वह कथावस्तु के कारण सम्भव नहीं हो पाया। साथ ही महाकाव्यकार के आदर्श ने राधा के परम्परागत स्वरूप को नया रंग देने में जिस दृष्टिकोण को अपनाया है उससे भी कुछ असंगतियां बढ़ना स्वाभाविक है। फिर भी अपनी सीमा में अपनी एकांगिता में अपनी असंगतियों में राधा राधा ही रही है और उसका चिरवियोगिनी वेष लोकसेवानुरंजित होकर भी नारी सुलभ है। इसी में उसके चरित्र की महानताएं एवम् दुर्बलतायें छिपी हुई हैं।

साकेत की उर्मिला—उर्मिला 'साकेत' की प्रधान नायिका है। साकेत की कथावस्तु में उसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसे राम-काव्य की परम्परागत उपेक्षा के पश्चात् साकेत में प्रधान नायिका का गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ है। श्री नंददुलारे बाजपेयी के मतानुसार 'ऐसे नगण्य पात्र को जिसका अस्तित्व नाम मात्र को ही रहा हो किसी काव्य की मुख्य भूमिका में लाकर प्रतिष्ठित करना दो दृष्टियों से नया और क्रान्तिकारी प्रयत्न है।[८३] ये दो दृष्टियां सामाजिक एवम् साहित्यिक हैं। एक छोटे-से संकेत को लेकर एक बड़े काव्य की प्रधान नायिका का निर्माण करना उसे नये रसों और नई भावनाओं से सजाना गुप्तजी की सामाजिक क्रान्तिदर्शिता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।[८४] दूसरी क्रान्तिदर्शिता साहित्यिक है क्योंकि उर्मिला और भरत का नायकत्व स्वीकार कर साकेत में पहले पहल महाकाव्य की वीररस-प्रधान पद्धति की उपेक्षा की गई है।[८५] अतः यह कहा जा सकता है कि क्रान्तिदर्शिता के रूप में उर्मिला राम काव्य का एक नया मोड़ है जिसकी प्राण-प्रतिष्ठा साकेत की कथावस्तु में मूलकथा का सूत्रपात करती है।

---

८२ प्रिय प्रवास पृ० १७।१८ से ४०। ८४ वही पृ० ४६।
८३ आधुनिक साहित्य पृ० ४५। ८५ वही पृ० ४६।

अपने 'उर्मिला' नाम के औचित्य को सार्थक करनेवाली उर्मिला, आह्लाद में अवच पट पहने हुए, प्रकट मूर्तिमति उषा के समान स्वयं विधि के हाथ से ढाली गई सजीव स्वर्ण की नई प्रतिमा-सी प्रतीत होती है।[८६] गुराई से मिलता हुआ भास्य हीरकों में बड़े गोल नीलम से बड़े-बड़े नेत्र पद्मराग से अधर, मोतियों से दांत कल पटल से केश, कांत कपोल, उस कम्ब-दिल्ली की कला को धन्य करते हुए, उसके झलकते आते तारुण्य में उसे एक अनिंद्य सुन्दरी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[८७] उर्मिला की हास-परिहास पटुता और उसका कला चातुर्य उसके सुखमय दाम्पत्य जीवन का द्योतक है। उर्मिला की मंजरी-सी उंगलियों में कला वास करती है।[८८] उसे अबढ़-अबला होना स्वीकार होता है।[८९] वह दास होने के बहाने को इसलिए स्वीकार नहीं करती कि उसे दासी की संज्ञा प्राप्त हो। उसकी यही आकांक्षा है कि उसे देवी बनाकर रखा जावे। अतः वह पति को देव बनाकर रखना चाहती है।[९०] इस प्रकार उसका दाम्पत्य जीवन उसे एक मानमयी, प्रेममयी विनोदमयी कलामयी और भक्तिमयी के रूप में प्रस्तुत करता है।

राम-वन-गमन प्रसंग उर्मिला के वियोग का प्रारम्भ है। अपने मन को भू पर स्वर्ग भाव सरसाने एवम् मातृ-स्नेह-सुधा बरसाने के हेतु वह प्रियपथ का विघ्न नहीं बनने देती है और उसे विकार रहित रखते हुए, शोक-भार से चूर्ण न होने देने का प्रयत्न करती है।[९१] फिर भी उसकी बाह्यिक दुर्बलता उसका साथ नहीं छोड़ती और सीता के कंठावरोध के साथ ही वह निरी मुग्ध उर्मिला 'हाय' कह कर धड़ाम से गिर पड़ती है।[९२] मववय में भी विक्षेप उपस्थिति हो जाता है और यौवन में ही मतिभ्रम।[९३] उसकी पीली पड़ी मुख-कान्ति एवम् गीली-गीली अलस आंखें[९४] वियोग-जनित वेदना को व्यक्त करती हैं। उसका सब चला गया है, पर आशा नहीं गई है।[९५] उसे इस बात का खेद है कि वह नाथ का साथ भी न दे सकी।[९६] ऐसी स्थिति में रघुकुल की इस असहाय वधू[९७] के लिए मंजु, अवनि अंबर में स्वच्छ शरत की पुनीत क्रीड़ा अवधि-चित्र-पीड़ा-सी हो जाती है।[९८] बिना प्रयोक्ता के भोग रोग हो उठते हैं।[९९]

---

८६ साकेत पृ० २६।
८७ वही पृ० २७।
८८ वही पृ० ३७।
८९ वही पृ० ११।
९० वही पृ० ३०।
९१ वही पृ० १०९।
९२ वही पृ० ११९।
९३ वही पृ० १५९।
९४ वही पृ० १६०।
९५ वही पृ० १६१।
९६ वही पृ० १६२।
९७ वही पृ० १६७।
९८ वही पृ० २६६।
९९ वही पृ० २७०।

सखी सुलक्षणा के समक्ष प्रगट होते उसके विरहोन्माद मधु बन कर नवम् सर्ग के पद्यों में छिटक गये हैं।

उर्मिला के हृदय में लगी विरह की आग ताप-पुंज से धधक उठती है उसके रोम रोम से स्वेद टपक उठता है पर इस कटुता में भी मधुर स्मृति के मिठास पर वह बलिहारी जाती है।[१००] पीड़ा में उसकी सहानुभूति को उभार दिया है। फूलों में पली सुरभि को अपने अंग सहेज कर वह लौट जाने की सलाह देती है क्योंकि उर्मिला कांटों की सेज पर निवास करती है।[१०१] वह प्रोषित पतिकाओं को इसीलिए निमंत्रित करना चाहती है कि सम दुखिनी मिले तो दुख बटे।[१०२] पतंग की काली भाग्य-लिपि के प्रति जब उसके मन की सहानुभूति जागृत होती है तो संसार की काम नहीं परिणाम निकालनेवाली वणिक-वृत्ति उसे खलने लगती है।[१०३] उर्मिला के लिए विधि के प्रमाद से विनोद भी विषाद है।[१०४] उसे यहाँ विरह ने मार दिया है सुध-बुध हर ली है, वहीं कालज्ञान का विचार भी दिया है। विरह के संग अभिसार भी है।[१०५] अतः वह सती मानस-मंदिर में पति की प्रतिमा आप आप आरती बनी उस विरह में जलते है[१०६] उर पर अवधि-शिला का गुरुभार धर कर उसे हृदयबल-धार से तिल-तिल काट रही थी।[१०७] उसकी आँखों में प्रिय की मूर्ति बसी हुई थी मोम भूले से थे और उसका विषम वियोग योग से भी अधिक था।[१०८]

संयोगिनी एवम् वियोगिनी के अतिरिक्त उर्मिला के व्यक्तित्व का सब से महत् स्वरूप उसके नारीत्व का प्रखरतम रूप उसके क्षत्राणी वेश में दृष्टिगोचर होता है। लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार ज्ञात कर जब उर्मिला सेना के समक्ष शत्रुघ्न के निकट आकर खड़ी होती है तो भवानी की तरह प्रतीत होता है।[१०९] उसके जटा ताम से छूटे बालों की घटा में आनन पर सी अवम फूट पड़े थे और माथे का सिंदूर अंगार सदृश सजग हो उठा था।[११०] अधम अभागों को विषम कर्म-फल चखाने के लिए उसका कीर्ति के समान आगे चलने की घोषणा करना[१११] निःसंदेह उसके क्षत्राणी सुलभ ओज को प्रकट करता है। वियोगिनी उर्मिला का यह ओजस्वी स्वरूप अनुपम है।

---

१०० साकेत पृ० २८९।
१०१ वही पृ० २८२।
१०२ वही पृ० २०४।
१०३ वही पृ० २८१।
१०४ वही पृ० २९६।
१०५ वही पृ० २०९।
१०६ वही पृ० २९७।
१०७ वही पृ० ३४०।
१०८ वही पृ० २९८।
१०९ वही पृ० ४७२।
११० वही पृ० ४७२।
१११ वही पृ० ४७४।

दाम्पत्य भोग विरह-वियोग और चौदह वर्ष की अवधि के पश्चात् प्राप्त होने वाला संयोग उर्मिला के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। उसके अनुराग और अनुताप में जहाँ उसकी चारित्रिक विषमताएँ एवम् दुर्बलताएँ मनोभावों के उतार चढ़ाव के साथ अभिव्यक्त हुई हैं वहीं उसकी व्यक्तिगत विशेषताएँ उसके व्यक्तित्व तथा स्वरूप को निखार देती हैं। फिर भी साकेत के विरह-विलाप में पल-पल में परिवर्तित होने वाले छंदों ने उर्मिला के संवेगात्मक स्वरूप की मार्मिकता में व्यवधान उपस्थित किया है। राम द्वारा गाई गई 'वधु उर्मिला की गुण-गीता' यद्यपि उसे इस भू पर सहधर्म-चारिणी के ऊपर धर्म-स्थापन करनेवाली भाग्यशालिनी घोषित करती है[११२] किन्तु उसके वियोग-काल में परिवार के किसी भी प्राणी का सान्त्वना प्रदान करने न आना उसके कुलवधू स्वरूप को व्यक्त करने म असमर्थ ही साबित हुआ है। मरणासन्न दशरथ के शब्दों में वह 'रघुकुल की असहाय बहू' ही अधिक जान पड़ती है। इसे चित्रण-दोष अथवा कवि की असावधानी ही माना जा सकता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से उर्मिला का मनोविश्लेषण भी संवेगात्मक तीव्रता तथा मूल प्रवृत्तियों से कई स्थानों पर दूर जा पड़ा है। इतना सब होते हुए भी उर्मिला का संयोग-समाप एवम् वियोग-विलाप नारी सुलभ ही जान पड़ता है। आदर्शवादिता का अवगुंठन उसे अवास्तविक नारी नहीं बना जानता। काव्य की यह चिर उपेक्षिता साकेत ही नहीं हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि में प्रथम बार जिस वेष में प्रविष्ट होती है वह वेष अनुविभूषित होकर भी कोमलमय आदर्श प्रधान होकर भी स्वाभाविकता के निकट एवम् दैवी गुणों से मंडित होकर भी नारी-सुलभ है।

कामायनी की श्रद्धा :—श्रद्धा कामायनी की प्रमुख नायिका है। उसने कामायनी की कथा को गतिशीलता प्रदान की है और नायक की सहचरी के रूप में उपस्थित होकर भी उसने नायक के समस्त उदात्त गुणों को आत्मसात्-सा कर लिया है। उसका सात्त्विक स्वरूप कथा पर छाया रहता है। वह पौरुष से ओत-प्रोत चिन्ताकातर नायक को निवृत्ति के मार्ग से खींचकर, मंगलमय वृद्धि के लिए अग्रसर करती है। अत कथा में उसका स्थान एक शक्ति-स्रोत एवम् प्रेरणा-प्रवाह की तरह है।

श्रद्धा का व्यक्तित्व अपनी उपमा आप है। वह उदार हृदय की बाह्य अनुकृति है। उसकी उन्मुक्त लम्बी काया कांधार देश के नील रोमवाले मेषों के चर्म के मध्य भी यौवन की नित्य छवि से दीप्त होकर, विश्व की करुण कामना-मूर्ति-सी प्रतीत होती है।[११३] उसके मन में नव उत्साह भरा था जो ललित कला का ज्ञान सीखने के लिये उसे गंधर्वों के देश की ओर खींच कर लाया था। मुक्त व्योम-तल पर नित्य

---

११२ साकेत पृ० ४१४। ११३ कामायनी पृ० ४६, ४७।

घूमने का उसका अभ्यास बढ़ चला था और उसके मन का कुतूहल व्यस्त होकर हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य खोज रहा था।[११४] जल-प्लावन के पश्चात उसका निरुपाय अकेला जीवन विफल होकर भटक रहा था। बलि का अन्त देखकर उसके मन में किसी के जीवित होने का अनुमान जागृत हुआ।[११५] अज्ञात जटिलताओं का अनुमान कर भविष्य के प्रति अनजान बने मनु के कर्मविमुख अपने ही बोझ से दबे जा रहे जीवन में उसने अवलम्ब की तरह प्रवेश किया[११६] और अपनी दया माया ममता मधुरिमा अगाध विश्वास तथा स्वच्छ हृदय को समर्पित कर दिया।[११७] श्रद्धा का यह समर्पण भाव उसके नारी-हृदय का वह उदात्त गुण है, जो तप को जीवन का सत्य मानकर दीन अवसाद से दबे जा रहे पुरुष के प्रति स्नेह से द्रवित हो उठता है। वह उस अमृत सन्तान को अपने साहचर्य से भय-मुक्त कर मंगलमय वृद्धि की ओर अग्रसर करते हुए, उसके जीवन को पूर्ण आकर्षण का केन्द्र बना देना चाहती है ताकि सकल समृद्धि खिंची चली आवे।[११८] इस प्रकार श्रद्धा के उत्सर्ग में विधाता की कल्याणी सृष्टि को भूतल पर पूर्ण रूपेण सफल बनाने की महती भावना छिपी हुई है।[११९]

वह रति और काम की सुन्दर, भोली-भाली संतान है। वह ममता है जो संसृति में प्रेम-कथा का संदेश सुनाने के लिए आती है। वही वह चंचलता की गाँठ है भूल-सुधारों की सुलझन है जीवन के उष्ण विचारों की शान्तिमयी शीतलता है।[१२] उसके समर्पण में ग्रहण का एक सुनिहित भाव रहता है।[१२१] इसी बीच जबकि विजन पथ पर मधुर जीवन का खेल नियति द्वारा दो अपरिचितों में खेल करवाना चाहता है,[१२२] नारी का जातिगत संस्कार श्रद्धा में जागृत होकर गृह-उपकरण जुटाने में लग जाता है और सस्य पशु या धान्य का संचार होने लगता है।[१२३] यह गृह-व्यवस्था जहाँ श्रद्धा के जातिगत गुणों को हमारे सामने उपस्थित करती है वहीं आदि नारी का वह पुरुषार्थी स्वरूप भी हमारे सामने आता है जो विशृंखल जीवन को एक सामाजिक शृंखला में सुव्यवस्थित रखने का प्रयत्न करता है।

मनु की जागृत वासना श्रद्धा के नारीत्व की मनोभावनात्मक कसौटी है। विश्लेषणों की मादकता से मनु द्वारा जब श्रद्धा के नारीत्व का विचलित करने का यत्न किया जाता है तो पुरुष के इस जाल को 'अधीर मन की प्रवृत्ति और क्षोभयुक्त

११४ कामायनी पृ० ४१।
११५ वही पृ० ४२।
११६ वही पृ० ४२,४६।
११७ वही पृ० ४७।
११८. वही पृ० ४८।
११९. वही पृ० ४८।
१२ वही पृ० ७६ ७७।
१२१ वही पृ० ८१।
१२२ वही पृ० ८१।
१२३ वही पृ० ८२।

उन्माद [१२४] कह कर, एक हल्की-सी झिड़की जैसा नारी सुलभ टालमटूल का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु श्रद्धा को इस बात का भान है कि यह दुर्बलता में नारी है क्योंकि अवयव की सुन्दर कोमलता के कारण उसे हारना पड़ता है।[१२५] अतः मनु द्वारा जब उन्मत्त होकर उसका हाथ पकड़ लिया जाता है तो नारीत्व का मूल मधु अनुभाव, क्रीड़ा चिन्ता एवं उल्लास सहित हृदय का आनन्द-कूजन बन कर रास करने लगता है।[१२६] उसकी पलकों का गिरना नासिका की नोंक का झुकना भ्रू-लता का बे-रोक कानों की राह पकड़ना ललित कर्ण कपोल पर लज्जा का स्पर्श एवम् कदम्ब-सा खिला पुलक तथा मदुयद्‌ बोल उस परिस्थिति का निर्माण कर देता है जो नारी-हृदय-का चिर बंध बन जाता है।[१२७] श्रद्धा का परिणय परम्परागत रूढ़ियों से अनुप्राणित न होकर मनोविज्ञान की दृढ़ भूमि पर आसीन है। यह आदि नारी के सर्वथा अनुरूप है।

श्रद्धा के मातृत्व में उसके नारीत्व का स्वरूप और भी निखार पाने लगता है। उसका मुख केतकी गर्भ-सा पीला पड़ जाता है, आँखों में आलस भरा स्नेह झलकता है, मातृत्व के बोझ से झुके हुए पीन पयोधर लगने लगे हैं और इस अवस्था में ही श्रद्धा कोमल कामे ऊनों की नव पट्टिका बनाती है।[१२८] भावी जननी का चरम एवं श्रम-बिन्दु बन कर झलकता-सा जान पड़ता है।[१२९] उसने कुटीर तैयार किया है और बेतसी लता का सुरुचिपूर्ण झूला भी डाला है।[१३] गृह-लक्ष्मी के इस गृह-विधान के साथ कितनी ही मीठी अभिलाषायें भी हैं जो चुपके से घूम रही हैं। भावी संतान को झूले पर झुलाने की दुलरा कर उसका वदन चूमने की अपनी छाती से लिपटा कर उसे माटी में घुमने की तथा उसकी मीठी रसना से मधुर बोल सुनने की लालसा [१३१] श्रद्धा के नारी सुलभ मातृ स्वरूप को व्यक्त करती है। किन्तु मातृ-हृदय की मीठी अभिलाषायें साकार भी नहीं हो पातीं कि श्रद्धा को पति-विद्रोह का प्रहार सहन करना पड़ता है। इस परित्यक्तावस्था में ही उसे मातृत्व का उत्तर दायित्व वहन करना पड़ता है। एक ओर वियोगजन्य परिताप है और दूसरी ओर संतान के लालन-पालन का उत्तरदायित्व। एक ओर वियोग है, दूसरी ओर वात्सल्य। और इसी वियोग-वात्सल्य के मध्य श्रद्धा का सर्वमंगला स्वरूप शनैं शनैं विकसित होने लगता है।

---

१२४ कामायनी पृ० ६१।
१२५ वही पृ० १०४।
१२६ वही पृ० ६४।
१२७ वही पृ० ६४।
१२८ वही पृ० १४२।
१२९ वही पृ० १४१।
१३० वही पृ० १४६।
१३१ वही पृ० १५२।

आंसू से भीगे आंचल पर मन का सबकुछ रखते हुए श्रद्धा ने अपनी स्मित रेखा से जीवन का सन्धि-पत्र लिखा है। एक ओर जहाँ मनु की याद उसे सालती रहती है वहीं कुटिया की स्नेह-किरण-सी दीप-शिखा बुझने न पाये इस भय से श्रद्धा हृदय कड़ा कर धीरे-धीरे सब सहने के लिये स्वयं को तैयार करती है।[१३१] विरह जन्य पीड़ा को मातृत्व का दुलार दबाने का प्रयत्न करता है और यही वियोग-वत्सल स्वप्न प्रिय के अनिष्ट की आशंका का स्वप्न श्रद्धा को विचलित कर उठता है। घायल मनु की खोज में श्रद्धा निकल पड़ती है। श्रद्धा मनु को खोज निकालती है और मनु को पुनः श्रद्धा का अवलम्ब प्राप्त होता है। मनु के संवेदन में हृदय को श्रद्धा अनुराग की अजस्र वर्षा स्नेह की मधु रजनी और जीवन की चिर अतृप्ति में संतोष-सी लगने लगती है।[१३२] परन्तु फिर भी मनु श्रद्धा को सोती छोड़कर भाग खड़े होते हैं और श्रद्धा अपने पुत्र को इड़ा को सौंप कर पुनः मनु को खोज निकालती है। अपना सब कुछ देकर भी वह स्वयं को रंक नहीं मानती।[१३४] उसकी निर्विकार मातृ-मूर्ति उदार है उसका स्वरूप सर्व-मंगला का स्वरूप है और वह क्षमा-निलय में वास करती है।[१३५]

श्रद्धा नारी का मंगल रूप है। वह क्षमा की देवी और उदारता की सीमा है। वह हिंसा और स्वार्थ की विरोधिनी है। वह निवृत्ति में प्रवृत्ति की राह बताती है और विरक्ति में निवृत्ति के आनन्दमय पथ पर, दृढ़ आस्था के साथ मनु का सबल बन कर बढ़ती है। वह सहज समर्पणमयी है। मानवता की कल्याण-कामना से प्रेरित होकर मनु जन के संकल्प से वह अपने जीवन के सोने से सपनों को दान करने में नहीं हिचकती और आंसू से भीगे आंचल पर मन का सबकुछ रख कर केवल नारी के श्रद्धा-मय स्वरूप को जीवन के समतल पर पीयूष-स्रोत-सा प्रवाहित करती है। वह पूर्ण आत्म विश्वासमयी नारी है। जो पुरुषत्व मोह में नारी की सत्ता को भूल जाने वाले पथ भ्रांत पुरुष को समरसता का पाठ पढ़ाती हुई अपने सर्वमंगला स्वरूप को सार्थक करती है। संक्षेप में श्रद्धा वह विश्वासमयी निश्छल स्मिति है जो निस्सबल मन्मात पथिक को अवलम्ब प्रदान कर ठिठोली करने का अवसर नहीं देती।[१३६]

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि में श्रद्धा का व्यक्तित्व और मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त उसका स्वरूप अपने आप में अद्वितीय है। उसका उदात्त स्वरूप उसकी अपनी विशेषता है और उसकी नारी सुलभ कमजोरियां ही उसकी दुर्बलतायें मानी

१३२ कामायनी पृ० १७६, ७७। १३३ वही पृ० २२९। १३४ वही पृ० २४६। १३५ वही पृ० २४६। १३६ वही पृ० २२८,९।

जा सकती है। डाक्टर प्रेमशंकर की विचारधारा के साथ अपनी सहमति व्यक्त करते हुए, उन्हीं के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि 'अपने उदात्त रूप के आधार पर श्रद्धा कामायनी की प्रमुख नायिका के रूप में आयी है' और 'कथानक-नायक सभी पर उसके महान् व्यक्तित्व की छाया है। हिन्दी की साहित्यिक परम्परा में कामायनी का यह उदात्त महान् चित्रांकन एक नवीन प्रयोग है।[१३७]

नूरजहाँ की नूरजहाँ —'नूरजहाँ' की प्रधान नायिका नूरजहाँ है। महाकाव्य का नामकरण भी नायिका के नाम से ही हुआ है। अतः यह स्पष्ट है कि 'नूरजहाँ' की कथा-वस्तु में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य की आधिकारिक कथावस्तु उसी के चरित्र से अनुप्राणित है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व रखते हुए भी इस महाकाव्य की कथावस्तु में उसकी जीवन रेखायें कवि-कल्पना द्वारा रचित ही नहीं हुई हैं अपितु उसके अंतर्द्वन्द्व का प्राणवान् विकास भी नूरजहाँ की कथावस्तु के अंतर्गत उभर आया है। वस्तुतः दूर देश की एक साधनहीन बालिका किस प्रकार भारत के एक मुगल-शासक की वासिका हुई, इसका स्थूल वर्णन यद्यपि इतिहास में रक्षित है, पर उसके प्राणों की वास्तविक हलचल का वर्णन 'नूरजहाँ' काव्य में ही प्राप्त होता है।[१३८] अतः नूरजहाँ की कथावस्तु नूरजहाँ के चरित्र से ही अनुप्राणित एवम् गतिमान् है।

नूरजहाँ का व्यक्तित्व कालचक्र के थपेड़ों पर अंकित नियति का लेखा-जोखा है। जन्म के ठीक बाद ही प्रकृति के आश्रय में कांछिता छूट जाने के भय से माता-पिता द्वारा छोड़ी हुई इस अनाथ-कन्या को एक धर्मपरायण बूढ़े सरदार का आश्रय प्राप्त होता है और कमार की सराय में भाग्यवश पुनः उसे माता का अंक अनाथ से सनाथ बना देता है। धीरे-धीरे यह मधुर नवसी बाला मेहर अंकुर-सी बढ़ती जाती है। शैशव-शिशिर की समाप्ति के साथ ही यौवन का वसन्त फूलने लगता है। मृदु वासन्ती समीर आ-आ कर उसकी देह-लतिका का यौवन बढ़ने लगता है और इस प्रकार सुन्दरी मेहरुन्निसा पर दिन दिन पानी बढ़ता जाता है।[१३९] अपनी अज्ञात यौवनावस्था में ही एक दिन बाग में उसकी सलीम से भेंट होती है और सलीम द्वारा कांटा निकाल कर दामन पकड़कर बांधते ही मेहर के दिल में एक दूसरा कांटा लग जाता है।[१४०] दूसरे कबूतर को भी 'फड़' से उड़ा देने वाली मेहर का भोलापन सलीम की चुम्बन-वर्षा में परिणित हो जाता है।[१४१]

---

१३७ प्रसाद का काव्य पृ० ४०७ ८। १४० वही पृ० ५०।

१३८ खड़ी बोली के गौ० मं० पृ० १४०। १४१ वही पृ० ५०।

१३९ नूरजहाँ पृ० ४४।

मेहर और सलीम के इस परिचय के मध्य अमीता व्यवधान बन कर उपस्थित होती है। अकबर द्वारा अलीकुली खाँ के साथ उसका विवाह कर दिया जाता है और इस प्रकार नियति जाल में नूरजहाँ का जीवन चक्र पुन उलझ जाता है। इसी बीच उसके नारीत्व के परीक्षण का क्षण उपस्थित होता है। उसके पति की हत्या के निमित्त जब सलीम नकाब डालकर प्रविष्ट होता है तो वह तलवार खींच कर उसका मुकाबला करती है। 'अधरों पर चुम्बनों के ताले लगने'[१४२] की दुहाई भी उसे अपने नारी-धर्म से विचलित नहीं कर पाती। अपने पावन घर की दीवारों के भीतर का अमर दाम्पत्य धर्म[१४३] उसे साहस और नीति की मूर्तिमान प्रतिमा बना डालता है और उसकी वाणी का ओज एक पतिव्रता नारी के तेजस्वी स्वरूप को हमारे सामने ला खड़ा करता है। अपनी आंख का पानी सुरक्षित रखने वाली घर की यह रानी सलीम के लिये भावुक हृदया प्रणयिनी नहीं पर-नारी है जो अपने कर्तव्य-धर्म पर तन मन धन न्यौछावर कर चुकी है।[१४४] किन्तु कर्तव्य-धर्म के नाम पर सलीम को दुत्कार कर और कोमल नातों को क्षणभर में रौंद कर भी मेहर का कण कण का प्यार विलुप्त नहीं हो पाता। सलीम के जाते ही मेहर के हाथ से तलवार का छूट जाना और उसका अचेत होकर धरा पर गिर पड़ना[१४५] इस बात का प्रमाण है।

आगरा से जो उसके स्वप्नों का संसार है विदा होते समय नूरजहाँ के हृदय के सुकुमार भाव फूट से पड़ते हैं। वह उन कुंजों के एकांतवास के अभिनय प्रेमालाप और कुंजन में कलियां चूम-चूम कर प्यार करनेवाले से विदा माँगती है।[१४६] मर्यादा अथवा कर्तव्य-धर्म के नाम पर वह भ्रान्ति से शान्ति से अपनी भोली भूल से और साथ ही अपनी मुर्झाई आशाओं की समाधि के फूल से विदा लेती है।[१४७] किन्तु उसका नारी-हृदय जिस भोली भूल से विदा चाहता है, वह जैसे विदा होना नहीं चाहती। जिस व्यक्ति के साथ वह बंध चुकी है वह भावनाहीन है। मोहनी मेहर का जादू उस पर चल नहीं पाता। वह हरमसरा के बाहर पग भी नहीं रख सकती और उसके कानों पर, मुंह पर, मन पर ताला है।[१४८] फिर भी सहनशीलता के बाद भी उल्टा ही असर होता है और पति द्वारा अपनी बच्ची लैला के जमीन पर पटक दिये जाने के पश्चात् नूरजहाँ का स्वाभिमान जागृत हो उठता है। पति का दुर्व्यवहार और उसका नित्य होता अपमान उसके लिये असहनीय हो उठता है। ऐसी जिल्लत सहने से

१४२ वही पृ० ६८।
१४३ वही पृ० ६६।
१४४ वही पृ० ६६।
१४५ वही पृ० ७०।
१४६ वही पृ० ७२।
१४७ वही पृ० ७३।
१४८ वही पृ० ८०।

वह प्राण दे देना उचित समझती है।[१४९] नूरजहाँ के नारी-मन की दृढ़ता उभर आती है। वह निश्चयात्मक रूप से यह निर्णय कर लेती है कि मानवताविहीन पति का सम्मान न तो उससे सहा जा सकता है और न अविवेकी मद के डर से उसका मस्तक झुक सकता है। वह प्रेम के इशारे पर मान सहित अपने प्राणों का अर्पण कर सकती है किन्तु मर्यादा खोकर किसी के तलुवे चाटना उसके लिये सम्भव नहीं है।[१५०] स्नेह हीन सिकता से तेल निकालने की आशा त्याग कर वह लोहे का जवाब लोहे से देने की दृष्टि से विवाह-विच्छेद का निश्चय प्रकट करती है।[१५१] पर सर्व सुन्दरी की बातों से प्रभावित होकर वह पुनः अपने हृदय से लड़कर, उसे लगाम लगाने का निर्णय करती है।[१५२] वह उद्वेगमा एवम् शान्ति नारी-सुलभ ही है जो नूरजहाँ में जातिगत स्वभाव के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

नूरजहाँ के हृदय पर लगी-लगाम दुर्बेद के बवण्डर में अधिक काल तक टिक न सकी। शेरअफ़गान की हत्या के पश्चात् यद्यपि चार वर्ष तक उसने अपने भावुक हृदय को संयम से सम्भाले रखा परन्तु सलीम द्वारा विकट स्थिति में डाल देने पर वह संयम लड़खड़ाने लगता है। सलीम की सेवा भावना और उसके प्रेमोद्गारों के सामने नूरजहाँ की तटस्थता टिक नहीं पाती। एक दिन आँखों में प्रेम-मधु छलक उठते हैं रमणी का सिर झुक जाता है और इस झुके सिर पर जहाँगीर पदगाह होकर ताज रख ही देता है।[१५३] वर्षों का दबा प्यार पुनः एकाएक हो जाता है।

नूरजहाँ की चरित्र भूमि में जिस काव्य-कौशल के साथ 'नूरजहाँ के सिक्कों' में उसका सिक्का जमवाया है, उसके अंतर्गत उसके व्यक्तित्व एवम् मनोभावों की जो व्यंजना हुई है, वह अद्भुत है। भावों के घात-प्रतिघातों के अंतर्गत नूरजहाँ के व्यक्तित्व के सबल एवम् दुर्बल पक्ष अपरिचित की तरह स्पष्ट हो जाते हैं। भाषा की ध्वन्यात्मकता एवम् मुहावरों के सफल प्रयोग में कहीं-कहीं मनोभावों को इतना सजीव कर दिया है कि उनकी यथार्थता एवम् प्रभावोत्पादकता में कोई शंका ही उपस्थित नहीं होती। वस्तुतः 'नूरजहाँ' में नूरजहाँ का इतिहास-उपेक्षित नारी-हृदय अपनी गौरव-गाथा के साथ प्रतिष्ठित है।

सिद्धार्थ की यशोधरा—यशोधरा 'सिद्धार्थ' की प्रमुख नायिका है। सिद्धार्थ की कथावस्तु में उसका स्थान जैसे परम्परित धारणाओं की पुष्टि तथा कथानक रूढ़ियों के निर्वाहार्थ ही प्रस्तुत किया गया है। एक ओर जहाँ वह सिद्धार्थ के सरल मानस पर

---

१४९ नूरजहाँ पृ० ८७।
१५० वही पृ० ८८।
१५१ वही पृ० ८९।
१५२ वही पृ० ९१।
१५३ वही पृ० १४५।

सम्मुख बाल सम नारियों का विभ्रम दिखाने के लिए,[124] सिद्धार्थ की कथा-भूमि में प्रस्तुत की जाती है वहीं दूसरी ओर महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् कथा में उसका स्थान केवल कवि-परिपाटी एवम् कथानक रूढ़ियों की पूर्ति ही करता जान पड़ता है। फिर भी यशोधरा सिद्धार्थ की कथावस्तु में आधिकारिक स्थान रखती है और यथा स्थान उसने महाकाव्य की कथावस्तु को गतिमान् एवम् सरस बनाया है।

यशोधरा भी अन्य प्रधान नायिकाओं की तरह अलौकिक सुन्दरी है। उसके आनन की अति अलौकिक सुन्दरतामयी प्रभा को देखकर शाक्य कुमार का सरल मानस भी तरंगित हो उठता है।[125] यशोधरा को हार के पुरस्कार के साथ ही राजकुमार के हृदय पाने का सौभाग्य भी प्राप्त होता है और शशी-मुख-शारदा-सिन्धुजा समा[126] यशोधरा को प्राप्त करने के लिए, कुमार को भी शौर्य-प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यद्यपि यशोधरा को इस बात का खेद है कि उसके कारण प्रभु को 'असि-शरा-हय चालन आदि का क्लेश उठाना पड़ा परन्तु साथ ही उसे इसका सुख भी है कि वह इस महा महिमामय मान का कारण हुई।[127] इस दाव की क्षमा मार्जना के समय उसका विनयी एवम् परवश नारी-हृदय एक साथ परिलक्षित हो उठता है। यशोधरा का दाम्पत्य जीवन केलि-क्रीड़ा के मध्य भी मुग्धा-सा ही दृष्टिगोचर होता है। वह सहचरी सम सेवा भावी विनम्र पत्नी अधिक जान पड़ती है। कहीं तो वह प्रिय के विषाद को देखकर अपनी त्रुटि के लिए क्षमा-याचना करती है[128] और कहीं शोक-प्रयुक्ता हो कुमार के निकट आकर दया की याचना करती दीखती है।[129] वह सिद्धार्थ के लिए जगत में सबसे सब भांति अधिक प्रिय होकर भी[130] प्रेम-गर्विता नहीं विनीता ही दिखाई पड़ती है।

पति-प्रयाण के पश्चात् यशोधरा का वियोगी स्वरूप संयोगी स्वरूप की अपेक्षा उसके व्यक्तित्व को कहीं अधिक व्यक्त करता है। पति के इस प्रकार सोती अवस्था में त्याग जाने के पश्चात् उसे अपना ही कोई दोष नजर आता है,[131] उसे शृंगार से अरुचि हो जाती है और यशोधरा शरद्-आतप-तापित केतकी-सी खिन्न हो उठती है।[132] वह सरोज-वसी भ्रमर तथा रोहिणी नदी के समक्ष अपने विरहोद्गारों को व्यक्त करने लगती है। उसके वियोगी जीवन से नारी की लाचारी और हृदय का हाहा

---

१२४ सिद्धार्थ पृ० ६७।
१२५ वही पृ० ७१।
१२६ वही पृ० ८१।
१२७ वही पृ० ९१।
१२८ वही पृ० ११०।
१२९ वही पृ० १५४।
१३० वही पृ० १०६।
१३१ वही पृ० १६५।
१३२ वही पृ० २४२।

कार ही प्रकट होता है। साकेत के साथ व्यक्त किए क्षण उभर-उभर कर सामने आते हैं। हंस को संदेश प्रदान करते समय वह उसे अपनी प्रेयसी का परित्याग न करने की सलाह इसलिए देती है कि उसका जोड़ा निरख कर सिद्धार्थ को उसका ध्यान आ जावे[१६३] यशोधरा के वियोगजन्य उद्गारों में प्रिय-मिलन की लालसा का प्राधान्य एवम् विरह-जन्य करुणा की छाया है।

प्रिय-दर्शन के लिए व्याकुल रहनेवाली यशोधरा को जब प्रिय-दर्शन की प्राप्ति होती है तो वह 'पति आर्य' पुकारती हुई प्रभु के पदों में खिसकती हुई गिर पड़ती है।[१६४] सिद्धार्थ की दृष्टि विलोक कर ही यशोधरा के दृग बिम्ब ज्योति से विकल होकर अश्रु-विहीन हो जाते हैं।[१६५]

सिद्धार्थ की चरित्र भूमि में यशोधरा का व्यक्तित्व उभरने नहीं पाया है। सौन्दर्य एवम् विषाद के गहरे रंगों के अतिरिक्त उसकी जीवन-रेखाएँ अत्यन्त धूमिल हैं। सिद्धार्थ में यशोधरा के नारी-हृदय की सहज अभिव्यक्ति का अभाव है। महाकाव्य की चरित्र भूमि में उसका व्यक्तित्व एवम् मनोभावों के अन्तर्गत उसका स्वरूप खो-सा गया है। महाकाव्यकार ने उसे धम्म-चक्र की एक मूक गठरी मात्र बना कर छोड़ दिया है। वस्तुतः न तो सिद्धार्थ ही और न सिद्धार्थकार ही उसके प्रति न्याय कर पाए हैं। महाकाव्य की चरित्र भूमि में प्रविष्ट होते समय विपुल विभ्रमयुक्त खड़ी हुई[१६६] यह नारी जीवन और चित्रण दोनों ही क्षेत्रों में विपुल विभ्रमयुक्त बनकर खड़ी की खड़ी रह गई है।

साकेत सन्त की माँडवी—माँडवी साकेत संत' की प्रधान नायिका है। यद्यपि साकेत संत' की कथावस्तु प्रधानतः भरत की महानता एवम् उदात्त गुणों से ही अनुप्राणित है किन्तु माँडवी का भी उसमें आंशिक हाथ है। जिस त्याग-वृत्ति ने भरत को साकेत का संत बनाया है उस त्याग-वृत्ति में माँडवी का भी पूर्ण सहयोग है। और इस प्रकार साकेत-संत की सच्ची सहधर्मिणी के अनुरूप ही कथा में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है।

माँडवी का व्यक्तित्व अपनी गरिमा के अनुरूप है। वह रूपवती है। उसके दृगों की कोर में घनघोर रस-वर्षण की और उसके अधरों की मुस्कान में हिम-पाषाण को पिघलाने की शक्ति है।[१६७] उसका मधुरालाप कोकिलाओं को भी कपानेवाला उसका गति-विलास लहरियों के लास्य उल्लास को भी भुलानेवाला है।[१६८] वह उषा

---

१६३ सिद्धार्थ पृ० २६२।
१६४ वही पृ० २८२।
१६५ वही पृ० २८५।
१६६ वही पृ० ७१।
१६७ साकेत-संत १।१२।
१६८ वही पृ० १।१४।

है तारक पीत है नन्दन वन की पुनीत सुरभि है।[169] उसका दाम्पत्य जीवन उसकी हास-परिहासमयता का द्योतक है। कुलवधू की सीमा में रहते हुए उसे अपना स्वजन समाज ही प्रिय है।[170] वह पति के आमोद-प्रमोद में ही हाथ बटानेवाली नहीं युद्ध के समय भी स्वयं जाकर अपने योग्य कार्य की याचना करनेवाली है।[171] पति द्वारा उसे उर्मिला को समझाने का काम मिलता है। इसी गुरु-भार को वह पूर्ण निष्ठा के साथ करती है और कष्ट की मधु भाव माता-सी बनकर अपने कार्य से दिव्य देवियों को भी पराजित कर देती है।[172]

माण्डवी का आत्मीय एवम् उसका कर्मरत स्वरूप ही उसके व्यक्तित्व का महत्तर ...य है। एकपत्र सामक की भाभी दुलारी बेटी होकर, एक होकर भी चौदह वर्षों तक ...य किसी भावना को न निहारते हुए अधिकारा-ग्रम का पालन करना[173] निःसंदेह ...के चरित्र की महानता है। उसके लिए भाग्यों का भरना भी सविततर था। वह ...एकर भी दूर थी।[174] वस्तुत वह भरत जैसे तपस्वी की सच्ची तपस्विनी भार्या थी।

'साकेत सन्त' की चरित्र भूमि में यद्यपि माण्डवी का चरित्र-चित्रण नाम मात्र को हुआ है और मनोभावों के अन्तर्गत भी उसके नारी-हृदय की सुकोमल भावनाओं को अभिव्यक्त होने का अवसर प्राप्त न हो सका है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपने स्वजन-समाज को ही प्रिय माननेवाली यह कुलवधू अपनी रेखानुहित में ही अपने आप में पूर्ण है। उसका तापसीवत् जीवन ही उसके व्यक्तित्व का उसके नारीत्व का वह गरिमामय स्वरूप है जिसे अवधि के उपरान्त प्राप्त कर भरत को हिमालय-दर्शन की इच्छा नहीं रह जाती है। एक तपी की पत्नी के अनुरूप उसका आचरण ही उसके नारी जीवन का सबलतम स्वरूप है और वही उसके नारीत्व को विशिष्टता प्रदान करता है। अपने इसी तापसी वेश के कारण हिन्दी-महाकाव्यों के नारी-पात्रों के मध्य उसे अलग से ही खोजा जा सकता है।

कृष्णायन की राधा—'कृष्णायन' की प्रमुख नायिका राधा ही है। यद्यपि कृष्णायन की कथावस्तु में उसका उल्लेख प्रासंगिक-सा ही जान पड़ता है परन्तु अपनी -सीमितता में भी वह क्षीण नहीं होने पाया है। कृष्णायन में प्रथम बार कृष्ण की संपूर्ण जीवन-कथा को संकलित काव्य का स्वरूप प्रदान करने के कारण भी कथा में राधा की स्थिति परम्परागत धारणा के अनुरूप विकसित नहीं हो पाई है। इसके अतिरिक्त

---

१६९. साकेत संत १।४२।
१७० वही १।२९।
१७१ वही ४।५५।
१७२ वही पृ० १११।
१७३ वही पृ० ११०।
१७४ वही पृ० ११५।

इस महाकाव्य में प्रेम के सम्पूर्ण स्वरूपों की व्यंजना भी युगल मूर्ति का आधार लेकर व्यक्त नहीं की गई है। अतः राधा का चरित्र-चित्रण और कथा में उसका स्थान सीमित होना स्वाभाविक है। फिर भी 'एकहि में द्वय राधिका द्वैत-भाव भव भ्रान्ति' के अनुसार कथा में राधा का स्थान गौण नहीं होने पाया है। उसके महत्व को पूर्ण रूपेण रखा की गई है।

कृष्णायन के अंतर्गत राधा के व्यक्तित्व के प्रधानतः तीन स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं—बाल-सखि का स्वरूप प्रेमिका का स्वरूप एवम् प्रेम-साधिका का स्वरूप।

अपने बाल-सखि-स्वरूप में राधिका मुखरा चंचल एवम् भोली बालिका-सी दृष्टिगोचर होती है। प्रथम भेंट के समय जहाँ वह अपना नाम धाम और पिता का परिचय देने में देर नहीं करती वहीं वह कृष्ण को 'चोर' कहने से भी नहीं चूकती।[१०५] कृष्ण द्वारा यह पूछने पर कि तुमने तुम्हारा क्या चुराया है उसका इन वचनों को न समझते हुए, अनिमेष ताकते रह जाना उसके भोले भाले स्वभाव का बोधक है।[१०६] नन्द द्वारा कृष्ण को सौंपे जाने पर राधा का गलबाहीं देकर यह कहना कि नन्द ने तुम्हें मुझे सौंपा है,[१०७] जहाँ उसकी विनोद-वृत्ति का परिचायक है वहीं वह उसके बाल-सुलभ स्वभाव का भी द्योतक है। हरि के साथ उसका बसना सीखना दही मथते हुए हरि को देखकर उसका दुखित हो जाना यशोदा के समझाने देने पर उसका खीज कर रिसा जाना मथानी फेंक कर हरि के निकट आ खड़े होना यशोदा के मारने दौड़ने पर भय बसति हुए भाग खड़े होना और खरिक में जाकर कृष्ण के साथ गौ-दोहन आदि करना[१०८] वास्तव में राधा के बाल-स्वभाव के ही द्योतक हैं। उसका यह बाल-सखि स्वरूप अपने आप में रसमय एवम् अनुपम है।

प्रेमिका के रूप में राधा माधव की अनन्य उपासिका है। अपने इसी प्रेममय स्वरूप के कारण उसमें और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है। उसे असम कर श्रीकृष्ण की कोई गति नहीं है। यदि मैं सुधा हूँ तो वह चिर मन तृप्ति है।[१०९] वह भक्ति का रूप धारण कर ब्रज में आई है। श्रीकृष्ण ने यत्नपूर्वक जिस प्रेम-विटप को लगाया है राधा को उसी प्रेम-विटप को अपनी दृगवारि से सींचने का गुरु भार वहन करना पड़ता है।[११०] प्रिय द्वारा सौंपे गए इस दुस्तर भार एवम् प्रिय-वियोग की बात सुन कर राधा विलख उठती है। हरि के समझाने पर भी उसका हृदयावेग एक बार पुनः उसे विदा होते श्रीकृष्ण के रथ के सामने ला पटकता है हरि रथ त्याग कर उसे हृद

१०५ कृष्णायन पृ० ६४। १०८ वही पृ० ७१ ७२।
१०६ वही पृ० ६६। १०९ वही पृ ६६।
१०७. वही पृ० ६६। ११० वही पृ० १००।

से सदा संग हैं और उसी भय से राधा ठीक वैसे ही प्राकृत नारी नहीं होती जैसे सीप में गिरने के पश्चात् स्वाति जलकण नहीं रह जाती है।[१८१] इस प्रकार की अलौकिकता राधा को मंडित कर देती है।

प्रेम-साधिका के रूप में राधा अपने आप में पूर्ण तपस्विनी है। कृष्ण से दूर होकर भी वह कृष्ण से दूर नहीं रहती। उद्धव को ब्रज-वास के समय मंजीरवादक हरि के चरणों में प्रणाम कर सुमनांजलि चढ़ाते[१८२] हुए उसका देखना और मंजीरवट प्रसंग के निराकरण के हेतु हरि का अपने एवम् राधिका के अद्वैत भाव का संकेत करना[१८३] वास्तव में राधा के प्रेम-साधिका स्वरूप का ही द्योतक है। कुरुक्षेत्र के मेले में भी राधा देहधारी भक्ति की तरह ही दृष्टिगोचर होती है।[१८४] प्रेम-साधना के बल पर ही हरि राधा को अपवर्गिनी मानते हैं। उसने बालमुकुन्द के पद की प्राप्ति कर मधुरायी को अपने वशीभूत किया है और वह जहाँ भी चाहती है उन्हें बुला लेती है।[१८५] आजीवन मनसा वाचा और कर्मणा से हरि की सच्ची आराधना करने एवम् हरिमय प्राण रखने के कारण ही वह एकत्रित जनसमूह के समक्ष श्रीकृष्ण की बाल-लीला को प्रदर्शित कर पाती है।[१८६] इस प्रकार राधा की प्रेम-साधना अपने आप में अनन्य है।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में राधा के चरित्र का विकास और मनोभावों के अंतर्गत उसका स्वरूप पूर्णरूपेण प्रकट नहीं होने पाया है। कृष्णायनकार द्वारा राधा कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों को न तो विस्तार ही दिया गया है और न उनकी व्यापक व्यंजना ही की गई है। श्रीकृष्ण की बाल-सखी के रूप में राधा का जो भी स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह सूरसागर की राधा से ही अनुप्राणित है। कृष्णायनकार द्वारा हरि की अनन्य शक्ति के रूप में ही उसका उल्लेख हुआ है और क्षीर सागर सुधि के मिस राधा और कृष्ण के इस अद्वैत एवम् पुरातन सम्बन्ध का निर्देश भी कर दिया गया है। रुक्मिणी सुभद्रा आदि की तरह श्रीकृष्ण की विवाहिता पत्नी न होने पर भी 'श्याम सखी राधा' कृष्णायन की प्रधान नायिका ही साबित होती है। द्रौपदी के शब्दों में 'त्रैलोक्य सुन्दरी राधा का चरित्र अचिन्त्य एवम् स्वभाव अपार है।[१८७] सच पूछा जाये तो श्याम की यह चिर प्रेम-साधिका अपने आप में ही महिमावान् है। अतः कृष्णायन की सीमित सीमा में भी उसका व्यक्तित्व सीमाहीन एवम् अलौकिक है।

---

१८१ कृष्णायन पृ० ११७ ।
१८२ वही पृ० २२५ ।
१८३ वही पृ० २२७ ।
१८४ वही पृ० ४९० ।
१८५ वही पृ० ४२२ ।
१८६ वही पृ० ४२६ ।
१८७ वही पृ० ४२२ ।

रावण की मंदोदरी—मंदोदरी 'रावण' की प्रधान नायिका है। कथा में उसका स्थान गौण-सा है। नायक की पत्नी होने के नाते और रावण के बल की वृद्धि करनेवाली के रूप में ही कथा में उसका उल्लेख हुआ है। विभीषण द्वारा उसे अपनी पत्नी बनाने का प्रयत्न भी कथा का एक भाग बनकर मंदोदरी के साथ जुड़ा हुआ है। परन्तु फिर भी कथा में उसकी स्थिति नेपथ्य-वासी से अधिक नहीं जान पड़ती।

मंदोदरी रावण की पटरानी के रूप में चित्रित हुई है। उसके जीवन-वृत्त के अनुसार वह मय दानव की पुत्री एवम् हेमा नामक अप्सरा की कोख से उत्पन्न अनुपम सुन्दरी है। जिस दिन से वह मय दानव-नन्दनी लंकापुरी में ब्याह कर आती है ऐसा प्रतीत होता है मानों मानसरोवर में हेम सरोज अपनी सुषमा बिखेर कर खिल रहा हो। उसकी मंद हंसी की छटा वसुधा पर सुधा-धार बहाती है।[१८८] पार्वती की वन्दना कर वह शिशु को गोद खिलाने की भावना करती है[१८९] और पार्वती से मनोवांछित वर प्राप्त कर वह राक्षस-वंश की विभूति को बढ़ानेवाले पुत्र को गर्भ में धारण करती है।[१९०]

मेघनाद सदृश तेजस्वी पुत्र की माता एवम् रावण सदृश नीति-निपुण वीर की पत्नी होकर भी मंदोदरी के व्यक्तित्व की व्यंजना कहीं भी उसके इस महिमशी स्वरूप को व्यक्त नहीं करती। पुत्र और पति की मृत्यु पर वह मर्म पात करती हुई दृष्टिगोचर होती है किन्तु वह मनोभाव-शून्य मूक रुदन भी उसकी करुणा की अभिव्यंजना करने में असमर्थ ही सिद्ध हुआ है। विभीषण के राज्याभिषेक के उत्सव के समय मंदोदरी के हृदय में विचारों की धारा उमड़ने लगती है और वह विचार में पड़ जाती है कि वह उस हाथ को कैसे थाम सकती है जिसने प्रभु को उसके पतिघात का उपाय बताया हो मेघनाद जैसे सूर सपूत का खड़े-खड़े शीश कटवाया हो देश राष्ट्र तथा जाति का गौरव अपने स्वार्थ-साधन के हेतु नष्ट किया हो।[१९१] किन्तु मंदोदरी की इस दृढ़ता में भी लड़खड़ाहट आ खड़ी होती है।

मंदोदरी अपने विगत सुखद दिनों का स्मरण करती हुई सोचती है कि संसार का ऐसा कौन-सा वैभव शेष रहा जिसके सुख का अनुभव उसने न किया हो और अब तक जीवननाथ रहे तब तक दुःख उसकी परछाईं को भी छू नहीं पाया। धरती उस पर ऐसी कोई स्त्री नहीं थी जो उसके समान बड़भागिन हो।[१९२] किन्तु उसे अपनी दमनीयता पर खेद होता है। रावण जैसे वीर की पत्नी को हथियाने का प्रयत्न उसे

---

१८८ रावण महाकाव्य पृ० ८०।
१८९ वही पृ० ८१।
१९० वही पृ० ८२।
१९१ वही पृ० १८२।
१९२ वही पृ० १८३।

ऐसा लगता है जैसे पुरोडाश रासभ खाना चाहता हो।[153] उसकी नारी सुलभ दुर्बलता उसे यह स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है कि रुधिरपिपासु म्लेच्छ के पाले पड़ गई है, उसकी लज्जा लुटने जा रही है परन्तु मुँह पर ताला पड़ने के कारण वह बोल भी नहीं सकती क्योंकि उसकी रक्षा करनेवाला कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता। रोते रोते उसका शरीर भी इतना क्षीण हो गया है कि वह हाथ में ग्रास तक ग्रहण नहीं कर सकती।[154] अतः परिस्थितियों एवम् विधाता को वाम जानकर मंदोदरी क्षोभ-रहित होकर ऐसी बन जाती है कि दूतियों की निलज्जतापूर्ण बातों पर भी रोक नहीं लगाती। नायिनियाँ आकर उसका शृङ्गार करती हैं मालिनियाँ आकर उसे फूलों से सजाती हैं और चुरिहारिनें आकर उसे चूड़ियाँ पहिनाती हैं।[155] इन बातों से मंदोदरी की दुर्बलता पर ही प्रकाश पड़ता है और उसका पातिव्रत्य परिस्थितियों के मध्य लड़खड़ा जाता है। प्राणों पर खेल कर अपने वैधव्य-व्रत पर जरा भी आँच न आने देनेवाली नारी की दृढ़ता के दर्शन उसके स्वरूप में दृष्टिगोचर नहीं होते।

ऐसी संकटावस्था के मध्य चान्द्र मालिनी ही उसे सुपथ की राह बता कर उबार लेती है। साथ ही वञ्चनाओं की रूपक तीखी कटार मंदोदरी को सौंपते हुए उसे सुअवसर पाकर उस कटार द्वारा नराधम का हृदय विदीर्ण करने की सलाह के साथ साथ वह मंदोदरी को मन वचन और काया से अपनी मर्यादा रक्षा का उपदेश भी देती है।[156] चान्द्र मालिनी की ये बातें भी मंदोदरी के व्यक्तित्व को छोटा ही साबित करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे संकट के समय की कर्तव्य-बुद्धि का भी मंदोदरी में अभाव है और उसे ये बातें किसी अन्य द्वारा सीखने की आवश्यकता है।

'रावन' महाकाव्य की चरित्र-भूमि में मंदोदरी का व्यक्तित्व प्रधान नायिका के अनुरूप उभर नहीं पाया है। रावन की मृत्यु के उपरान्त विभीषण द्वारा ग्रस्त किए जाने पर प्रकट होने वाले उसके मनोद्गारों से भी उभरी दुर्बलता ही झाँकती है। एक अक्षोहिणी योद्धा की पटरानी इतनी अधिक दुर्बल हृदया हो सकती है यह कुछ अस्वाभाविक-सी बात लगती है। रावनकार द्वारा चित्रित मंदोदरी यदि पूर्व परम्परा से ही अनुमानित होती तो भी संभवतः रावन महाकाव्य की मंदोदरी का ऐसा दुर्बल स्वरूप हमारे सामने उपस्थित नहीं होने पाता। रावनकार द्वारा विचार-स्वातन्त्र्य के नाम पर जिस 'हिमोढ़ की युग'[157] की दुहाई दी गई है उसी हिमोढ़ की युग में

---

१५३ रावण महाकाव्य पृ० १८४।
१५४ वही पृ० १८४-८५।
१५५. वही पृ० १८५ से १८७।
१५६ वही पृ० १८५।
१५७. वही पृ० २१।

संभवतः किसी भी नारी-पात्र की मंदोदरी से बढ़कर हत्या नहीं हुई है और सच पूछा जाये तो हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र-भूमि में मंदोदरी से दुर्बलतर अन्य कोई नारी-पात्र प्रधान नायिका के रूप में चित्रित ही नहीं हुआ है।

उप-नायिकाओं का व्यक्तित्व-विश्लेषण

रासो की उप-नायिकाएं

चित्ररेखा—रासो की चरित्र-भूमि में, उप-नायिका के चित्रण की दृष्टि से चित्ररेखा का महत्वपूर्ण स्थान है। चित्ररेखा का चित्रण प्रासंगिक कथावस्तु के अंतर्गत हुआ है। पृथ्वीराज की शरणागत-वत्सलता को प्रदर्शित करने के लिए ही चित्ररेखा की सृष्टि हुई है क्योंकि शाहबुद्दीन के पास हुए जैसी जो पातुर थी, उसी को लेकर हुसैन चौहान की शरण में आया था।[1] चित्ररेखा पातुरी थी। वह पन्द्रह वर्षीया युवावाली रूप रंग-संपन्न रति के समान अनवाली और गान तथा वीन-वादन में विलक्षण थी। उसमें अन्य बत्तीसों गुण थे और वह गजनी के शाह को अत्यन्त प्रिय थी।[2] शाह ने चित्ररेखा को अरब खां के पास से प्राप्त किया था।[3] अरब खां के यहाँ से चलते समय ही शाह का मन चित्ररेखा की ओर मत्त मयन्द की भांति आकर्षित हो गया था।[4] वेश्या के रूप में चित्ररेखा धूप-रूप-मनस्या श्रृङ्गार हारावली सुरति लक्षणा अच्छे गुणोंवाली और काम-केलि थी। उसका रूप नदी के समान कटाक्ष कूल-तटों की तरह और भाव श्रेष्ठ तरंगों की तरह थे। वह त्रिलोक दुर्लभ सुन्दरी अनंग-क्रीड़ा-रसयुक्त थी।[5]

शाह का आदर पाकर चित्ररेखा का प्रेम बढ़ता चला जाता था और चित्ररेखा ने भी सुल्तान को डोर से बँधी पतंग की तरह अथवा नाद-मोहित कुरंग के समान अथवा मंत्रवशीभूत मधुकर की तरह अपने वश में कर रखा था।[6] किन्तु बाद में चित्ररेखा शाह के भाई मीरहुसैन की दृष्टि में पड़ गई और दोनों ही परस्पर प्रेम में बंध गए।[7] यह समाचार सुनकर सुल्तान क्रोधित हुआ और उसने मीरहुसैन को चेता वनी दी किन्तु मीरहुसैन ने चित्ररेखा के प्रेम का परित्याग न किया। परिणामस्वरूप चित्ररेखा सहित मीर ने पृथ्वीराज की शरण ली। शाह ने चढ़ाई की। पृथ्वीराज ने

---

१ पृथ्वीराज रासो, समय ६। १६।
२ वही पृ० ६। ३।
३ वही १२। २८।
४ वही १२। १७।
५ वही १२। २१।
६ वही १२। ११, ३२।
७ वही समय ६। ३।

मीर की सहायता की किन्तु मीर युद्ध-भूमि में काम आया और चित्ररेखा ने अपने प्रेमी की लाश के साथ जीते जी ही कब्र में गड़ कर अपने प्रेम का परिचय दिया।[८]

रासोकार द्वारा वर्णित इस कथा के अंतर्गत यद्यपि पातुरी चित्ररेखा का चरित्र सहज उभरने नहीं पाया है परन्तु हम उसके व्यक्तित्व को प्रधानतः दो रूपों में देख सकते हैं—पातुरी के रूप में और प्रेमिका के रूप में। पातुरी-जीवन उसकी लाचारी है और शाह के साथ उसका प्रेम-व्यापार इसी पातुरी-वृत्ति का उदाहरण है। मीर की प्रेमिका के रूप में वह उत्सर्गमयी नारी है। अपने प्रेमी के साथ उसने केवल शाही सुखों और सम्मान का ही परित्याग नहीं किया अपितु प्रेमी की मृत्यु के उपरान्त उसी की कब्र में उसी के साथ गड़ जाना पसन्द किया। उसके जीवन का आरम्भ सामान्या के रूप में हुआ है परन्तु उसका अन्त सर्व सामान्या-सुलभ नहीं है। रासोकार की कथात्मक शैली के कारण स्वभाव एवम् मनोभावों की दृष्टि से चित्ररेखा व्यक्तित्व-शून्य है। उसके चरित्र-चित्रण में वर्णनात्मकता का प्राधान्य है। चित्ररेखा का पातुरी जीवन उसके चरित्र की दुर्बलता और उसका उत्सर्ग उसकी चारित्रिक विशेषता है।

इंछिनी—रासोकार द्वारा इंछिनी का चित्रण भी प्रासंगिक कथा के रूप में ही हुआ है। अतः चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इंछिनी का स्थान भी उपनायिका के अंतर्गत ही आता है। इंछिनी की चरित्र-सृष्टि पृथ्वीराज के शौर्य-प्रदर्शनार्थ ही की गई है। वह आबू के राजा सलख पंवार की कनिष्ठा कन्या थी। सलख की बड़ी लड़की मंदोदरी का विवाह भीमदेव के साथ होना निश्चित हुआ था किन्तु इंछिनी के रूप की प्रशंसा सुनकर भीमदेव उस पर आसक्त हो गया। इंछिनी पृथ्वीराज की वाग्दत्ता थी। भीमदेव ने इंछिनी के रूप पर मोहित होकर अपने प्रधान को सलख के पास भेजा। सलख ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और इंछिनी के विवाह का सन्देश पृथ्वीराज के पास भेज दिया। इधर भीमदेव ने चढ़ाई की तैयारी की। शाहबुद्दीन से भी सहायता माँगी। युद्ध हुआ और अंत में पृथ्वीराज के साथ इंछिनी का विवाह, भीमदेव तथा शाहबुद्दीन की पराजय के पश्चात सम्पन्न हो गया। अतः यह स्पष्ट है कि 'इंछिनी ब्याह-कथा' और उसके अंतर्गत इंछिनी का चित्रण भी पृथ्वीराज के शौर्य प्रदर्शन के हेतु किया गया है।

कथात्मक एवम् वर्णनात्मक शैली के कारण चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत केवल इंछिनी का सौन्दर्य एवम् नख-शिख-वर्णन ही हमारे सामने आता है। वह वय संधि में है एवम् उसका रंग अति सुरंग है।[९] वह मानों इन्द्रवधू रवि के समान है।[१०] अब

८ पृथ्वीराज रासो, समय १४। ६। १० वही १४। ११।

९. वही समय [illegible]

रासोकार ने पद्मावती के चरित्र-चित्रण में भी अपनी उसी प्रासंगिक कथात्मक एवं वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया है। कथानक रूढ़ियों के आधार पर कवि पद्मावती के मन में रूप-गुण श्रवणजन्य आकर्षण उत्पन्न कर पूर्वानुराग जागृत करता है। शुक द्वारा सन्देश भिजवा कर प्रिय प्राप्ति का आयोजन कर, पद्मावती के प्रेममय स्वरूप की भी झाँकी प्रस्तुत करता है। कथा में पद्मावती के मनोभावों के अन्तर्गत उसका स्नेही भावुक स्वरूप ही व्यक्त हो पाया है और किञ्चित व्याकुलता का आभास भी मिलता है। रासो की चरित्र-भूमि में नायिका के समस्त रूप-गुण रखते हुए भी पद्मावती का व्यक्तित्व प्रासंगिक शब्द-चित्र से अधिक नहीं उभर पाया है और रासो की विलासकामना के क्रोड़ में उसका चरित्र भी समा गया है।

शशिव्रता—रासो की उपनायिकाओं में भानराय यादव की पुत्री शशिव्रता का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। कथा में प्रासंगिकता के अन्तर्गत ही वह अन्य उपनायिकाओं से कुछ भिन्न स्थिति रखती है। पृथ्वीराज के शौर्य प्रदर्शन एवं मान-सम्मान की कसौटी के रूप में तो उसका चित्रण हुआ ही है परन्तु दैवी विधान की पूर्ति और पृथ्वीराज को मृत्युलोक में देवता के समान बलवान और प्रतापी पति सिद्ध करने के लिए ही शिव के शाप एवं वरदान की सृष्टि शशिव्रता का चित्रण रासोकार ने प्रस्तुत किया है।

शशिव्रता शाप भ्रष्ट अप्सरा थी। उसके पूर्वजन्म का नाम चित्ररेखा था। अपने रूप-मान-गर्व में इन्द्र से अड़ जाने के कारण उसे दक्षिण-नरेश की बेटी बनना पड़ा।[२१] शाप ही वह शिव शापित भी थी क्योंकि स्वर्ग में इन्द्र का आतिथ्य स्वीकार किए हुए महादेव का अपने स्वरूप से क्षण मात्र के लिए कामवशीभूत कर, वह उनके काम का भाजन बनी थी और इस प्रकार स्वर्ग से पतित होकर उसे मृत्युलोक में मानवी शरीर धारण करना पड़ा था।[२२] शशिव्रता चन्द्रमुखी मृगलोचनी कम्बुकंठी शुक नासा गजगामिनी एवं सर्वांग सुन्दरी का ऐसा स्वरूप लेकर अवतरित हुई थी मानो ब्रह्मा ने भूमि पर दूसरी मेनका का निर्माण किया हो।[२३]

नट द्वारा वर्णित शशिव्रता के रूप ने पृथ्वीराज के मन में उसके प्रति अनुराग जागृत किया और हंस के रूप में अवतरित गन्धर्व ने शशिव्रता तथा पृथ्वीराज को एक-दूसरे के प्रति आकर्षित किया। इसी आकर्षण ने शशिव्रता को दृढ़ता प्रदान की और कान्यकुब्ज नरेश के भतीजे वीरचन्द जैसे वर से विवाह करने की अपेक्षा उसने आत्म हत्या को अधिक उचित समझा। रात-दिन शिव की पूजा करता।[२४] सखियों

---

२१ पृथ्वीराज रासो, समय २५। ७२। २३ वही २५। २६। २७।
२२ वही २५। १६६। २४ वही २५। १८०।

की सीधकी अवहेलना करना[२५] आदि उसके दृढ़ प्रेम के प्रतीक हैं और उसकी यही प्रेम दृढ़ता उसके पिता मान को चुपचाप पृथ्वीराज के पास शिवालय में शशिव्रता प्राप्ति का सन्देश भेजने को लाचार करती है।[२६]

शशिव्रता की मनोकामना अन्त में पूर्ण होती है। माता पिता की आज्ञा लेकर वह शिवालय में जाती है[२७] पृथ्वीराज भी अपने योद्धाओं सहित वहीं आ पहुँचता है और पृथ्वीराज तथा शशिव्रता की आँखें चार होते ही शशिव्रता की दृष्टि लज्जा से झुक जाती है एवं पृथ्वीराज उसका हाथ पकड़ लेता है।[२८] घनघोर युद्ध के पश्चात् विजय पृथ्वीराज को मिलती है। पृथ्वीराज शशिव्रता सहित दिल्ली पहुँचता है और सुन्दरी शशिव्रता के साथ विहार करते हुए इन्द्र की भाँति स्वच्छन्दता-स्वतन्त्रता से राज्य करता है।

रासोकार की कथात्मक तथा वर्णनात्मक शैली के कारण शशिव्रता का चरित्र चित्रण भी वृत्तात मात्र है। मनोभावों के अतर्गत उसका स्वरूप कुछ स्थलो पर अवश्य प्रकट होता है। उसके लज्जा मिश्रित प्रेममय स्वरूप की झाकी उस समय उपस्थित होती है जब श्रवण पर्यन्त जानेवाले उसके कटाक्ष कानों से कुछ पूछना चाहते हैं किन्तु लज्जावश कुछ पूछ नहीं पाते और नैन-सैन से ही सब बातें श्रवणों से कह देते हैं।[२९] उसके करुणा मिश्रित स्नेहमय संयम का स्वरूप उस समय देखा जा सकता है जब प्रियतम द्वारा हाथ पकड़ लिए जाने पर पुलकनों का स्मरण अश्रु बन कर बहना चाहता है किन्तु संभयस-सूचक अश्रुओं का वह संयमपूर्वक रोक लेती है।[३०] युद्ध-काल में पृथ्वीराज के साथ होनेवाला उसका प्रेमालाप जहाँ उसके समर्पण-भाव को उपस्थित करता है, वहीं राजा द्वारा शपथपूर्वक यह कहे जाने पर कि वह तीनों अवस्था में उसके साथ वैसी ही प्रीति रखेगा जैसी युवावस्था में है, शशिव्रता का पृथ्वीराज के चरणों में लिपट जाना उसकी नारी सुलभ सरलता एवम् श्रद्धा का प्रतीक है।

शशिव्रता के चरित्र-चित्रण में भी रासोकार ने कथात्मक रूढ़ियों का आश्रय लिया है। इन रूढ़ियों ने जहाँ शशिव्रता के चरित्र को कुछ विशेषताएँ प्रदान की हैं, वहीं कुछ मनोवैज्ञानिक कमजोरियाँ या दुर्बलताएँ भी उत्पन्न कर दी हैं। श्रवणजन्य अनुराग ने जहाँ उसके प्रेम को दृढ़ता प्रदान की है वहीं प्रिय-दर्शन या मिलन के पूर्व ही शशिव्रता की विरह-कल्पना उसकी दुर्बलता एवम् चारित्रिक अस्वाभाविकता का उदाहरण है। अतः कथानक रूढ़ियाँ शशिव्रता के चरित्र-चित्रण में कहीं-कहीं अस्वाभाविकता बनकर उसकी दुर्बलता को ही प्रदर्शित करती हैं।

---

२५ पृथ्वीराज रासो समय २५। २४६ से २५५।
२६ वही २५। २६६।
२७ वही २५। २६७।
२८ वही २५। २६७।
२९ वही २५। २६०।
३० वही २५। ३७५।

पद्मावत की उपनायिकाएँ

नागमती — नागमती पद्मावत की रूप-गुणसम्पन्न नायिका है। कथा में उसकी स्थिति पद्मावती के कारण उपनायिका बनी हो गई है। एक पतिपरायणा हिन्दू स्त्री के रूप में कथा में उसके प्रेम की मार्मिक व्यंजना हुई है। अतः पद्मावत की कथावस्तु में उसका स्थान गौण नहीं होने पाया है। अपनी सहज स्वाभाविक विशेषताओं एवम् दुर्बलताओं के कारण उसने पद्मावत की कथावस्तु को अनुप्राणित किया है।

नागमती का व्यक्तित्व विविध है। सर्वप्रथम वह रूप-गर्विता के रूप में उपस्थित होती है। 'नागमती-सुआ-सम्वाद खंड' के अन्तर्गत उसकी इस रूप-गर्विता वृत्ति के दर्शन होते हैं। इस रूप-गर्विता वृत्ति के अन्तर्गत उसके जातिगत सामान्य स्वभाव का ही परिचय मिलता है। एक पति-परायणा पत्नी में प्रेम-गर्व स्वाभाविक होता है। अतः प्रेम-गर्विता के रूप में भी उसके सामान्य जातिगत स्वभाव की ही व्यंजना है। अपने इसी प्रेम के कारण पति की हित-कामना की दृष्टि से उसके हृदय में पद्मावती के प्रति ईर्ष्या भावना भी उदित होती है क्योंकि 'ठगिनी पद्मिनी का साथ होने के कारण ही राजा को पर-हाथ में पड़ना पड़ा।[३१] 'नागमती-पद्मावती-विवाद खंड' के अंतर्गत भी नागमती की नारी सुलभ ईर्ष्या-वृत्ति के दर्शन होते हैं। हृदय में विरोध और मुख पर मीठी बातें करना बातों-बातों में ही अपने रूप का गर्व प्रदर्शित करते हुए सौत को नीचा दिखाने के लिये जली-कटी कहना वास्तव में नागमती के जातिगत नारी-स्वभाव को ही प्रदर्शित करते हैं।

प्रिय वियोग की आशंका तथा प्रिय-वियोग के पश्चात् नागमती के विरहोद्गार उसके पति-परायणा हृदय की मार्मिक अभिव्यंजना प्रस्तुत करते हैं। इन विरहोद्गारों के अंतर्गत उसका गूढ़ एवम् गंभीर प्रेम परिलक्षित होता है। उसके बारहों मास रोते रोते कटते हैं। एक-एक दीर्घ निःश्वास सहस्रों दुखों से पूर्ण रहता है और दिन भर समय भी सर्प के समान जान पड़ता है।[३२] जिस पंछी के निकट जाकर वह विरह की बात करती है, वही पंछी जल जाता है और वृक्ष पत्रहीन हो जाते हैं।[३३] उसके हाड़ किंगरी एवम् नसें तांत के समान हो उठती हैं। रोम रोम से ध्वनि उठती है। अतः वह अपनी व्यथा को व्यक्त करने में असमर्थ-सी साबित होती

---

३१ जायसी ग्रंथावली पृ० २६६। ३३ वही पृ० १२८।
३२ वही पृ० १२७।

है।[३४] काग द्वारा पद्मावती को संदेश भिजवाते समय वह यह भी व्यक्त करती है कि उसे भोग से कोई सरोकार नहीं है। वह पति से एक बार मिलना चाहती है।[३५] इस प्रकार उसके उद्गारों से एक पति-परायणा नारी का हृदय झांकता है।

पद्मावत' की चरित्र भूमि में नागमती पूर्ण-रूपेण पत्नी है। उसे अपने प्रेम पर गर्व है और एक प्रसन्न गृहणी का जीवन व्यतीत कर वह पति के साथ ही सती होकर अपने उत्सर्गमय स्वरूप का भी परिचय देती है। नागमती में स्त्री-सुलभ सम-विषयों के भी दर्शन होते हैं। सुये का बिल्ली के खा जाने का बहाना[३६] राजा के कुपित होने पर सुआ सौंपते हुए राजा के मर्म लेने की बात करना[३७] आदि इसके प्रमाण हैं। इसे उसकी नारी सुलभ दुर्बलता माना जा सकता है। नागमती के विरहोद्गारों को व्यक्त करते समय विदेशी प्रभाव के कारण जायसी द्वारा नागमती के चरित्र मे कतिपय असंगतियां भी आयी हैं। कुल मिलाकर नागमती एक प्रेम परायणा गृहणी ही सिद्ध होती है और उसके विरहजन्य उद्गार एवम् संकट के क्षण उसके पत्नीत्व को ही प्रदर्शित करते हैं।

बादल की पत्नी— बादल की पत्नी की चरित्र-सृष्टि 'पद्मावत' में प्रासंगिक रूप में ही हुई है। कथा में उसका स्थान प्रासंगिक मात्र है। उसके चरित्र के दो पहलू हमारे सामने उपस्थित होते हैं—नव-वधू के रूप में और क्षत्राणी के रूप में। नववधू के वर-वेश में वह सामान्य नारी की सुकोमल भावनाओं को ही परिलक्षित करती है। उसका घूंघट निकाल कर द्वार पर आकर खड़ा होना और पति को अपनी ओर निहारते न देख भी इच्छा कर मुस्कराना[३८] उसकी नारी सुलभ प्रणय चेष्टाओं को ही व्यक्त करता है। उसके हृदय में पति को पीठ दिखाते देख कर जो सोच-विचार जागृत होता है अथवा यह दुविधा कि यदि लजाती हूँ तो प्रिय चले जायेंगे और यदि स्वयं उन्हें ग्रहण करती हूँ तो मुझे ढीठ समझेंगे[३९] वास्तव में नारी के वास्तविक स्वरूप की ही व्यंजना करते है। अपने प्रथम गृह प्रवेश का हवाला देकर पति को रण में जाने से रोकना[४०] भी उसकी नारी-सुलभ प्रवृत्ति का ही द्योतक है।

अधर-से-अधर के चूमने के सुझाव[४१] एवम् अन्य विनती के पश्चात भी जब उसकी अम् भीगी हिय-चोली अछूती ही रही और कंत ने उसे नहीं खोला काजल से भीगा आंचल भी प्रियतम का रोआं तक न पिघला सका[४२] तब उसका नारी-हृदय,

---

३४ जायसी ग्रन्थावली पृ० १२६।   ३९ वही पृ० २८३।
३५ वही पृ० १६ ।   ४० वही पृ० २८४।
३६ वही पृ० ३५।   ४१ वही पृ० २८४।
३७ वही पृ० ३७।   ४२ वही पृ० २८५।
३८ वही पृ० २८३।

साम्राज्ञी की दृढ़ता एवम् आत्म-गौरव से परिपूर्ण हो उठता है। साम्राज्ञी-सुलभ ओज उसकी वाणी से फूट पड़ता है और वह सती का बाना ग्रहण कर लेती है। दोनों स्थितियों में विलाप का संकेत[४३] उसके हृदय की उस दृढ़ता एवम् आस्था को ही व्यक्त करता है जो एक साम्राज्ञी नारी में वंशानुक्रम एवम् परम्परा से प्रभावित एक सहज प्रवृत्ति हो जाती है।

बादल की पत्नी पद्मावत की चरित्र-भूमि में एक लघु चित्र के समान है। गवनोपरान्त आनेवाली वधू के रूप में वह एक भावना-पूरित नारी है और परिस्थिति जन्य वातावरण के मध्य एक सम्भ्रमात साम्राज्ञी है। जायसी के विदेशी शृंगारिक दृष्टिकोण के कारण उसकी भावाभिव्यक्ति में अस्वाभाविकता भी आ गई है। तीखी दृष्टि के साथ का हृदय में पैठना कुच रूपी तुम्बी को पीठ से छुआ कर पीड़ा से थके हुए पति को रस-मग्न करने की बात सोचना[४४] इसका उदाहरण है। इसी प्रकार जिस रूप में बादल की पत्नी के मनोभावों की चर्चा की गई है और अधर-से-अधर के चूसने का जो खुला आमंत्रण[४५] वाणी द्वारा व्यक्त कराया गया है, वह बादल की पत्नी की कामुकतापरक वृत्ति का ही परिचायक नहीं अपितु उसे 'सामान्या नायिका' से भी गई बीती स्थिति में ला खड़ा करता है। प्रथम बार गृह-प्रवेश करनेवाली एक भारतीय वधू इतनी अधिक काम-मुखरा कदापि नहीं हो सकती। इस प्रकार की भावाभिव्यंजना मनोवैज्ञानिक एवम् सांस्कारिक दोनों ही दृष्टि से नारी सुलभ नहीं कही जा सकती। 'लड़ाई चाहते हो तो पहिले मुझसे संग्राम करो'[४६] और 'कुम्भस्थल एवम् कुच दोनों ही मदोन्मत्त हो रहे हैं इन्हें पेलो'[४७] जैसे वाक्य बादल की पत्नी को निर्लज्जता की जिस सीमा पर ले जाकर खड़ा कर देते हैं वे उसके नारीत्व के अनुरूप नहीं हैं। अतः वीर-शृंगार के उपमेय उपमानों के मध्य तालमेल बिठाने की चमत्कारप्रियता ने बादल की पत्नी के व्यक्तित्व एवम् स्वरूप को बे-मेल कर डाला है।

मानस की उपनायिकाएँ

पार्वती—मानस की चरित्र-भूमि में पार्वती का चरित्र-चित्रण यद्यपि प्रासंगिक है किन्तु मानस की कथावस्तु में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। एक दृष्टि से वह राम-कथा का माध्यम है और कथा के विकास की दृष्टि से भी वह शिव द्वारा वर्णित राम-कथा का 'हेतु' हुई है। पार्वती द्वारा उठाई गई शंकाएँ कथा को विविधता प्रदान करती हैं।

---

४३ जायसी ग्रंथावली पृ० २८५।
४४ वही पृ० २८३।
४५ वही पृ० २८४।
४६ वही पृ० २८४।
४७ वही पृ० २८४।

अतः पार्वती के माध्यम द्वारा मानस की कथा-वस्तु गतिशील एवम् अनुप्राणित हुई है।

सती उमा अथवा पार्वती के रूप में उसका व्यक्तित्व प्रधानतः तीन रूपों में हमारे सामने आता है—संशयशीला नारी के रूप में पश्चात्ताप विदग्ध नारी के रूप में एवम् अटल अनुरागिका पति-परायण तपस्विनी के रूप में।

संशयशीला नारी के रूप में पार्वती सामान्य नारी-सुलभ भाविगत भावनाओं का ही प्रतिबिम्बित करती है। अमलदर्शी शङ्कर द्वारा नृपसुत को, 'सच्चिदानन्द एवम् मोक्ष-धाम' कहकर प्रणाम करते देखकर तथा उन्हीं ज्ञानधाम श्रीपति को मन के समान नारी की खोज करते पाकर पार्वती के मन में अपने नारी-स्वभाव के कारण संशय उत्पन्न होता है। शिव के बार-बार समझाने पर भी जब पार्वती के संशय का समाधान नहीं होता तो वह स्वयं सीता का वेश धारण कर राम की परीक्षा लेती है, परीक्षण विधि को अनुचित जानकर शङ्कर से भी दुराव रखती है और शिव द्वारा सब कुछ जान लेने का अनुमान कर वह अपने कपट व्यवहार को नारी की सहज जड़ता स्वीकार करती है।[४८] सती के रूप में पार्वती का यह व्यवहार उसकी संशय शीला नारी-प्रवृत्ति का ही द्योतक है।

संशयजन्य कपट व्यवहार के कारण पार्वती को शंकर के स्नेह से वंचित हो जाना पड़ता है। अतः वह पश्चात्ताप विदग्ध नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। वह अवर्णनीय चिन्ता एवम् शोक में डूब जाती है और अवां के समान हृदय तपने लगता है।[४९] राम का स्मरण कर वह मरण की कामना करते हुए बिना परिश्रम ही इस विपत्ति से छूट जाना चाहती है।[५०] पति-परित्याग के दुःख को मन-ही-मन अपना अपराध जान कर, सहन करते हुए सती पिता के घर यज्ञ की बात सुनकर जाने के लिए आकुल हो उठती है और शिव के साथ समझाने पर भी नहीं रुकती। वहाँ पति की निन्दा और अपमान की बात सुनकर योगाग्नि द्वारा वह अपना शरीर भस्म कर डालती है।[५१] उसके इस परिताप एवम् मरण के मध्य पश्चात्ताप विदग्ध नारी-हृदय ही परिलक्षित होता है। साथ ही उसका यह उत्सर्ग भाव उसकी पति-परायणता को ही व्यक्त करता है।

गिरि-गृह में अवतरित होने से लगाकर शंभु के साथ विवाह सम्पन्न हो जाने तक पार्वती एक अटल अनुरागिका पति-परायण तपस्विनी के रूप में ही दृष्टिगोचर होती है। शंभु प्राप्ति के हेतु की जानेवाली उसकी कठोर तपस्या जहाँ उसके अटल

---

४८. मानस, बालकांड पृ० ६६ से ८०। ५०. वही पृ० ७६।
४९. वही पृ० ७४। ५१. वही पृ० ७० से ८१।

खिवानुराग की द्योतक है, वहीं यह तपस्या उसके दृढ़ स्वभाव की भी परिचायक है। उसके मन की दृढ़ता पर्वत-कन्या के अनुरूप ही व्यक्त हुई है। वह देह का परित्याग कर सकती है अपनी हठ का नहीं।[५२] करोड़ों जन्म तक वह इसी टेक पर कायम रहना चाहती है कि या तो वह शंभू को ही वरेगी या कुमारी ही रहेगी।[५३] इस प्रकार पार्वती की यह दृढ़ता उसकी कठोर साधना, पति-परायणता, एवम् शिवके प्रति उसके अटल अनुराग की परिचायक है।

मानसकार ने पार्वती के चरित्र की सृष्टि उसके जग माता स्वरूप के अनुरूप ही की है। यद्यपि मानसकार ने सती की हठ के अंतर्गत उसके नारी-सुलभ की दुर्बलता को व्यक्त करने की कोशिश की है किन्तु उमा के हठ के रूप में वह सामान्य नारी की भाव भूमि से ऊपर उठ कर आदर्श प्रधान हो उठा है। सती का हठ नारी सुलभ है किन्तु उमा का हठ अपने आप में अद्वितीय है। दक्ष-कन्या की दक्षजनित कमजोरी, हिम-कन्या की तपस्याजनित दृढ़ता बन गई है और इस प्रकार पार्वती का व्यक्तित्व भी अपनी उपमा आप ही हो उठा है।

कैकेयीः—कैकेयी मानस की कथावस्तु का मोड़ है। कथा को वह एक नवीन घुमाव प्रदान करती है। अतः मानस की कथावस्तु में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी चरित्र-सृष्टि कथा में खल नायिका के रूप में दृष्टि-गोचर होती है क्योंकि कैकयी की कुमति रूपी काई घोर विपत्तियों की जनक है।[५४]

कैकेयी का व्यक्तित्व सत-असत् का सम्मिश्रण है। पत्नी के रूप में उसे राजा दशरथ का सर्वाधिक प्रेम प्राप्त है। उसके कोपागार में जाने के समाचार सुनकर दशरथ जैसे प्रतापी राजा का सूख जाना[५५] इस बात का प्रतीक है कि पति पर उसका अत्यधिक प्रभाव था। स्वयं राजा दशरथ के शब्दों में उनका मन कैकेयी के मुख रूपी चन्द्रमा का चकोर था और वे उसके इशारे पर अमरों तक को मार सकते थे रंक को राजा बना सकते थे तथा राजा को निष्कासन दे सकते थे।[५६] अतः पत्नी के रूप में वह राजा की प्रिय-पात्री एवम् प्रभाव-सम्पन्न नारी ही साबित होती है।

विमाता के रूप में भी कैकेयी पहले एक स्नेहमयी वत्सल हृदया नारी ही है। मंथरा की घर फोड़नेवाली बात सुनकर उसकी जीभ खिंचवा लेने की धमकी[५७] एवम् राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय मानकर कैकेयी की अगले जन्म में भी राम से पुत्र

---

५२ मानस, बालकांड पृ० ८७।
५३ वही पृ० ८८।
५४ वही पृ० ३७।
५५ मानस अयोध्याकांड पृ० ४२४।
५६ वही पृ० ४२५।
५७ वही पृ० ४११।

एवम् सीता-सी बहू पाने की कामना करना[48] उसके स्नेहमय स्वरूप के ही द्योतक हैं। किन्तु जब मंथरा द्वारा उसके मन में सौतिया डाह को प्रबल कर दिया जाता है और उसे 'दूध की मक्खी'[49] बताया जाता है तो उसका दुर्बल नारी-हृदय जातिगत ईर्ष्या का शिकार होकर उसके सम्पूर्ण स्नेह पर पानी फेर देता है। कोपागार में कुवेष बनाकर उसका पड़ा रहना कपट-पूर्ण स्नेह बढ़ाकर राजा से वरदान प्राप्त करना राजा की विनय को बालाकी एवम् प्रपंच बताना तथा कौशल्या को फल चखाने की बात करना[50] उसकी ईर्ष्यालु प्रकृति के ही परिणाम हैं। उसकी कुटिलता कठोरता एवम् कुबुद्धि रघुवंशरूपी बाँसों के बन के लिए आग सिद्ध होती है[51] और भरत के शब्दों में वह कुल का नाश करनेवाली पापिन है। उसका परिताप एवम् पश्चाताप जहाँ नारी सुलभ है, वहीं उसके पापों की गुरुता को कुछ हल्का करनेवाला भी है। राजा जनक के आगमन के समय ग्लानि में बलते हुए उसके मन की जो स्थिति दृष्टिगोचर होती है और बन में राम से मिलते समय उसमें जो संकोच दिखाई देता है वह उसके हार्दिक पश्चाताप का द्योतक है।

मनोभावों के अन्तर्गत कैकेयी के 'त्रिया-चरित्र' एवं उसकी हृदयहीनता का ही परिचय मिलता है। उसके कपट कुवेष एवं कुचाली स्वरूप की व्यंजना वर्णनीय है। मंथरा की बातों में आकर प्रकट होनेवाला उसका आवेश उसकी दुर्बल नारी-बुद्धि का द्योतक है। मानस की चरित्र-भूमि में कैकेयी की चरित्र-सृष्टि एवं मनोभावों के अन्तर्गत उसके स्वरूप की व्यंजना उसी के अनुरूप है। संक्षेप में कुटिलता कठोरता एवं कुबुद्धि का नाम ही कैकेयी है।

कौशल्या—मानस की कथावस्तु में कौशल्या का स्थान राम की माता होने के कारण आदर्श प्रधान एवं मातृत्व की गरिमा के अनुरूप है। वात्सल्य के संयोग-पक्ष के अन्तर्गत उसका व्यक्तित्व जहाँ सामान्य नारीवत् है वहीं वियोगकाल एवं उसके उपरान्त उसका व्यक्तित्व मातृत्व की गरिमा से मंडित होकर उसके जिस आदर्श स्वरूप को व्यक्त करता है, वह सर्वथा राम-जननी के अनुरूप है। राम को गोद में लेकर हिलाने एवं पलने में झुलाकर झूला देने जैसी क्रियाओं के अन्तर्गत कौशल्या साधारण मातावत् दृष्टिगोचर होती है। माता से बिना माँगने आए राम के प्रति प्रकट होनेवाले उद्गारों से भी कौशल्या का सहज मातृत्व ही झलकता है। राम के चरण छूते ही कौशल्या द्वारा उन्हें आशीर्वाद देकर छाती से लगा लेना बार-बार उनका मुख चूमना

---

48 मानस, अयोध्याकांड पृ० ४१४। 50 वही पृ० ४१४ से ४२१।
49. वही पृ० ४१५। 51 वही पृ० ४४०।

आनन्दाश्रुओं से नेत्रों का भर आना और प्रेम के मारे स्तनों से दूध का बह निकलना,[६२] वास्तव में कौशल्या के मातृ-हृदय के वात्सल्य भाव को ही प्रकट करते हैं।

राम के मुख से कानन के गमन की बात सुनकर कौशल्या के नेत्रों का सजल हो जाना एवं तन का थर-थर काँपना[६३] माता के हृदय के उस नारी सुलभ विषाद का प्रतीक है जो प्रायः ऐसी स्थिति में उत्पन्न हो जाया करता है। किन्तु सचिव-सुत द्वारा कारण के जानने पर कौशल्या का भूमी की तरह चुप हो जाना[६४] उसकी गंभीरता को ही व्यक्त करता है। सरल हृदया कौशल्या के उस समय के उद्गारों से भी उसके चरित्र की गंभीरता एवम् हृदय की विशालता ही प्रकट होती है। कौशल्या के इस कथन के अन्तर्गत कि 'हे पुत्र यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो तो माता को पिता से बड़ा मानकर वन मत जाओ किन्तु यदि माता-पिता दोनों की आज्ञा है तो तुम्हारे लिए वन सौ अयोध्या के समान है।[६५] उसके हृदय की उस विशालता के दर्शन होते हैं जिसमें कैकेयी के प्रति जरा भी कटुवाहट नहीं है बल्कि "माता' के रूप में उसकी आज्ञा को वह राम के लिए शिरोधार्य करने योग्य समझती है।

कौशल्या द्वारा किसी को दोष न देते हुए अपने ही सुकृत फल के व्यतीत हो जाने की सोचना विलाप करते हुए राम के चरणों से लिपट जाना[६६] अपनी सुध न भूलने की याद दिलाना[६७] भरत को गले से लगाते हुए यह सोचना कि मानों रामचन्द्र ही लौट आए हैं[६८] आदि प्रसंग कौशल्या के महत मातृ-स्वरूप के ही द्योतक हैं। मिथिलेश-पत्नी के समक्ष भी राम लक्ष्मण एवम् सीता के वनवास के प्रति शुभ परिणाम की ही सोचकर केवल भरत के प्रति चिन्ता व्यक्त करना[६९] कौशल्या की महानता की चरम परिणति है। सुनयना के शब्दों में ही कौशल्या की विनय-भावना उसी के अनुकूल है। क्योंकि वह दशरथ की रानी एवम् राम की माता है।[७०]

मनोभावों के अंतर्गत भी कौशल्या की विनय-भावना एवम् उसके मातृ हृदय की वात्सल्यजन्य गरिमा ही दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि कौशल्या की भावाभिव्यक्ति में मनोवैज्ञानिक भावना-क्रम का निर्वाह पूर्णरूपेण नहीं हो पाया है, फिर भी मानस की चरित्र-भूमि में उसका व्यक्तित्व माता की गरिमा से मंडित है और उसका आदर्श स्वरूप राम जननी के उपयुक्त ही है।

---

६२ मानस अयोध्याकाण्ड पृ० ४२९।
६३ वही पृ० ४३४।
६४ वही पृ ४३३।
६५ वही पृ० ४३६।
६६ वही पृ० ४३८।
६७ वही पृ० ४३७।
६८ वही पृ ५६४।
६९ वही पृ० ६०२।
७० वही पृ० ६८४।

सुमित्रा—मानस की कथावस्तु में सुमित्रा का स्थान दशरथ की कनिष्ठा रानी एवम् लक्ष्मण की माता के रूप में उपस्थित हुआ है। सुमित्रा का व्यक्तित्व स्नेहमय एवम् सबाकी सुसम है। लक्ष्मण के विदा मांगने पहुँचने पर सुमित्रा का सब समाचार जानकर कैकयी के बुरे बात की बात सोचकर उसे "पापिनी" समझना एवम् कुअवसर जानकर धैर्य धारण करना[७१] उसके संयत स्वभाव का द्योतक है। लक्ष्मण को सहर्ष राम एवम् सीता का अनुसरण करने की आज्ञा प्रदान करते हुए सुमित्रा द्वारा स्वयं को लक्ष्मण सहित इसलिए भूरि भाग्य का पात्र समझना कि उसका पुत्र संपूर्ण धर्मों का परित्याग कर राम के चरणों मे अनुरक्त है[७२] सुमित्रा की सहृदयता एवं महानता को ही व्यक्त करता है। मानस की चरित्र भूमि में सुमित्रा का चरित्र चित्रण नाम को हुआ है और वह एक रेखानुकृति-सी जान पड़ती है। फिर भी उसकी अधिक सजग उसे रघुकुल की गरिमा एवं लक्ष्मण-माता के सर्वथा अनुरूप ही सिद्ध करती है।

मंदोदरी—मानस की कथावस्तु मे मय-तनया मन्दोदरी रावण की पत्नी के रूप में चित्रित हुई है। राक्षस-पत्नी होने पर भी वह रूप शील-गुण सम्पन्न नीति परायण नारी ही दृष्टिगोचर होती है। चन्द्रहास उठाकर सीता का वध करते रावण को वह राजनीति बता कर समझाती है।[७३] दूतियों द्वारा नगर-निवासियो की विचारधारा से अवगत होकर वह रावण को राम-विरोध-विमुख करना चाहती है एवं सीता के आगमन को राक्षसकुल-विपिन के लिए शीत-निशासम दुखदाई बताकर वह रावण को सीता को लौटा देने की सलाह देती है।[७४] यह बात उसकी समझना एवं दूरदर्शिता की परिचायक है। सीता की चिन्ता का विचार कर रावण को बार-बार सचित करना हाथ पकड़ कर अपने भवन मे लाकर उसके चरणो में मस्तक रखते हुए आँचल फैला कर क्रोध का परित्याग कर उनको बात सुनने के लिए कहना तथा पुत्र को राज्य देकर चौथेपन में नीति-अनुसार भजन करने की सलाह देना[७५] वास्तव में मन्दोदरी की नारी सुलभ व्याकुलता के साथ साथ उसकी बुद्धिमत्ता एवं नीति-निपुणता के भी परिचायक हैं।

अपने अहिवात को अचल रखने की कामना से उसका रावण के चरण पकड़ कर सजल नैनों सहित कंपित गात हो उठना[७६] जहाँ उसके आतिशय नारी-भावों का प्रतीक है वही जब से रामबाण द्वारा उसके कान का कुण्डल पृथ्वी पर गिर जाता है

---

७१ मानस अयोध्याकांड पृ ४७३ ७४। ७४ वही पृ० ८८८ ८६।
७२ वही पृ० ४७४। ७५ मानस लंकाकांड पृ० ६२२, २१।
७३ मानस, सुन्दरकांड पृ० ८६१। ७६ वही पृ० ६२४।

तभी से उसके हृदय में चिन्ता का उदित हो जाना[७७] उसकी नारी सुलभ शंकाकुलता का ही द्योतक है। पति को गाल बजाते देखकर वह विभिन्न उक्तियों द्वारा विविध सम वचनों का उपयोग करते भी नहीं चूकती। मारीच मधुप-भंजु सुपनखा खर, दूषण, विराध अपने दोनों पुत्रादि का हवाला देकर, रावण को व्यर्थ ही मान और ममता के घमण्ड में बहता बताकर मन्दोदरी का यह कहना कि 'काल किसी को लाठी लेकर नहीं मारता वह तो धर्म के बल बुद्धि तथा विचार को हरण कर लेता है और हे स्वामी ! काल जिसके निकट आता है उसे तुम्हारी ही तरह भ्रम होता है'[७८] वास्तव में मन्दोदरी की तार्किकता, बुद्धिमत्ता दूरदर्शिता एवं नीति-निपुणता के ही परिचायक हैं। पुत्र की मृत्यु पर उसका छाती पीट-पीटकर रोना और रावण का सिर अपने सामने देखकर मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ना जहाँ उसकी नारी सुलभ दुबलता के परि-चायक हैं वहीं वे उसके पुत्र-प्रेम एवं पति-प्रेम के भी द्योतक हैं।

मनोभावों के अन्तर्गत मन्दोदरी का जिनकी स्नेहशील, शंकालु एवं धर्मभीरु स्वरूप प्रकट होता है। उसका व्यक्तित्व सर्वत्र पति की हित-कामना से अनुप्राणित है। उसकी विचारधारा से उसकी सात्विक मनोवृत्ति का पता चलता है। उसकी नीति परायणता एवं बुद्धिमत्ता पुलस्त्य ऋषिकुल की पतोहू के अनुरूप है। यद्यपि उसकी समयोचित सलाह रावण के समक्ष अरण्य रोदनवत् ही साबित होती है पर उसने पत्नी के कर्तव्य का पालन आँख मींचकर अन्धानुसरण करते हुए नहीं बुद्धि का समुचित उपयोग करते हुए किया है और इस दृष्टि से उसका व्यक्तित्व निःसन्देह महान् ही सिद्ध होता है।

रामचन्द्र चन्द्रिका की उप-नायिकाएं

कौसल्याः—चन्द्रिका की कथावस्तु में कौसल्या का 'उल्लेख' यद्यपि दशरथ की ज्येष्ठा पत्नी एवं राम की माता के रूप में हुआ है परन्तु सम्पूर्ण महाकाव्य में कौसल्या का व्यक्तित्व तथा मनोभावों के अन्तर्गत उसका स्वरूप अस्पष्ट-सा ही है। राम के मुख से वनवास की बात सुन कर उसका राम के साथ ही वन जाने की बात कहना और अवधपुरी पर गाज गिरने की कामना करना[७९] जहाँ एक ओर नारी सुलभ है वहीं दूसरी ओर वह उसके व्यक्तित्व को छोटा बनानेवाला भी है। राम द्वारा अपनी ही माता को पति-परायणता का पाठ पढ़ाये जाना और यह कहना कि नारी स्वप्न में भी अपने अन्धे लूले लंगड़े पति का परित्याग नहीं करती है इसलिए तुम मनसा, वाचा कर्मणा से हमारा नेह त्याग कर विपदा में पड़े राजा की सुध लो[८०]

---

७७. मानस, लंकाकांड पृ० ६११। ७९. केशव ग्रंथावली पृ० २७४।

७८. वही पृ० ६२८, ४६। ८०. वही पृ० २७४, ७३।

वास्तव में कौशल्या के व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है। एक नारी को अपने ही पुत्र द्वारा पति-सेवा का पाठ पढ़ना पड़े इससे अधिक दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है? चाहे चन्द्रिकाकार की इच्छा राम के मुख से 'नारी-धर्म' का विवेचन करवाने की रही हो पर कौशल्या के मिस यह अवतरणा कौशल्या के नारीत्व का उसके मातृत्व एवं पत्नीत्व का अपमान ही है। सच पूछा जाए तो चन्द्रिका में कौशल्या का उल्लेख मात्र हुआ है, चरित्र-चित्रण नहीं। न तो उसके मातृ हृदय की व्यंजना ही हो पाई है और न उसके गौरव की रक्षा ही।

कैकेयी—कैकेयी की स्थिति भी चन्द्रिका की कथावस्तु में भरत की माता एवं दशरथ-पत्नी के रूप में उपस्थित की गई है। उसका उल्लेख केवल छः छन्दों[८१] में ही पाया जाता है। इन छः छन्दों के अनुसार जब भरत की माता राम को राज्य देने की बात सुनती है तो राम को वन भेजने की बात उसकी बुद्धि में उदित होती है। अपने दोनों वरों के लिए वह मन्दिर में नृप से विनती करती है। राजा इस 'सुलोचनि' को वर माँगने को कहते हैं और वह भरत को राज्य तथा राम को चौदह वर्ष का वनवास देने का वर माँग लेती है। भरत के आगमन पर वह मन्दिर में अकेली दृष्टिगोचर होती है जैसे बिना वृक्ष की बेल हो। वह प्रणाम के पश्चात् सुत को कंठ लगाती है समाचार कहती है और भरत के शब्दों में 'भरता-सुत-बिद्वेषिनी तथा 'सबके लिए दुखदाई' साबित होती है। अत यह स्पष्ट है कि चन्द्रिका की चरित्र-भूमि में न तो उसका व्यक्तित्व और न मनोभावों के अंतगत उसके स्वरूप की व्यंजना हुई है। कथा को घुमाव देने के लिए एक हल्की-सी पक्ष-रेखा से अधिक उसका अस्तित्व ही नहीं है।

सुमित्रा:—चन्द्रिका की कथावस्तु में सुमित्रा का स्थान दशरथ की कनिष्ठ रानी एवम् लक्ष्मण-माता के रूप में है किन्तु चन्द्रिका के बाईसवें प्रकाश के केवल एक छन्द को छोड़कर, जहाँ वह राम से वनवास-काल में लक्ष्मण से हुई चूक के लिए क्षमा-याचना[८२] करती दृष्टिगोचर होती है उसका कहीं उल्लेख नहीं है। इस प्रकार चन्द्रिका की चरित्र-भूमि में सुमित्रा के नामोल्लेख के अतिरिक्त उसका कोई चरित्र चित्रण नहीं हुआ है। वह चन्द्रिका की सर्वाधिक चित्रण-उपेक्षिता उपे-नायिका है।

मंदोदरी:—चन्द्रिका की कथावस्तु में मंदोदरी का स्थान रावण की पटरानी के रूप में उपस्थित हुआ है। चन्द्रिका की चरित्र भूमि में मंदोदरी का चरित्र मानस की भाँति ही एक नीति निपुणा बुद्धिमती एवम् दूरदर्शी नारी के रूप में प्रकट होता है। रावण को युक्तिपूर्वक समझाते हुए मंदोदरी यह सलाह देते दृष्टिगोचर होती है

---

८१ चन्द्रिका, प्रकाश ९।१४ एवम् १०।२ से ६ तक।

८२ वही २२।२०।

कि सीता को चुराना लंका में मृत्यु की बेल बोने के समान है। जिनकी धनुरेख भी तुमसे उलाँघी नहीं गई, भला तुम उन्हें युद्ध में कैसे जीतोगे ? यदि सीता को ही प्राप्त करना था तो शंकर का धनुष तोड़कर प्राप्त करते।[८३] यह रावण को सीता को लौटा देने की सलाह देती है। उसका यह कथन कि चाहे संधि करो या युद्ध करो किन्तु सीता को लौटा दो। हे प्रिय ! पतिव्रता की देह को देह मत समझो' उसकी बुद्धिमत्ता का ही द्योतक है। मंदोदरी में ओज का भी अभाव नहीं है। यह कथन कि 'तब सब तुम्हें समझा-समझा कर थक गए, राम का दूत भी आया पर पुत्र और भाई को खोकर भी तुममें समझ न आई। अब तुम सुख से जीवित रहो मैं राम से युद्ध करती हूँ'[८४] उसके स्वाभिमान एवम् ओजस्विता का परिचायक है। अंगद द्वारा परेशान किए जाने पर इस लंका रानी की दीन वाणी जब रावण के समक्ष प्रस्फुटित होती है तब भी वह यह कहते हुए कि सीता को वृथा दुःख देने के कारण ही आज यह बात सत्य हुई कि क्या राजा और क्या रंक जैसा करते हैं वैसा ही फल पाते हैं[८५] नीति का समर्थन ही करती है।

चन्द्रिका की चरित्र-भूमि के अन्तर्गत मंदोदरी का व्यक्तित्व यद्यपि पूर्णरूपेण स्पष्ट नहीं होने पाया है और न मनोभावों द्वारा ही उसके स्वरूप की व्यंजना हुई है, फिर भी उसकी नीति-परायणता एवम् बुद्धिमत्ता के माध्यम द्वारा उसके व्यक्तित्व का आभास अवश्य मिल जाता है। इस दृष्टि से मंदोदरी चन्द्रिका की अन्य उपनायिकाओं से कहीं अधिक भाग्यशाली सिद्ध हुई है। पर उसका नारीत्व चन्द्रिका में न तो अपने जातिगत स्वरूप की व्यंजना कर पाया है और न उसके नारी-हृदय की सुकुमार भावनाएं ही दृष्टिगोचर होती हैं। संक्षेप में वह गृहणी कम सलाहकार-सचिवा ही अधिक जान पड़ती है।

प्रियप्रवास की यशोदा —*प्रियप्रवास की कथावस्तु में यशोदा की चरित्र-सृष्टि* नन्द की रानी एवम् कृष्ण की स्नेहमयी माता के रूप में हुई है। कृष्ण के प्रति प्रदर्शित उसका वात्सल्य भाव कथावस्तु की करुणा को और भी अधिक करुण बनाने में सहायक हुआ है और इस प्रकार राधा के पश्चात्, माता के रूप में यशोदा ही 'प्रियप्रवास' की सबसे महत्वपूर्ण नारी-पात्र है। अतः कथा में उसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यशोदा का व्यक्तित्व एक स्नेहमयी माता का व्यक्तित्व है। प्रियप्रवास में व्यंजित उसके मातृ हृदय का हाहाकार जहाँ एक ओर अपने जातिगत स्वरूप को प्रदर्शित करता है, वहीं दूसरी ओर वह यशोदा के मातृ हृदय की सरसता पुष्पिता करुण भावना

---

८३ चन्द्रिका प्रकाश १६।६। ८५ वही १६।१४।

८४ वही १६।२२।

और आन्तरिक स्नेह का परिचायक है। अक्रूरागमन के साथ ही प्रवास के पूर्व मुकुन्द के निकट कमलपती इस जननी का अति असंयत अश्रु-प्रवाह से प्लावित वदन-मंडल हृदय में उठती ममभरी अति कुत्सित भावना यशोदा को महीपति कंस के परम त्रास से व्यथित बना डालती है।[८६] यशोदा का बार-बार पट हटा कर सुत के मुख-कंज को निहारना नृपाधम नीति की भयंकरता को सोचकर करुण क्रन्दन के साथ भूमि पर लोट जाना हरि के जागने की चिन्ता से सिसकियों को दबाना[८७] उसके मातृ हृदय की मनोवेदना का परिचायक है। कुल-देव के कम होने पर यशोदा की कुल देवता से की जानेवाली विनय और अनजान में किए जानेवाले अपराधों के लिए इस संकट-काल में की जानेवाली क्षमा-प्रार्थना[८८] जहाँ एक ओर यशोदा की नारी सुलभ धर्म भीरुता की प्रतीक है वहीं दूसरी ओर इस विनय मनौती एवम् क्षमा-प्रार्थना के मध्य यशोदा के मातृ-हृदय के वात्सल्य-भाव की गरिमा प्रदर्शित होती है।

विदा-वेला के समय यशोदा परम खिन्ना-दीना दृष्टिगोचर होती है।[८९] अब नित गुणवाली प्राण से भी प्यारी अनुपम थाती को नन्द को सौंपते समय[९०] यशोदा के मातृ हृदय के मनोद्गार फूट से पड़ते हैं। उसके बालकों को पथ का दुःख न हो अतः वह मधुर फल खिलाने नाना द्रव्यों को दिखाने प्यास लगने पर विमल जल मधाकर पिलाने क्षुधित होने पर व्यंजनों के खिलाने और विमथित अधरों को सूखने न देने के लिए सुतों का वदन विलोक कर ही दिन बिताने की बात नन्द से कहती है।[९१] नगर की कुवामाओं की वामता[९२] खल जनों का भय[९३] कंस की कुपित दृष्टि[९४] आदि के प्रति जागृत होनेवाली यशोदा की आशंकाएँ जहाँ नारी सुलभ हैं, वहीं वे उसके मातृ हृदय की सरसता एवम् स्नेह की भी परिचायक हैं। इन उद्गारों के अंतर्गत यशोदा के मातृ हृदय की व्याकुलता करुणा भावना संशय सजगता एवम् स्वाभाविक स्नेह के दर्शन होते हैं।

नन्द की वापसी पर यशोदा का महा खिन्नमना होकर पति के पाँवों के सन्निकट छिन्नमूला लता के समान निपतित होना एवम् सज्ञा के लौटने पर विकल होकर, रो-रोकर पति से बोलना[९४अ] यशोदा की मनोव्यथा को प्रकट करता है। पुत्र के स्मरण एवम् गुण-कथन के साथ-साथ यशोदा का उन्मादवत् विरह-विलाप

---

८६ प्रिय-प्रवास ३। २८ से ३०।
८७ वही ३। ३१ से ३१।
८८ वही ३। ३७ से ८१।
८९ वही ५। २२।
९० वही ५। ४८।
९१ वही ५। ४६ से ५२।
९२ वही ५। ५३।
९३ वही ५। ५४।
९४ वही ५। ५५।
९४अ वही ७। १०।

प्रलाप की अवस्था तक पहुँच जाता है और उसके मातृ हृदय का वात्सल्य उसे स्वयं को पापीयसी[९५] महा भाग्यहीना[९६] मानने के लिए लाचार कर देता है। पुत्र की बातें करते एवम् अश्रुधारा बहाते यशुमति का धीरे-धीरे चेतना-शून्य हो जाना[९७] तथा नन्द के मुख से पुत्र के दो दिन बाद लौटने के समाचार ज्ञात कर उसका स्वस्थ आश्वासिता-सी होना[९८] उसके निराशाग्रस्त एवम् माया-आसक्त मातृ-स्वरूप के व्यंजक हैं।

उद्धव के आगमन पर यशोदा के मातृ हृदय की सम्पूर्ण मनोवेदना मूर्तिमान् होकर प्रवाहित हो उठती है। वह एक ही सांस में अपने प्यारे पुत्र की सकुशलता के समाचार जानने के लिये प्रश्नों की झड़ी-सी लगा देती है। जब यशोदा उद्धव से पूछती है कि मेरे प्यारे सकुशल सुखी और सानन्द तो हैं कोई चिन्ता उन्हें मलिन तो नहीं बनाती है बदन पर म्लानता तो नहीं छाती है, हृदय-तल में वेदनाएँ तो नहीं होती हैं,[९९] तो ऐसा प्रतीत होता है कि यशोदा के मातृ-हृदय में प्रश्नों का ज्वार-सा उठ खड़ा हुआ हो। मीठे मेवे मृदुल नवनीत नाना पकवान कजरी के दूध[१००] के साथ ही पुत्र के सरल सकोची भीरु स्वभाव का स्मरण कर सरुचि सुत को अंक में बिठाने की चर्चा[१०१] यशोदा के मातृ हृदय के भावात्मक स्पन्दन को प्रदर्शित करती है। अपने तनय को अम्ब का लाड़िला होते जाते देखकर उसका मृतप्राय हो जाना जहाँ नारी सुलभ है, वहीं देवकी की व्यथा का ध्यान आते ही भाग के नाते एक बार मुख देखने पर सन्न की बात[१०२] वास्तव में यशोदा के मातृ हृदय की महिमा एवम् पीड़ाजनित सहानुभूति की परिचायक है क्योंकि यशोदा नहीं चाहती कि वृद्धावस्था में किसी का भी सकुट छीना जावे और कम-खस से कोई किसी का लाल ले ले।[१०३]

प्रिय-प्रवास की चरित-भूमि में यशोदा की चरित्र-सृष्टि एवम् मनोभावों के अंतर्गत उसका जो स्वरूप तथा व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है, वह करुणा की एक प्रमुख धारावत् जान पड़ता है। प्रत्येक जड़ एवम् चेतन वस्तु जिसका न्यूनाधिक रूप से भी उसके लाड़िले के साथ सम्बन्ध रहा है, उसके मातृ हृदय की वेदना को उद्दीप्त करती है। अपनी चेष्टाओं, कथनों एवम् मनोद्गारों के अंतर्गत यशोदा का पुत्र-विरह में व्यथित मातृ हृदय ही सबल दृष्टिगोचर होता है और वह परम व्यथिता, मूर्च्छिता या

---

९५ प्रिय प्रवास ७। ४८।
९६ वही ७। ४१।
९७ वही ७। ५८।
९८ वही ७। ६१।
९९ वही १०। २१।
१०० वही १०। २४।
१०१ वही १। २१।
१०२ वही १। ५४। ५५।
१०३ वही १०। ५६।

विपन्ना माता[104] अपने जीवनाधार पुत्र की प्रतीक्षा करते हुए, प्रियप्रवास की कथा भूमि में विपन्ना ही बनी रहती है। 'सूरसागर' की यशोदा से अनुप्राणित होकर भी, प्रिय-प्रवास की यशोदा, माता की दृष्टि से हिन्दी-महाकाव्यों में अपना एक अद्वितीय स्थान रखती है।

साकेत की उपनायिकाएँ

सीता—साकेत की कथावस्तु यद्यपि राम-कथा से अनुप्राणित है, किन्तु इस कथा को उर्मिला के विरह-प्रकाशन की दृष्टि से, साकेत में ही घटित करने के कारण साकेत की कथावस्तु में सीता का स्थान उपनायिका के अंतर्गत ही मानना पड़ता है। वैसे साकेत की कथावस्तु में सीता का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और अपने उदात्त गुणों के कारण वह उर्मिला से भी अधिक महत्वपूर्ण हो उठी है।

सीता सुषमा-सुख की सीमा एवम् भाव-सुरभि का सदन है।[105] उसकी वाणी में वीणा-पाणि का निवास है और वह कमला-सी कल्याणी है।[106] देवार्चन में लगी हुई कौशल्या का हाथ उत्साहपूर्वक बंटाना और दास दासी द्वारा लाई वस्तुओं को जुटाने में प्रदर्शित तत्परता उसकी कार्य-कुशलता की परिचायक है। वन-गमन का समाचार प्राप्त होने पर सीता द्वारा मन-ही-मन धर्मचारिणी एवम् वन-विहारिणी[107] होने का निश्चय उसके हृदय की दृढ़ता का प्रतीक है। वह पति के सुख-दुख की सम भागिनी है और इसीलिए गौरव लेकर वनगामी होते स्वामी से वह अपने अर्ध-भाग की मांग करती है।[108] उसकी यह विचारधारा कि 'यदि अपना आत्मिक बल हो तो जंगल में भी मंगल है'[109] उसके दृढ़ निश्चय एवम् आत्म-बल को ही प्रदर्शित करती है। पति ही पत्नी की गति है, यही सीता की महामति है।[110] अतः वनगमन के समय भी वैदेही में पुलक भाव के दर्शन तथा रोम-रोम से प्रिय अनुगमन दृष्टिगोचर होता है।[111]

संयम एवम् दृढ़ता की प्रतिमूर्ति बनी सीता, अपनी कोमलता में नारी ही है। थकी छाया देखकर राम और लक्ष्मण को ठहरते पाकर उसका यह पूछना कि क्या तुम दोनों नहीं थके, मैं ही थकी? और आगे कुछ न कहते हुए, हँसते-हँसते उसका रो पड़ना तथा यह कहना कि मुझे अपने लिए कुछ सोच नहीं, तुम्हें अनुक्षण

---

१०४ प्रियप्रवास १७।३६।
१०५. साकेत पृ० ६२।
१०६. वही पृ० ६१।
१०७ वही पृ० १०४।
१०८. वही पृ० ११६।
१०९ वही पृ० ११७।
११० वही पृ० ११८।
१११ वही पृ० १२६।

न हो इस बात का सकोच है,[११२] उसकी नारी सुलभ सुकुमारता, भावुकता एवम् मात्रा-गति में व्यवधान बनने के कारण उत्पन्न उसके हृदय-परिताप का परिचायक है। मार्ग में ग्राम-नारियों से होनेवाले सवाद के मध्य भी सीता की नारी सुलभ लज्जा परिलक्षित हो जाती है और 'गोरे देवर स्याम उन्ही के ज्येष्ठ हैं'[११३] कहते हुए सरल भाव के मध्य भी जागृत होनेवाली तरल हँसी सीता के जातिगत संस्कारों की परिचायक है।

चित्रकूट में सीता का व्यक्तित्व अपने मुक्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। कटि में लपलपट कॉस कर कछौटा मारे वह एक नई भव धारण करती है।[११४] अपने मनो राज्य में विचरण करते हुए वह उस कुटिया को ही राजभवन समझती है। चित्रकूट में वह औरों के हाथों न पल कर अपने पैरों पर आप खड़ी चलती है।[११५] उसे अपना भाग्य ठगा हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। उसका सुना हुआ भय दूर भाग जाता है। कुछ करने में हाथ लगाकर वन में ही उसका गार्हस्थ्य जागता है और वह जानकी जाया दृष्टिगोचर होती है।[११६] सीता के लिए बोध-विनिमय में साथ-ही-साथ विविध वृत्त-संचय में उत्साह एवं अवकाश समय में गान की लय के साथ कातने-बुनने की धुन रहती है।[११७] वह चित्रकूट-काल में एक मुखरा विनोदिनी एवं सरस हृदय नारी ही दिखाई पड़ती है। भरत द्वारा अयोध्या लौट चलने की बात पर एवं राम द्वारा इस प्रस्ताव का समर्थन किए जाने के पश्चात् भी सीता की भव्य दृष्टियों का कुटिल हो जाना और "स्वार्थ देखने" के मिस टाल जाना[११८] वास्तव में उसकी पति-परायणता का ही परिचायक है क्योंकि सीता का मंडन तो उसका सिन्दूर-बिन्दु है।[११९] हनुमान के समक्ष अशोक वाटिका में प्रकट होनेवाले सीता के उद्गारों से भी उसकी पति परायणता का ही परिचय मिलता है। सीता का यह कथन कि 'राम-जानकी के सम्बन्ध इसी जन्म के लिए नहीं है'[१२०] उसकी अटूट पति भक्ति एवं प्रेम के परिचायक है।

साकेत की चरित्र-भूमि में सीता की चरित्र-सृष्टि एक नवीन कलेवर के साथ उपस्थित होती है। मनोभावों के अन्तर्गत उसका जो स्वरूप लक्षित होता है उसके अन्तर्गत भी सीता एक आदर्श रमणी के अतिरिक्त हाड़-माँस की नारी भी है। 'पुरुषों की तो बस राजनीति की बातें'[१२१] जैसे वाक्य उसके नारी हृदय के सहज उद्गार से

---

११२ साकेत पृ० १४६।
११३ वही पृ० १४७।
११४ वही पृ० २२०।
११५ वही पृ० २२१।
११६ वही पृ० २२१।
११७ वही पृ० २२६।
११८ वही पृ० २३०।
११९ वही पृ० २३१।
१२० वही पृ० ४३१।
१२१ वही पृ० २२६।

जान पड़ते हैं और सीता की दाम्पत्य भावना के द्योतक हैं। साकेत में प्रथम बार सीता एक प्राणवान् पत्नी भी दृष्टिगोचर होती है और उसका संयोगी दाम्पत्य स्वरूप भी प्रकट होता है। वह जीवन के लिए अनुकरणीय होकर भी जीवन से अनुप्राणित जान पड़ती है।

कैकेयी—कैकेयी की चरित्र-सृष्टि साकेत की कथावस्तु में भी अमंगल की सूत्रधारिणी के रूप में ही उपस्थित होती है। कथा में उसका स्थान खलनायिका जैसा ही है। परन्तु साकेत में उसके मनोभावों का उतार चढ़ाव जिस नवीन रूप में उपस्थित किया गया है, वह अधिक मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक जान पड़ता है। अतः साकेत की कथावस्तु को एक नवीन दृष्टिकोण के साथ रखने में कैकेयी का स्थान कथावस्तु में महत्वपूर्ण हो उठा है।

सर्व प्रथम कैकेयी एक स्नेहशील माता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। भरत एवं राम के मध्य उसमें भेद-दृष्टि का उदय नहीं होता है। मंथरा द्वारा राम तथा कौशल्या के विरुद्ध विष-वमन करते देख कर कैकेयी का सक्रोध यह कहना कि 'हे द्विजिह्वे रस में विष मत घोल। तू घर में ही कीच उछाती है भला तू अनुदार हमारे आपसी व्यवहार को क्या जाने[122] उसके हृदय की सरसता एवं स्नेहशीलता के परिचायक हैं। किन्तु मंथरा द्वारा रस में घोला गया विष उसके नारी-हृदय पर अपना जो घातक असर दिखाने लगता है और उससे उसकी मनःस्थिति में जो परिवर्तन उपस्थित होता है वह नारी सुलभ है। 'भरत से सुत पर सन्देह' वाली बात सोच सोच कर उसमें भाव-परिवर्तन होने लगता है और कैकेयी चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय इस अन्याय को कभी भी सहन न करने का निश्चय करती हुई इस सन्देह के प्रतिकार के लिए तत्पर हो उठती है क्योंकि वह स्वयं को इतनी निर्बोध नहीं मानती कि जो पुत्र का प्रतिशोध भूल जावे।[123] अतः अधीर होकर कैकेयी देवी से दुर्गा का वेष धारण कर लेती है।[124] प्रतिशोध एवं सौतिया डाह की भावना ही उसे वरदानों के मिस 'विषदन्त' गड़ाने के लिए लाचार कर देती है।

राजा की मृत्यु का समाचार सुनकर कैकेयी की बड़ी आँखों का फटा-सा जाना एवं निर्वाक् वैधव्य-विकास पर उसका अपने आप से डरना[125] जहाँ एक ओर नारी सुलभ है वहीं दूसरी ओर वह उसके पश्चात्ताप का ही परिचायक है। भरत द्वारा तिरस्कृत एवं लाञ्छित होने पर कैकेयी का मातृ हृदय यह कह कर पुकार उठता है कि 'निःसन्देह तू भी कैकेयी का स्नेह न जान पाया। हे वत्स यह वही स्नेह है जो तुममें

---

१२२ साकेत पृ० ४६।
१२३ वही पृ० ५१।
१२४ वही पृ० ५२।
१२५ वही पृ० १७८।

व्याप्त है और जो तुझे प्राप्त राजपद को भी छोड़ने के लिए तत्पर कर रहा है।[126] इस प्रकार कैकेयी अपने मातृत्व के प्रति भरत के प्रभाव का वर्णन करती दृष्टिगोचर होती है और उसकी इस विचारधारा के अन्तर्गत उसके मातृ भाव की गरिमा का आहत अभिमान दृष्टिगोचर हो उठता है। पुत्र का तिरस्कार ही कैकेयी के भाव-परिवर्तन का कारण उपस्थित करता है और चित्रकूट में वह सिहरी गोमुखी गंगा एवं वचनों के तुषार से आवृत शिशु-लेखा सी दिखाई पड़ती है।[127] पहाड़ से पाप का राई भर अनुताप करने से रोकी जानेवाली कैकेयी की यह स्पष्ट घोषणा कि 'मन्थरा दासी क्या कर सकती थी मेरा अपना मन ही मेरा विश्वासी नहीं रहा'[128] उसके हार्दिक पश्चात्ताप को व्यक्त करती-सी जान पड़ती है। उसे त्रैलोक्य का स्वयं पर थूका जाना स्वीकार है परन्तु वह भरत का मातृ-पद खोने लिए तैयार नहीं है।[129]

राम के समक्ष प्रकट होनेवाले कैकेयी के मनोद्गार उसकी मनोव्यथा के परिचायक हैं। कैकेयी का अपने अपराधों का स्वीकार करना रघुकुल की इस अभागिन रानी के व्यक्तित्व को छोटा बनाने के बजाय कुछ ऊपर ही उठाता है और वह एक लाल की माई सौ बार धन्य हो उठती है। साकेत की चरित्र भूमि में अपने मनोद्गारों एवं मनोभावों के अन्तर्गत प्रकट होनेवाला कैकेयी का स्वरूप उसके व्यक्तित्व को एक स्नेहशीला माता पुत्र-हित-कामना से प्रतिशोध की मूर्ति बनी एक दुर्लभ हृदय नारी एवं पुत्र-स्नेह को पुनः प्राप्त करने की दृष्टि से एक परितप्त हृदया माता के रूप में उपस्थित करता है। उसकी क्रूरता निर्मलता में दर्प भावना कोमलता में एवं द्वेषवृत्ति विनम्रता में परिणित हो जाती है और उसके गद्गद बोल उसके मातृ-हृदय की महिमा से सारे कलुष को सम्पूर्ण कपट-व्यवहार को धो डालते हैं। संक्षेप में रघुकुल की इस अभागिन रानी की कठोर कहानी साकेत की चरित्र भूमि में अपने युग-युगों के कठोर स्वरूप को छोड़कर, द्रावक बन जाती है और इस द्रावकता का एकमात्र कारण उसका संवेदनशील भावुक सरल-तरल मातृ-हृदय है।

कौशल्या—साकेत की कथावस्तु में कौशल्या की चरित्र-सृष्टि राम-जननी के अनुरूप ही है। अपने उदात्त मातृ-हृदय के कारण साकेत की कथावस्तु में उसका स्थान गौण नहीं रहने पाया है। कौशल्या के व्यक्तित्व की सर्व प्रथम झलक देवार्चन में लगी हुई पवित्रता से पूर्ण मूर्तिमयी ममता-माया के रूप में दृष्टिगोचर होती है।[130]

---

१२६ साकेत पृ० १६६।
१२७ वही पृ० २४६।
१२८ वही पृ० २४७।
१२९ वही पृ० २४८।
१३० वही पृ० ८२।

लक्ष्मण के मुख से निकलनेवाली निःश्वास को भी सुवास समझना[131] एवम् राम के मुख से वनवास और भरत के राज्य करने की बात को भी हँसी मानते हुए, अपने धैर्य-परीक्षा[132] का कारण समझना उसके सरल हृदया स्वरूप को ही व्यक्त करता है। कैकेयी की नई नीति समझ कर उस पर कुछ भी डाह न करते हुए मझली बहन के राज्य लेने की बात[133] कौशल्या के सरल ईर्ष्या रहित स्वभाव की परिचायक है। राम को वनगमन की आज्ञा प्रदान करते हुए उसका मातृ-हृदय अधीर हो उठता है। फिर भी कौशल्या राम को गौरव लेकर जाने एवम् गौरव लेकर लौट आने की सलाह देती है। उसे इस विपदा का कारण अपने सुकृत्य की कमी ही जान पड़ता है।[134]

दशरथ को धैर्य बंधाते हुए, कौशल्या के धीर-गंभीर स्वरूप के दर्शन होते हैं। जो कुछ अविचिन्त्य घटित हो चुका था उसे मनुष्य-चरित्र को व्यक्त करनेवाला बता कर कौशल्या राजा को गौरव-बल से इस शोक को सहने की सलाह देती है।[135] राजा द्वारा वर माँगने को कहने पर कौशल्या का यह माँगना कि "कैकेयी चाहे जैसी हो पर मुझ जैसी सुत-वंचिता न हो"[136] उसकी महानता एवम् निष्कपटता का परिचायक है। भरत के मिलने पर भी कौशल्या उसे मातृ-कुल के निष्कलंक मयंक की तरह ग्रहण करती है और यही बताती है कि नाम चाहे भिन्न हो पर मुझे अपना राम मिल गया है।[137] कौशल्या का यह सरल सहृदय निष्कलुष मातृ-स्वरूप ही उसके व्यक्तित्व की महानता का परिचायक है। मनोभावों के अंतर्गत भी उसका यही मातृ-स्वरूप परिलक्षित होता है। वह सर्वत्र एक स्नेहमयी माता ही दृष्टिगोचर होती है।

सुमित्रा—साकेत की कथावस्तु में सुमित्रा का स्थान लक्ष्मण की माता के रूप में उपस्थित होता है। सुमित्रा सिंहनी सदृश्य लगती है।[138] उसकी वाणी में एक क्षत्राणी का ओज एवम् गरिमा निवास करती है। वह स्वत्वों की भिक्षा-याचना नहीं करना चाहती। वह न तो परत्राण प्राप्त करने के पक्ष में है और न अपना न्याय त्यागने के पक्ष में। वह वीरों की जननी है अतः उसके लिये भिक्षा मृत्यु सम है।[139] वह नहीं चाहती कि राम अन्याय सहन करें। इस दिशा में लक्ष्मण की नीरवता भी उसे अच्छी नहीं लगती किन्तु राम द्वारा वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालने पर वह राम और लक्ष्मण दोनों को धैर्यपूर्वक सबकुछ सहन करने के साथ ही सिंह सदृश्य रहने की

---

१३१ साकेत पृ० ९२।
१३२ वही पृ० ९६।
१३३ वही पृ० ९९।
१३४ वही पृ० १००।
१३५ वही पृ० १९९।
१३६ वही पृ० १९८।
१३७ वही पृ० २०४।
१३८ वही पृ० १००।
१३९ वही पृ० १०१।

शिक्षा देती है।[१३९] लक्ष्मण को भी राम का अनुसरण करने का आदेश उसके मातृ-हृदय की महानता का द्योतक है। लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार ज्ञात होने पर युद्धोन्मुख होते शत्रुघ्न को कौशल्या के स्नेह-पाश से छुड़ाते हुए, सुमित्रा का उसे भी 'समर-समर में पौरुष की गति पाने' को कहना,[१४१] वास्तव में सुमित्रा के वीर भाव का ही परिचायक है। साकेत की चरित्र भूमि में सुमित्रा का व्यक्तित्व सर्वत्र एक वीर क्षत्राणी का व्यक्तित्व है और उसी विचारधारा से प्रभावी सुषम ओज उदात्त एवम् वीररस ही झलकता है। कुल मिला कर उसका व्यक्तित्व लक्ष्मण-माता के अनुरूप ही है।

मांडवी—साकेत की कथावस्तु में मांडवी की चरित्र-सृष्टि भरत-पत्नी के रूप में हुई है। कथावस्तु में उसका स्थान एक कर्तव्यनिष्ठ पत्नी के रूप में उपस्थित होता है। वह भरत के त्याग की सम भागिनी है और उसका आचरण-व्यवहार उसे भरत-पत्नी के अनुरूप ही सिद्ध करता है। हाथों में चार चूड़ियाँ माथे पर सिन्दूरी बिन्दु, विषाद-वदन में पैठा तपस्तेज[१४२] मांडवी के कठोर साधना रत स्वरूप का परिचायक है। अपने प्रभु के लिये राज भवन से फलाहार सजाकर लाना एवम् पति के दर्शन कर लौट जाना ही उसका नित्य का कर्म है। मांडवी का धैर्य उसकी वह सहिष्णुता भरत के साथ होते संवाद से स्पष्ट हो उठती है। वह व्यथाभरी बातों में भी सार[१४३] का अनुभव करती है और उसका यह कथन कि 'हे नाथ यदि धरती फट जाती हम-तुम उसमें समा जाते तो किसी मूल में रह कर हमें कितना रस प्राप्त होता न हम किसी को आर्त देखते न यह शोक आंसू भरता स्वयं परस्पर भी न देखकर हम बस अंग-स्पर्श करते तो भी मैं उसे निज दाम्पत्य भाव का आदर्श मानती,[१४४] वहाँ उसके नारी-हृदय की पलायन-प्रवृत्ति का द्योतक है, वहीं दूसरी ओर उसका यह कहना कि 'यहाँ तुम होते दासी यहीं सुखी होती। किन्तु यहाँ मातृ भावना तिरोहित होकर रोया करती' क्योंकि सुख तो सभी भोग लेते हैं दुःख वीर ही सहते हैं,[१४५] उसकी महानता का वीरता का वह सहिष्णुता का परिस्थितिजन्य संकट को सहने की शक्ति का ही परिचायक है। स्वधर्म की नई प्रतिज्ञा द्वारा सबके साथ वह स्वयं को भी बन्ध मानती है। देवर से बात करते समय विषाद के बीच भी उसके विनोद भाव के दर्शन हो उठते हैं।[१४६] शत्रुघ्न के मुख से शूर्पणखा के समाचार विदित कर मांडवी का हँसते हुए यह कहना कि 'प्रथम ताड़का फिर यह शूर्पणखा नारी और अब किसी

---

१४० साकेत पृ० १०२।
१४१ वही पृ० ४५७।
१४२ वही पृ० ३६०।
१४३ वही पृ० ३६६।
१४४ वही पृ० ३६९।
१४५ वही पृ० ३६७।
१४६ वही पृ० ४००।

विद्युमाली की नारी आने वाली है'[१४७] उसके नारी-सुलभ विनोद का ही परिचय देता है।

मांडवी में क्षात्र-धर्म का ओज भी है। हनुमान द्वारा समस्त समाचार विदित होने पर, भरत को उसका यह कहना कि 'हे आर्यपुत्र तुम मानी नर होकर भी कातर होते हो'[१४८] वहां उसके उत्साह प्रदीप्त करनेवाले नारी भाव का परिचायक है वहीं स्वामी को निश्चिंत मन से निज कर्तव्य करने की सलाह देना और यह व्यक्त करना कि मुझे दुर्दम यम भी वश न कर सकेगा अपनों के संग मरण भी मुझे जीवन सम है'[१४९] उसकी दृढ़ता एवम् क्षत्राणी सुलभ-वीरत्व का परिचय देता है।

साकेत की चरित्र-भूमि में मांडवी का व्यक्तित्व भरत-पत्नी के अनुरूप ही अपने धीर, गंभीर स्वरूप को व्यक्त करता है। उसकी मनोवेदना उसके मनोद्गार, मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त होनेवाला उसका स्वरूप सभी उसे एक आदर्श नारी ही घोषित करते हैं। उसके इस कथन के अन्तर्गत कि "मैं इस घर में इसमें ही सतोष देखती हूं कि औरों को गुण अर्पण करके सारे दोष अपने ही सिर लिये जावें'[१५] उसका जीवन-दर्शन परिलक्षित हो उठता है एवम् मांडवी की यह उदात्त विचारधारा उसके व्यक्तित्व को जिस गरिमा से मंडित करती है, वह अपनी उपमा आप ही बन जाता है।

श्रुत कीर्ति—साकेत की कथावस्तु में श्रुतकीर्ति के चरित्र की अवतारणा शत्रुघ्न की पत्नी के रूप में हुई है। यद्यपि साकेत की कथावस्तु में उसके चरित्र की एक झलक मात्र ही दृष्टिगोचर होती है किन्तु यह झलक विद्युत कौंधवत् है जिसके क्षणिक प्रकाश में भी उसका क्षत्राणी-सुलभ स्वरूप उद्भासित हो उठता है। स्वामी को भरत का अनुसरण करने के लिये वह घर बीजी की गति में ही अपनी गति माननेवाली उसकी मति'[१५१] उसके क्षत्राणी-सुलभ स्वभाव की परिचायक है। वह शत्रुघ्न के चरणों में आज्ञानुकूल अनुगामिनी ही सिद्ध होती है। साकेत की चरित्र भूमि में श्रुत कीर्ति के चरित्र का केवल एकमात्र पहलू उसका क्षत्राणी-नारी-वेष प्रस्फुट हुआ है तथा मनोभावों के अंतर्गत भी उसके स्वरूप की व्यंजना नहीं हो पाई है। फिर भी अपनी एकांगिता में भी वह शील-गुण-सम्पन्ना है।

कामायनी की श्रद्धा—कामायनी की कथावस्तु में श्रद्धा की चरित्र-सृष्टि एक बुद्धि वादिनी के रूप में उपस्थित होती है। जीवन-निशीथ के अन्धकार में भटकते हुए

---

१४७ साकेत पृ० ४१२। १५० वही पृ० ४०७।
१४८ वही पृ० ४२०। १५१ वही पृ० ४२६।
१४९ वही पृ० ४२०।

मनु के लिये वह प्रेरणामयी बनकर आती है और उसका बुद्धिवादी स्वरूप कामायनी की कथा को एक नया मोड़, एक नवीन गति प्रदान करता है। अतः कामायनी की कथावस्तु इड़ा द्वारा भी मनुप्राणित हुई है और इसीलिये कथा में इड़ा का महत्वपूर्ण स्थान है।

कामायनी के 'रम्य फलक पर नवल चित्र-सी प्रकट होनेवाली यह सुन्दर बामा मयन महोत्सव की प्रति एवम् अम्लान नलिन की नव माला-सी दृष्टिगोचर होती है।[१२२] उसकी तर्कजाल-सी बिखरी अलकें शशि-खंड सदृश स्पष्ट भाल अनुराग विराग डालते पद्म-पलाश चषक के समान दृग त्रिगुणात्मक त्रिवली चरणों की तालभरी गति एवम् वक्षस्थल पर एकत्र संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान[१२३] उसके बुद्धिवादी स्वरूप के परिचायक हैं। वह हेमवती छाया आलोक-मयी स्मित चेतनता बन कर आती है और अपने प्रतिमा प्रसन्न मुख से स्नेह सहित मनु का स्वागत करती है।[१२४] वह निर्बाध गति की समर्थक है क्योंकि उसके मतानुसार जिसे चलने की सौंक रहती है, उसको कब कोई रोक सकता है ?[१२५] वह प्रेरणामयी बन कर अखिल ऐश्वर्यमयी परम रमणीय प्रकृति का पटल खोलने के लिये मनु को परिकर कसकर कर्मलीन होने की सलाह देती है।[१२६] वह जड़ता को चैतन्य करने के लिये उपाय के नाम पर विज्ञान का सहज साधन बताती है और इस प्रकार उसका बुद्धिवादी स्वरूप उसकी व्यक्तिगत विशिष्टता का परिचायक बन कर उसके व्यक्तित्व को एक बौद्धिक गरिमा प्रदान करता है।

इड़ा उदार है, सरल हृदया है किन्तु बुद्धि द्वारा अनुशासित है। प्रजा में क्षोभ उत्पन्न होने पर वह सकुचित जान पड़ती है। वह निरंकुशता की समर्थक नहीं है और नियामक के लिये भी नियमों का पालन आवश्यक समझती है।[१२७] उत्तेजना में अपना प्राप्य खोजनेवाले मनु को सावधान करते हुए, वह स्वयं को 'भूमाकांक्षिणी'[१२८] बताती है। मनु द्वारा 'मायाविनी' एवम् 'मूर्तिमति अभिशाप' घोषित किये जाने पर उसका अपने उपकारों को गिनाना[१२९] जहाँ एक ओर उसे 'हाँ में हाँ न मिलाने वाली' स्पष्टवादिनी के रूप में प्रकट करता है, वहीं दूसरी ओर कृतघ्नता के प्रति मुखरित होनेवाली उसकी स्वाभाविक उत्तेजना भी दृष्टिगोचर होती है। मनु द्वारा

---

१२२ कामायनी पृ० १६८।
१२३ वही पृ० १६८।
१२४ वही पृ० १६६।
१२५. वही पृ० १७०।
१२६ वही पृ० १७१।
१२७. वही पृ० १९२।
१२८ वही पृ० १९२।
१२९ वही पृ० १९६, ९७।

भुजाओं से राह रोक लिये जाने पर उसकी निस्सहाय दीन दृष्टि[१६०] उसकी नारी सुलभ दुर्बलता की परिचायक है। भीषण जन-संहार होते देख कर उसका रण रोकने की बात कहना एवम् सबको जीने देकर मनु को युद्ध से जीने के लिये आतंक प्रदर्शन से रोकना[१६१] भी उसकी उदार मनोवृत्ति का द्योतक है। अपनी बन्दिनी रानी के लिये प्रजा का उग्र हो उठना भी उसकी लोकप्रियता का परिचायक है। बुद्धिवादिनी होकर भी वह उग्र नहीं है। जनपद-कल्याणी एवम् सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी वह निरकुंशता की समर्थक नहीं है। उसका नारी-हृदय उसे सर्वत्र अमानवीय असहिष्णु एवम् निर्मम होने से रोकता है।

संघर्ष के पश्चात् इड़ा ग्लानि से भरकर बीती बातों पर विचार करने लगती है। मनु का स्नेह उसके लिये अनन्य नहीं रह पाता है।[१६२] जो उपकारी था वही अपराधी बन जाता है और इड़ा जिसे वह देने बैठती है उसी की रखवाली करने लगती है। यह उलझनवाली क्लिष्ट पहेली[१६३] उसके अतृप्त जीवन की परिचायक है। उसके नारी-हृदय में सुधा-सिन्धु लहरें ले उठता है। बाड़व ज्वलन जल को कञ्चन-सा रंग देती है, उस दरमाग्नि में मधु-स्निग्ध शीतलता की सृष्टि करने लगता है और इस प्रकार क्षमा तथा प्रतिशोध दोनों की माया नाचने लगती है।[१६४] स्नेहरिक्त जीवन इड़ा को व्यथित कर देता है और श्रद्धा के समक्ष इड़ा मलिन छवि की उस रेखा-सी दृष्टिगोचर होती है जसे राहु-ग्रस्त शशिलेखा पर विषाद की विष-रेखा हो।[१६५] श्रद्धा के शब्दों में इड़ा 'जीवन की धंधानुरक्ति' एवम् 'चल चित चपला शक्ति'[१६६] है क्योंकि वह स्थिर नहीं रहती है उसने हृदय नहीं पाया है और इसीलिये चेतन का सुखमय अपनापन खोकर उसमें आलोक का उदय नहीं हो पाता है।[१६७] इस तर्कमयी के शुचि दुलार पर विश्वास कर जब श्रद्धा अपने पुत्र मानव को सौंप देती है तो श्रद्धा का प्रबल स्नेह-भाव इड़ा को चरण-धूलि लेने के लिये श्रद्धा के चरणों में नत कर देता है।[१६८]

कामायनी की चरित्र-भूमि में एक प्रतीक पात्र की भूमिका में रहने के कारण इड़ा के नारी-स्वरूप एवम् व्यक्तित्व की व्यञ्जना पूरी तरह प्रकट नहीं होने पाई है। फिर भी बुद्धिवादिनी होते हुए भी इड़ा अपने नारी-रूप में करुण कुसमा विनम्र तथा क्षमामयी दृष्टिगोचर होती है और गैरिक वसना संध्या-सा उसका नीरव स्वरूप जिस

---

१६० कामायनी पृ० १९७।
१६१ वही पृ० २०१।
१६२ वही पृ० २०८।
१६३ वही पृ० २११।
१६४ वही पृ० २०७।
१६५ वही पृ० २१६।
१६६ वही पृ० २३७।
१६७ वही पृ० २४१।
१६८ वही पृ० २४४।

राह का राही बनता है, वह निस्संदेह नारी-कुसुम है। उसका समन्वित स्वरूप अपने आप में विलक्षण होते हुए भी व्यक्तित्वहीन नहीं है।

नूरजहाँ की उपनायिकाएं

/ अनारकली—'नूरजहाँ' की कथावस्तु में अनारकली की चरित्र-सृष्टि एक प्रासंगिक प्रेम-कथा के रूप में प्रदर्शित की गई है। मूल कथा के साथ उसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। महाकाव्यान्तर्गत आनेवाली प्रासंगिक कथा के रूप में ही नूरजहाँ में अनारकली की चरित्र-सृष्टि हुई है। अनारकली एक नर्तन-कलाकुशला नर्तकी है। वह परियों की रानी-सी सुन्दरी है। उसकी देह साँचे में ढली-सी जान पड़ती है। उसकी शिशुता-निशा समाप्त हो चुकी है तथा उसके यौवन का दिनकर उग आया है।[१६९] वह सलीम पर आसक्त है और अपनी कला-कुशलता से सलीम को आकर्षित कर, सलीम के गले का हार पहनते हुए, वह उसके गले का हार बन जाती है।[१७०] अनार-सलीम के प्रेमालाप के मध्य अकबर व्यवधान बनकर उपस्थित होता है अनारकली बन्दी-गृह में डाल दी जाती है और शाही अमनामरों में विलास करनेवाली इस रमणी का प्रेम बन्दी-गृह की दीवारों के मध्य भी उस बाँकी सूरत की झाँकी उसके मानस के छाया-पट पर अंकित करता है जिसने उसका हाथ पकड़ा है।[१७१]

। अनारकली का प्रेम निस्वार्थ भावना से अनुप्राणित है। वह संकट या प्रलोभनों के मध्य नत मस्तक नहीं होता। उसका प्रेम पुतली फिरने के पूर्व सलीम के अंतिम दर्शन का प्यासा रहता है। चिर निद्रा में सोने के पूर्व वह अपने बेचारे नयनों को प्रिय-दर्शन से तृप्त करने की आकांक्षा रखती है और इसीलिये वह अपने प्यारे-प्यारे भावों की शपथ दिलाते हुए हरे-हरे घावों तथा निज प्रण के मान की दुहाई देकर, सूखे में अटकी तरणी को जल में ढकेलने के लिये प्रिय से अंतिम दर्शन दे जाने की प्रार्थना करती है।[१७२] अकबर द्वारा 'राजमुकुट की मणि' बनाने का प्रलोभन दिये जाने और प्रणय-याचना करने पर वह उसका तिरस्कार करते हुए कहती है कि 'तू नारी के हृदय को समझ नहीं पाया है। उस पर अत्याचारी का छल-बल विजय नहीं प्राप्त कर सकता है। इस कोमल तन के भीतर हृदय-कोट का मंडप है जिसमें विश्व लुटेरों का दल कभी घुस नहीं पाता है।[१७३] इतना ही नहीं वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि 'मैं रानी नहीं बनना चाहती मुझे भिखारिन ही रहने दो। मैं अपने प्रियतम

---

१६९ नूरजहाँ पृ० २१। १७२ वही पृ ३०।
१७० वही पृ० २५। १७३ वही पृ० ३२।
१७१ वही पृ० २७।

की निशिदिन माला जपा करूँगी। उस मनमोहन के मन ही में अब मेरा घर है। यदि तुम प्राण-दंड भी देना चाहो तो मेरा सिर हाजिर है।[174] अनारकली की इस विचारधारा से उसके निस्वार्थ एवम् दृढ़ प्रेम का पता चलता है। नर्तकी होकर भी वह अपने प्रेम का सौदा संपदा से नहीं सिर देकर करना चाहती है। अकबर का राज्य वैभव भी उसके प्रेम के समक्ष तुच्छ साबित होता है।

निष्कासन के पश्चात् अनारकली प्रेमवियोगिनि होकर भटकती रहती है। अपने भाग्य पर रोते हुए भी वह किसी को अपने उस रोग देना नहीं चाहती और स्वयं के लेकर भाग्य-क्षेत्र में मोतियों के बीज बोती है।[175] उसका प्रेम अपने प्रियतम को धर्म-संकट में डालकर विष का घूँट नहीं पीना चाहता और इसीलिए वह सलीम से कहती है कि 'मेरी पूजा तुम्हारे अभिराम दर्शन पाकर पूरी हुई। अब तुम जाकर राज्य करो, बादशाह को रुष्ट मत करो। इस दासी के साथ अपने जीवन को नष्ट मत करो। मैंने तुम्हारा जो प्यार पाया केवल वही जीवन का सार है शेष सब क्षणभंगुर है, सच्चा प्यार ही अमर है।[176] इसी सच्चे प्यार पर वह प्राणोत्सर्ग कर देती है और सलीम उसकी समाधि पर, आँसू से भीगे फूल चढ़ा कर बिलखता रह जाता है।[177]

नूरजहाँ की चरित्र भूमि में अनारकली का चरित्रांकन एक प्रेममयी उत्सर्गमयी नारी के रूप में हुआ है। नर्तकी होकर भी अपने प्रेम की पवित्रता से वह कुस-मसनाओं से आगे बढ़ जाती है। उसका निस्वार्थ प्रेम उसके व्यक्तित्व का निखार है। अपने प्रिय के 'सुखमय जीवन-घट में खारा नीर' न मिलाते हुए, अनार का जीवनोत्सर्ग कर देना प्रेमियों के इतिहास में अद्वितीय न होकर भी अनुपम अवश्य है और उसका यह त्यागमय स्नेह उसे हिन्दी-महाकाव्यों की प्रेमिकाओं की प्रथम श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है एवम् उसके प्रेममय व्यक्तित्व को शीर्ष स्थान प्रदान करता है।

जमीला—नूरजहाँ की कथावस्तु में जमीला की चरित्र-सृष्टि नूरजहाँ के दुर्भाग्य के रूप में उपस्थित होती है। कथावस्तु में उसका स्थान एक खलनायिका के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जमीला को अपने रूप गुण एवम् कूट कौशल पर गर्व है। वह अपने सौन्दर्य एवम् लावण्य को किसी से कम नहीं समझती। वह अति उत्तम कुल में उत्पन्न वजीर की बेटी है तथा वह अपने जमीला नाम की सार्थकता पानी में आग लगाने में ही समझती है।[178] वह सलीम पर अनुरक्त है और मेहर को सलीम के साथ कुंजों में छिप-छिप कर मजे उड़ाते देख कर उसके हृदय की डाह व्याकुल हो उठती

---

१७४ नूरजहाँ पृ० ३१।
१७५ वही पृ ४१।
१७६ वही पृ ४१।
१७७ वही पृ० ४१।
१७८ वही पृ० ४२।

है। कमीला को इस बात का गुमान है कि उसने कितनी ही बरसातें देखी हैं, वह कच्ची लकड़ी नहीं हीर है। वह मेहर तो क्या सलीम को भी चुटकियों में उड़ा सकती है। वह स्वयं को सीधों के संग सीधी एवम् टेढ़ों के संग महा कुटिल समझती है। वह मार कर सेंध लगाती है फिर भी पकड़ी नहीं जाती।[१७८] अतः अपने चरित्र के अनुकूल 'तलवार धार के घाट पर मेहर को उतारने के लिए' वह बादशाह के कान में नमक-मिर्च लगाकर, शाहजादे एवम् मेहर के गुप्त प्रेम का हाल व्यक्त कर देती है।[१८०] मेहर का कंटक दूर कर कमीला संतुष्ट होती है और एक तीर ही में बड़ा शिकार गिरा लेने पर,[१८१] अपनी सफलता पर फूली नहीं समाती। उसका यह सतोष एवम् चातुरी जहाँ स्वाभाविक है वहीं ये उसके ईर्षालु स्वभाव के परिचायक भी हैं।

कमीला को इस बात का खेद है कि मेहर ने सलीम पर ऐसा जादू किया है कि उसके भ्रू-कमान के पंचबाण भी उस पर्वत को हिला नहीं पाते हैं और इसीलिए सलीम को रंग पर लाने के लिए वह घबराने लगती है।[१८२] सलीम के आलिंगन से अपने दिल की तपन बुझाने के लिए वह भली विधि सम्मोहन सीख कर उसे वश में लाने का निश्चय करती है।[१८३] सलीम के समक्ष मेहर की हृदयहीनता व्यक्त कर एवम् स्वयं को सलीम के लिए दिल-ओ-जान से लाख बार मरने को तत्पर बता कर जब कमीला अपने प्रेम का सिक्का जमाना चाहती है तो सलीम द्वारा तलवार से कमीला का सिर उतारने का आदेश उसके भीरु हृदय की गिड़गिड़ाहट बन जाता है और वह जीवनभर प्रेम की बात न उठाने की बात कहती दृष्टिगोचर होती है।[१८४] कमीला की कपट चातुरी असफल हो जाती है और सलीम उसकी अतृप्त वासना की पूर्ति के हेतु उसे कुतुबुद्दीन को सौंप देता है। कमीला इसमें भी अपने भाग्य का सितारा चमकते देखती है।[१८५] वह कभी न थमने वाले आँसू लाकर भी गुस्से को पी जानेवाले मेहर को पाकर गुलछर्रे उड़ाने के लिये अपना उल्लू सीधा करने के लिये उसे बुलबुल बनाना चाहती है तथा अपने अनुभव की दुहाई देकर वह युवतियों को बूढ़ों से ब्याह करने की सलाह महज इसलिये देती है कि सफेद-स्याह करने पर भी कोई पूछने वाला न हो।[१८६] यह विचारधारा कमीला की नग्न निर्लज्जता की परिचायक है।

नूरजहाँ की चरित्र-भूमि में कमीला का व्यक्तित्व एक विकार-ग्रस्ता वासना-अंध नारी का व्यक्तित्व है। उसका रूप-गर्व उसकी डाह, उसकी निर्लज्जता उसका

---

१७८ नूरजहाँ पृ० ३१।
१८० वही पृ० ३४।
१८१ वही पृ० ७०।
१८२ वही पृ० ७५।
१८३ वही पृ० ७८।
१८४ वही पृ० १०३।
१८५ वही पृ० १०६।
१८६ वही पृ० १०७।

कूट कौशल-सभी उसकी कामान्ध प्रवृत्ति के विकार के रूप में प्रकट होते हैं और हिन्दी महाकाव्यों की खलनायिकाओं में उसकी जोड़ का दूसरा नारी-पात्र खोजने पर भी प्राप्त नहीं होता। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नारी की मुखरित निर्लज्जता का ही दूसरा नाम अमीला है।

बेगम—'नूरजहाँ' की कथावस्तु में बेगम की चरित्र-सृष्टि नूरजहाँ की माता एवम् गयास की मनस्विनी पत्नी के रूप में उपस्थित होती है। उसकी प्रथम झलक बुझा हुआ-सा दिल लेकर मुर्झाई हुई-सी[187] दृष्टिगोचर होती है। पति के मुख से रंगरेलियों की बात सुनकर उसे आघात लगता है क्योंकि हाथ में कुछ भी शेष न रहने से वह आँखों में रात काटा करती है और चिन्ता सदैव उसे घेरे रहती है।[188] वह भाग्य-सितारों के बिगड़ जाने पर, पति को सपनों के बीच पानी में खोज की सलाह देते हुए, विदेश चलने को प्रेरित करती है। उसका स्वाभिमानी हृदय ऋण माँगने से कभी चाट लेना अच्छा समझता है।[189] पति द्वारा ऐश एवम् उसके आनन्दोल्लास की बात सुनकर एवम् विदेश प्रस्थान के लिये उसे आना-कानी करते पाकर वह तड़प उठती है, उसके मन का तिरस्कार जागृत हो उठता है। वह खरी सुनाना चाहती है पर ऊँचा-नीचा सोचकर उसके मर्म का भर आना एवम् बोल न फूटना[190] जहाँ एक ओर उसकी व्यथा का परिचायक है, वहीं दूसरी ओर वह उसकी बुद्धिमत्ता एवम् सहिष्णुता का भी प्रतीक है।

बेगम को इस संसार-समर प्रांगण में मनुष्य होकर हाथ-पर-हाथ धर कर, निराश हो बैठे रहना उचित नहीं जान पड़ता। वह अन्य देश में जाकर दैव के साथ भाग्य परखने[191] की सोचती है। देश छोड़ते समय उसकी आँखें झर-झर बरस पड़ती हैं, मार्ग की कठिनाइयों के कारण बेगम का मुँह उतर जाता है, प्रसव-पीड़ा का सामना करना पड़ता है और काफिले को छूटता देखकर सुन्दर कन्या को भी त्याग कर अपने मातृ-हृदय पर पत्थर रख कर आगे बढ़ जाना पड़ता है। इस प्रकार नूरजहाँ की चरित्र-भूमि में बेगम एक प्रेरणामयी बुद्धिमती कष्ट-सहिष्णु नारी साबित होती है। उसके मातृ-हृदय का वात्सल्य-भाव चित्रित न होने के कारण वह एक मनस्विनी पत्नी के रूप में ही हमारे सामने आती है और गयास के समक्ष व्यक्त किये गये उसके प्रेरक उद्बोधन उसके व्यक्तित्व को एक प्रेरणामयी नारी का व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।

सिद्धार्थ की माता—सिद्धार्थ की कथावस्तु में महारानी माया की चरित्र-सृष्टि

---

१८७. नूरजहाँ पृ० १।
१८८. वही पृ० ४।
१८९. वही पृ० २।
१९०. वही पृ० ६।
१९१ वही पृ० ७।

सिद्धार्थ की माता के रूप में उपस्थित होती है। कथा में उसका महत्व सिद्धार्थ के अलौकिक जन्म की सार्थकता को सिद्ध करने के लिये ही प्रस्तुत किया गया है।

सर्वप्रथम वह राजा के समक्ष अपना अद्भुत स्वप्न कहते हष्टिगोचर होती है। स्वप्न-कथन के समय महिषी का 'विपुल विस्मय संयुत भाव'[१५२] प्रकट होता है। सर्वमंगलिका द्वारा 'दोहद' कहने पर माया का भूतहीन दुखी रोटी की इच्छा प्रकट करना,[१५३] वहां नारी सुलभ है वहीं किसी बरठा को बुला कर कदनाई होकर रोने बिलखने सिर धुनने की कामना करना संसार-सार-सिक्तागत हंस-सा प्रतिमासित होना[१५४] मर्मस्थ पुत्र की भावी विचारधारा पर पड़नेवाले प्रभाव का पूर्वाभास-सा देता दृष्टिगोचर होता है। माया की दूसरी लालसा रङ्क, दीन मनहीन दुखी को बुलाकर उनको उसके समक्ष ही पट-अन्न देने की है ताकि उनका आशीष प्राप्त हो सके।[१५५] अनूठे पुत्र को गर्भ में धारण करने के कारण माया के मन में उद्यानगमन की अनूठी इच्छा अचानक उठती है।[१५६] वहीं वह सिद्धार्थ को जन्म देती है।

सिद्धार्थ के बाल्यकाल-वर्णन के अंतर्गत माया के मातृत्व का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, उसके अनुसार कुमार का उछलना फिर गोद में गिरना किलकना, किलकारियाँ भरना एवम् कुमार-सहज-चपल अंग जननी-दृग-कंज को सुखद लगते हैं।[१५७] कहीं वह गीत गुनगुनाते हुए भावी के चित्र खींचने में मग्न दृष्टिगोचर होती है। कभी कुमार के चिबुक चूम चुमकारती हुई, कभी स्वपट से तन की रज पोंछते हुए उसका सर्व प्रयत्नवती जननी स्वरूप परिलक्षित होता है।[१५८]

सिद्धार्थ की चरित्र भूमि में माया का व्यक्तित्व एक माता के रूप में दृष्टिगोचर होता है किन्तु उसके मातृ-हृदय की सहज व्यंजना का चित्रण में अभाव-सा है। मातृ-क्रिया के कुछ कार्य-कलापों को गिना देने मात्र से उसका व्यक्तित्व प्राणवान् एवम् सहज नहीं हो पाया है और न मनोभावों के अंतर्गत ही उसके मातृ-स्वरूप की वास्तविक झांकी प्रस्तुत की जा सकी है।

साकेत-सन्त की उपनायिकाएँ

कैकेई—साकेत-संत की कथावस्तु में कैकेई की चरित्र-सृष्टि भरत-माता के रूप में उपस्थित हुई है। अपने वरों द्वारा साकेत की सारी उथल-पुथल का कारण

---

१५२ सिद्धार्थ पृ० ८।
१५३ वही पृ० १९।
१५४ वही पृ० १६।
१५५ वही पृ० १७।
१५६ वही पृ० १९।
१५७ वही पृ० ३६।
१५८ वही पृ० ४१।

कैकेई ही है। साकेत-संत की कथा को कैकेई के माध्यम द्वारा ही गति प्राप्त हुई है। अतः कथा में उसका स्थान महत्वपूर्ण है। साकेत-संत की कथावस्तु में उसकी स्थिति उस श्यामल पृष्ठ-भूमि के समान है जिसके कारण भरत भाव ज्वलंत स्वरूप साकेत के संत के रूप में प्रकाश में आया है।

कैकेई के चरित्र की प्रथम झलक एक स्नेहमयी माता के रूप में ही मिलती है क्योंकि भरत के आगमन के समाचार ज्ञात कर कैकेई रानी आरती उतारने एवम् अर्घ्य का पानी देने आ पहुँचती है और पुत्र को हँस कर लिपटाते हुए प्रेम से बोलती है।[199] पर अपने कुचक्र के प्रकाश में आते ही वह भरत के शब्दों में 'डाकिन' हो उठती है जिसने अवध पर दुर्भाग्य मूठ मारी है।[200] वह कठोर अमावस्या की ओर राक्षसी हो उठती है।[201] जिस माता के लिए राम भरत से भी बढ़कर थे उस वात्सल्यमयी सी माता में भरत को पूर्ण कुटिलता की आकृति[202] दिखाई देती है और इस प्रकार कैकेई एक कुटिला के रूप में उपस्थित होती है। किन्तु कैकेई का भरत से यह कहना कि तेरे हित ही मैंने अपने हृदय को कठोर बनाकर राम को वन भेजा है और तेरे हित के लिए ही मैं कलङ्किनी नारी एवम् महा हत्यारी समझी गई हूँ।[203] उसकी पुत्र-हित-कामना का ही परिचय देता है और उसका यह स्वार्थी स्वरूप लोकानुकूल है क्योंकि कैकेई के ही शब्दों में 'जग में सभी अपना स्वार्थ साधते आये हैं और मैंने भी उसी पथ पर चल कर वर पाये हैं।[204]

कैकेई पुत्र को अपने प्रति असंतुष्ट जानकर पीड़ा का अनुभव करती है और उसके भाव परिवर्तित होने लगते हैं। पुत्र द्वारा 'मूर्खा नारी' की संज्ञा प्राप्त कर एवम् विषम भावना के अभाव का कारण मंथरा जैसी मंत्राणी का होना जानकर,[205] कैकेई मंथरा को फटी चादर के समान त्याग कर बेकाम खड़ी हो जाती है।[206] मंत्रागार में भरत के दृढ़ निश्चय को सुनने के पश्चात् वह मूर्छिता-सी बेहोश हो जाती है।[207] अपने कुकर्मों के परिहार को सोचकर वह सर्व प्रथम मुनिराज के यहाँ दशरथ को पुनर्जीवित करवाने के लिये पहुँचती है। अरुन्धति के चरणों पर गिरते समय उसके नैनों से बहनेवाली अश्रु-धाराएं सिसकियां एवम् स्पष्ट वाणी का मुख पर न आना,[208] उसके हार्दिक पश्चाताप को व्यक्त करता है। मुनि-आश्रम से निराश

---

१९९. साकेत-संत ३।६।
२०० वही पृ० ३।२२।
२०१ वही पृ० ३।२८।
२०२ वही पृ० ३।२९।
२०३ वही पृ० ३।३३।
२०४ वही पृ० ३।३४।
२०५ वही पृ० ३।३६।
२०६. वही पृ० ३।५४।
२०७ वही पृ० ५।४९।
२०८ वही पृ० ६।९, ११।

लौटने पर वह दशरथ के शव के साथ सती होने का प्रयत्न करती है। वह अपने व्यथामय प्राणों को रखना नहीं चाहती।[२०९] भरत द्वारा रोके जाने पर और पुत्र के मुख से यह सुनकर कि 'है आज तुमसे धन्य माता'[२१०] कैकेई सती होने का निश्चय त्याग देती है।

वन में राम से मिलने पर उसकी आँखों से बहती झर-झर अश्रुधारा अवरुद्ध कण्ठ सिसकियाँ एवम् अपनी ऊष्मा में उसका अपने आप जल जाना[२११] भी उसके हार्दिक पश्चाताप का परिणाम है। राम के मुख से एक बार माँ सुन कर धन्य होने की उसकी कामना[२१२] भी उसके हृदय-परिवर्तन की परिचायक है। राम को बुलवा कर सदुःख उसका वापिस लौट चलने का आग्रह करना एवम् न चलने पर द्वार पर धरना देने की बात कहना[२१३] उसके भाव-परिवर्तन का साक्षी है। राम को लौटाने में असफल होने पर कैकेई द्वारा पश्चिमी नाका साधने की जवाबदारी लेना[२१४] इस बात का परिचायक है कि वह किसी भी प्रकार से अपने पाप का प्रायश्चित कर स्वयं को निर्मल बनाना चाहती है। भरत द्वारा नर के जिस परिताप को बड़ा तप माना गया है और जिससे नर का पाप पुण्य बनता है[२१५] उसी पुण्य को कैकेई अपने *हार्दिक परिताप द्वारा प्राप्त करते दृष्टिगोचर होती है। उसके प्रत्येक भाव-परिवर्तन पर* परिताप की मुहर है।

साकेत-संत की चरित्र-भूमि में कैकेई का व्यक्तित्व एक स्नेहहीन माता कुकृत्य परित्यक्ता नारी एवम् पुत्रस्मरण साधिका का व्यक्तित्व है। उसने अपनी कलङ्क-कालिमा को अपने अश्रुओं से धोने का प्रयत्न किया है और उसकी भरत-भर्त्सना के पश्चात् की प्रत्येक चेष्टा मूर्च्छना सिसकियाँ एवम् पश्चिमी नाका साधने के दृढ़ निश्चय तक की चेष्टा कलङ्क का परिहार करती दृष्टिगोचर होती है। दोषी होकर भी बुरा न बने रहने में ही उसके चरित्र की महानता है।

कौसल्या—साकेत-संत की कथावस्तु में कौसल्या का चरित्रांकन 'बड़ी माता' के रूप में ही हुआ है पर कथावस्तु में उसका स्थान गौण अर्थात् अस्तित्व संकेत मात्र है। *कौसल्या के चरित्र की सृष्टि साकेत-संत में भी परम्परागत रूप में ही उपस्थित* होती है। भरत द्वारा पिता एवम् राम के बारे में पूछे जाने पर वह काम की कुटिल बातों को दुर्गम[२१६] बताती दृष्टिगोचर होती है। भरत के हार्दिक परिताप को सुनकर

---

२०९. साकेत-संत ६। ४४।
२१०. वही पृ० ६। ५०।
२११. वही पृ० ११। ४३।
२१२. वही पृ० ११। ४५।
२१३. वही पृ० ११। ४७।
२१४. वही पृ० ११। ७२।
२१५. वही पृ० ६। ५०।
२१६. वही पृ० ३। ४१।

कौशल्या कल्याणी करुणार्द्र हो उठती है।[२१७] भरत को अपनी ओर खींच कर गोद में लेकर, हृदय से लिपटाते हुए कौशल्या का यह कथन कि तुम को पाकर मैंने पुनः राम को पाया है। तुम अमल-निर्मल-शीलकोप एवम् निष्कलंक हो तुम्हारी जय हो[२१८] उसके निष्कपट उदार मातृ हृदय का द्योतक है। मंथरा के पिटने के समाचार ज्ञात कर उसके त्राण हेतु, भरत को दासी का कल्याण करने के लिये भेजना[२१९] कौशल्या के उदार स्वभाव का परिचायक है। कौशल्या के मातृ हृदय के स्नेह की एक और झलक राम का सिर सूंघते[२२] समय मिलती है। इस प्रकार साकेत-संत की चरित्र-भूमि में अपनी रेखानुकृति में भी कौशल्या के मातृ-हृदय की सरलता एवम् निष्कपट स्नेहशीलता दृष्टिगोचर हो जाती है।

सीता—साकेत-संत की कथावस्तु में सीता की चरित्र-सृष्टि नाम मात्र को उपस्थित की गई है। सीता की सर्वप्रथम झलक भरत-मिलाप के समय कुटिया की प्रभा[२२१] के रूप में दृष्टिगोचर होती है। आशीर्वाद प्राप्त कर एवम् उन्हें सानुकूल मान कर भरत की भावनाओं का भाग जाना[२२२] इस बात का परिचायक है कि सीता का व्यक्तित्व उस नारी-सुलभ कपट व्यवहार से मुक्त है जो कपट व्यवहार नारी हृदय में अहित करनेवालों के प्रति स्वाभाविक रूप से जागृत हो उठता है। यह 'सानुकूलता' सीता के निर्विकार स्वरूप की द्योतक है। वार्तालाप करते 'भाभा' को रोक कर सीता का स्वाविल जलपान की बात उठना[२२३] नारी की उस जातिगत स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिचायक है जो खिलाने-पिलाने के अपने अधिकार को त्यागना नहीं चाहती। इन दो स्वरूपों के साथ माताओं को दुखी देखकर सीता का भी दुखी होने के अतिरिक्त अन्य स्वरूप साकेत-संत में दृष्टिगोचर नहीं होता है।

उर्मिला—साकेत-संत की कथावस्तु में उर्मिला की चरित्र-सृष्टि भी नाम मात्र को हुई है। 'दृगों में जलधाराएं एवम् वक्ष तट में करुणा कातरता'[२२४] लिए उसका व्यक्तित्व एक झलक दिखाकर विलुप्त हो जाता है। सच पूछा जाये तो साकेत-संत की चरित्र भूमि में उर्मिला का चित्रण नहीं नामोल्लेख ही हुआ है।

कृष्णायन की उपनायिकाएँ

रुक्मिणी—कृष्णायन की कथावस्तु में रुक्मिणी की चरित्र-सृष्टि कृष्ण प्रेमिका

२१७. साकेत-संत पृ १। ५०।
२१८. वही पृ० १। ५०।
२१९. वही पृ० १। ५१।
२२०. वही पृ० ११। ४२।
२२१ वही पृ० ११। २७।
२२२ वही पृ० ११। २६।
२२३ वही पृ० ११। ४५।
२२४ वही पृ० १११।

एवम् पत्नी के रूप में उपस्थित हुई है। कथा में उसका स्थान, नायक के शौर्य-दर्शन तथा राजनैतिक हित-साधना की दृष्टि से भी अपना महत्व रखता है क्योंकि हलधर के मतानुसार विवाह् भंजन मधुनाथ एवम् मगधपति के मान के गंजन के साथ ही वनेशकुमारी के रंजन से महान् सुयश प्राप्त होगा।[२२४] अतः कथा में रुक्मिणी परिणय-प्रसंग नायक की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनने के कारण, कथावस्तु में रुक्मिणी के महत्व का भी प्रतिपादक है यद्यपि यह महत्व माध्यम मात्र है।

सन्देशवाहक द्विज के कथनानुसार 'रुक्मिणी भुवन-भामिनी-मणि' है और उसकी देह मुख करपद बैनी अधर और हास क्रमशः कुमुद पूर्णेन्दु, उषा-विलास अलि मधु एवम् शरद चन्द्रिका के समान है।[२२६] श्रवणजन्य अनुराग के कारण वह पूर्वानुरागिका है क्योंकि अपने पितृ भवन में नारद के मुख से श्रीकृष्ण के विमल यशगान को सुनकर प्रभु के चरणों में अपना तन-मन अर्पण कर, वह रात दिन उनका ध्यान किया करती है।[२२७] उसका हरि-वरण अथवा प्राण-त्याग का निश्चय[२२८] उसकी प्रेम-दृढ़ता का परिचायक है। विवाह-महोत्सव के प्रति उसकी विरक्ति भी उसके हरि प्रेम की प्रतीक है।[२२९] शिव-पार्वती की पूजा करते समय प्रकट होनेवाली उसकी वर-विनय एवम् सजल नयन[२३] जहाँ उसके नारी-हृदय की आकुलता को व्यक्त करते हैं वहीं 'मनोवांछित' वर की कामना उसके प्रेमी हृदय की भावना को भी व्यक्त करनेवाली है।

कृष्ण द्वारा रथ में बिठा लिए जाने के पश्चात् रुक्मिणी का मुदित होकर श्याम को देखना जहाँ उसके नारी-सुलभ हृदयानन्द का परिचायक है, वहीं उसका मुखानत एवम् भ्रकुटि-विलास[२३१] उसके बाह्यित आन्तरिक स्नेह की व्यंजना करनेवाला है। रुक्मिणी में नारी सुलभ दुर्बलता के भी दर्शन होते हैं। अपने भाई को आकुल हो आता देखकर उसका शरीर काँपने लगता है और ज्यों-ज्यों वह रथ के निकट आता है तो कभी वह प्राण-धन की ओर देखती है और कभी अपने बन्धु की ओर। उसकी आँखों से अम्बु उमड़ पड़ते हैं।[२३२] किन्तु भावी की आशंका से भयभीत उसका यह स्वरूप श्रीकृष्ण को वापस होते देखकर आवेश में परिणित हो जाता है। रुक्मिणी के अम्बु भरे नयन सरोष अंगार हो उठते हैं। वह एक हाथ से हरि-रुधिर पोंछती जाती है और एक हाथ से अपने लोचनों की जल-धार।[२३३] प्रिय-पीड़ा से जहाँ उसका क्रोध

---

२२५ कृष्णायन पृ० २४०।
२२६ वही पृ० २४७।
२२७ वही पृ० २४७।
२२८ वही पृ० २४७।
२२९ वही पृ० २४४।
२३० वही पृ० २४४।
२३१ वही पृ० २४८।
२३२ वही पृ० २४८।
२३३ वही पृ० २४६।

आकृष्ट हो उठना स्वाभाविक है, वहीं रुक्मिणी का पत्र लिखना उसकी कर्तव्य-निर्धारक बुद्धि का परिचायक है। उसके व्यक्तित्व की विविधता, जातिगत दुर्बलता एवम् व्यक्तिगत विशिष्टता की द्योतक है।

रुक्मिणी के नारी-हृदय की दुर्बलता रुक्मि-वध को तत्पर हरि के सामने एक बार पुनः प्रकट होती है। भाई का वध होते देख कर वह दौड़ कर हरि के चरण पकड़ लेती है और रुक्मिणी का विलाप उसकी गद्गद् गिरा कंठावरोध दृगजल उष्ण श्वास एवम् अंग-प्रकंप अग्रज के प्राणदान माँगते[214] दृष्टिगोचर होते हैं। भाई की प्राण रक्षा का प्रयत्न उसके भ्रातृ स्नेही हृदय का परिचायक है। द्वारका-प्रवेश पर पुरवासियों को रुक्मिणी त्रिभुवन-प्रिय मणि-सी दृष्टिगोचर होती है और वे उसे रत्न-वारिधि को मथ कर प्राप्त की हुई इन्दिरा ही समझते हैं।[215] अंत में शुभ घड़ी देखकर इस प्रणयिनी माया के साथ मायानाथ का विवाह हो जाता है।[216]

कृष्णायन की चरित्र-भूमि में रुक्मिणी का व्यक्तित्व एक भावुक सहृदय दृढ़ निश्चया एवम् उदार प्रेमिका का व्यक्तित्व है। मनोभावों के अंतर्गत भी उसका प्रेममय स्वरूप ही व्यक्त होता है। पत्नी के उत्तरदायित्व के रूप में पति के विरुद्ध उठ खड़े होनेवाले मणि-प्रवाद के समय उसका 'अपवाद भीरु' स्वरूप[217] भी दृष्टिगोचर हो जाता है एवम् मित्रविंदा को सखी तथा सहोदर भगिनी के रूप में मान कर रुक्मिणी द्वारा किया गया सम्मान भी[218] उसके उदार हृदय एवम् डाह-रहित व्यक्तित्व का परिचायक है। कुल मिला कर रुक्मिणी का व्यक्तित्व कृष्ण-पत्नी के अनुरूप ही सिद्ध होता है।

मित्रविंदा—कृष्णायन की कथावस्तु में मित्रविंदा की चरित्र-सृष्टि हरि-प्रिया के रूप में हुई है। वह पूर्वानुरागिनी है और कृष्ण के अवंतिका-प्रवास के समय से ही उन पर अनुरक्त हो जाती है।[219] स्वयंवर में इस कुँवरी द्वारा हरि को हुलस कर जयमाला पहनाना इस पर खल-मंडली का क्षुब्ध हो उठना बल द्वारा नारी को प्राप्त करने का प्रयत्न करना हरि द्वारा विन्द-अनुविन्द का मद-मर्दन करते हुए सकल रिपु-शूरों को हरा कर मित्रविंदा का वरण करना और हरि का उसे द्वारावती में लाना[219अ] इस बात के द्योतक हैं कि कृष्णायन के नायक के शौर्यपूर्ण व्यक्तित्व को व्यक्त करने के लिए इस नारी-पात्र की अवतारणा हुई है। उसकी हुलस से उसे हरि प्रेमिका समझा जा सकता है और उसका व्यक्तित्व 'हरि-पत्नी' के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है।

---

२१४ कृष्णायन पृ० २४१।
२१५ वही पृ० २२१।
२१६ वही पृ० २५४।
२१७ वही पृ० २८२।
२१८ वही पृ० २७८।
२१९ वही पृ० १७८।
२१९अ. वही पृ० २७८।

सत्यभामा — सत्यभामा की चरित्र-सृष्टि कृष्णायन की कथावस्तु में कृष्ण-पत्नी के रूप में उपस्थित हुई है। सत्राजित सनाथ एवम् कृतकृत्य होने की भावना से ही मणि-सहित अपनी इस 'गुणभामा' सुता को कृष्ण के हाथों सौंपता है एवम् सत्यभामा की कल्पवृक्ष प्राप्ति के 'हठ' के कारण ही कृष्ण एवम् सुरेश में युद्ध होता है। अतः कथावस्तु में सत्यभामा का स्थान पत्नी के अतिरिक्त नायक के शौर्य प्रवर्तन का साधन भी बना है और यह भी कथावस्तु में इस धर्म-सीमा-चर्चा का माध्यम है। *सत्राजित-सुता की दृष्टि से सत्यभामा गुणभाम है।*[२४०] हरि द्वारा वरण कर लेने के पश्चात् वह सर्वप्रथम भौमासुर-संहार को जाते पति के समक्ष साथ चलने का हठ लेकर एक हठिनी नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। हरि रण प्रसङ्ग सुनाकर उसे डराना चाहते हैं पर वह अभया एवम् अपने विशाल नयन विलोचनों से मुग्धा ही दिखाई पड़ती है।[२४१] हरि को उसके अटल हठ के कारण उसे साथ लेना पड़ता है। मार्ग में भी सत्यभामा निडर ही प्रतीत होती है एवम् युद्धकाल के समय भी प्रिया-धैर्य देखकर हरि मुस्कराते हैं।[२४२] *अतः एक हठिनी के साथ-साथ सत्यभामा अभया एवम् धैर्यशीला* भी परिलक्षित होती है। भौमासुर-बन्दीगृह से मुक्त की गई कन्याओं को अपनाने की प्रार्थना पर व्यथित होकर जब मधुराई सत्यभामा की ओर हृदय में सकुचा कर देखते हैं तो नारी-सुलभ से विशेष विकल यह नारी हरि से उनके क्लेश-निवारण की विनती करती ही दृष्टिगोचर होती है।[२४३] इस प्रकार सत्यभामा यहाँ एक ओर पति-सकुचाहट के कारण अर्थात् नारी-सुलभ ईर्ष्या से मुक्त है वहीं दूसरी ओर क्लेश-निवारणार्थ की जाने वाली उसकी विनय उसके पर-पीड़ा-कातर उदार हृदय की भी परिचायक है।

सत्यभामा की नारी-सुलभ दुर्बलता के दर्शन इन्द्रपुरी में होते हैं। ऋषि द्वारा अपना सत्कार न होते देखकर एवम् उसको अपने मातृत्व का निरादर करते पाकर, उसका हृदय रोष से भर जाता है परन्तु हरि के भय से उसका ऋषि से कुछ न कहना[२४४] उसकी नारी-सुलभ दुर्बलता का ही द्योतक है। अपनी इच्छा-सिद्धि के हेतु वह नारी-सुलभ 'हथियार' का उपयोग करने में भी प्रवीण है। सुरतरु को अपने आँगन में लगाने की इच्छा-पूर्ति के हेतु, उसका *पति के देवताओं के प्रति किये गये उपकारों का* प्रत्युपकार न मिलने की कहना और परीक्षा लेने के नाम पर सुरतरु को ले चलने की बात उठाना[२४५] उसके स्त्री-सुलभ मीठे मायावी स्वभाव का परिचायक है। इसी प्रकार सुरतरु के चुराये जाने पर उठनेवाले अशोभन व्यंग की चर्चा चलाते हुए, हरि

---

२४० कृष्णायन २८६।
२४१ वही पृ० ३९०।
२४२ वही पृ० ३९१।
२४३ वही पृ० ३९२।
२४४ वही पृ० ३९४।
२४५ वही पृ० ३९०।

जब उसके पितृ वंश के लोभ का हवाला दे उठते हैं तो सत्यभामा का क्रोधित हो उठना एवम् कलह के लिए कमर कस कर वृष्णि-कुल पर व्यंग-प्रहार करना[२४६] उसकी वाचिक दुर्बलता को व्यक्त करता है। विजित इंद्र के समक्ष शचि के गर्व को चूर करने की बात कहते हुए सत्यभामा का यह कथन कि 'मिलते समय शचि ने तुम्हें सुरपति जानकर जो यश किया था यह उसी का प्रतिकार है। मुझे सुरतरु की चाह नहीं है। स्वयं को कायर-पत्नी जानकर अब इन्द्राणी गर्व न कर सकेगी एवम् उसका ईर्ष्यानल में जलती रहेगी[२४७] इस बात का प्रतीक है कि सत्यभामा में नारी सुलभ मानापमान का अभाव नहीं है। सत्यभामा की पुरत्वकामना अपमान विदग्धा नारी द्वारा दिखाया गया 'जास' ही है। साथ ही सत्यभामा में 'गर्व' का भी अभाव नहीं है। पारजात पुष्पों द्वारा अपना केश-कलाप कर स्वयं को अन्य रानियों से अधिक धन्य समझने की भावना[२४८] उसके व्यक्तित्व में उदात्त गुणों के अभाव को ही व्यक्त करती है।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में मनोद्गारों एवम् मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त होने वाला सत्यभामा का व्यक्तित्व उसे एक सुन्दरी निर्भया उदारमना इठिनी गर्विता नारी के रूप में ही उपस्थित करता है। उसमें कुलोत्पन्न कन्या के अधिकांश गुण-दोष विद्यमान हैं।

कालिन्दी — कृष्णायन की कथावस्तु में कालिन्दी की चरित्र-सृष्टि भी कृष्ण पत्नी के रूप में उपस्थित होती है। उसकी तप-साधना भी परोक्ष रूप से नायक की शक्ति-गुण-शौर्य सम्पन्नता को व्यक्त करने के लिए ही प्रस्तुत की गई है। अतः कथावस्तु में वह भी एक माध्यम मात्र है। कालिन्दी का तपस्विनी-वेष अनुपम है। यमुना के गहन वन में तप-निमग्न वह सुकुमारी तरुणी एक अत्यन्त तरुण-पुञ्ज नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उसके मस्तक पर जटा-कलाप ऐसा प्रतीत होता है मानो रत्नेश्वर पर सुशोभित मणि हो एवम् तप भार से उसका शरीर ऐसा कृश हो उठा है मानो भानु की प्रभा विपिन में धाकार होकर तप रही हो।[२४९] अर्जुन द्वारा परिचय पूछे जाने पर उसका नत मस्तक एवम् महि-संलग्न नयन[२५०] उसके शील स्वभाव का परिचय देते हैं। पिता के मुख से हरि-गुण-चर्चा सुन कर उन्हीं के आदेश से हरि से ब्याह करने की बात कहना[२५१] उसकी पितृ भक्ति-भावना का परिचायक है। अपनी तुलसी की माला को मणि-माला के रूप में परिणित हो

२४६ कृष्णायन पृ० १४१।
२४७. वही पृ० १४३।
२४८. वही पृ० १४४।
२४९ वही पृ० १२२।
२५० वही पृ० १२३।
२५१ वही पृ० १२४।

आते देख कर हरि के निश्चित रूप से आश्रम में प्रवेश करने का विश्वास[२२२] उसकी दृढ़ आस्था को व्यक्त करता है। हरि-आगमन पर उसका लज्जा से अवमुखमयी हो जाना हृदय में कर्तव्य भाव के जागृत होने पर अंजली में प्रसून भर कर हरि की ओर एक पग बढ़ा कर ही प्रकंपित हो उठना और फूलों का बिखर जाना[२२३] उसकी प्रेम विभोर अवस्था को परिलक्षित करता है। श्याम उसका हाथ थाम लेते हैं और इस प्रकार इस सूर्य-सुता का योग तप त्याग सफल हो जाता है। लोचन लज्जायुक्त अंग स्वेदपूर्ण एवम् रोम-रोम अनुरागमय हो उठता है।[२२४] द्वारावती में सविधि कालिन्दी का विवाह हरि से हो जाता है।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में कालिन्दी का व्यक्तित्व एक प्रेम-वियोगिनी तापस बाला के रूप में उपस्थित होता है और प्रेममयी पत्नी के रूप में परिणित हो जाता है। मनोभावों के अंतर्गत भी उसका प्रेममय दृढ़ आस्थावान स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। संक्षेप में कालिन्दी प्रेम-साधिका कृष्णप्रिया है।

जाम्बवती— कृष्णायन की कथावस्तु में जाम्बवती-कन्या के परिचय-प्रसंग के अंतर्गत जाम्बवंत-कन्या की चरित्र-सृष्टि व्यक्तित्व से शून्य है। अपने प्रभु को पहिचान कर जाम्बवन्त अपनी कन्या को क्षमा मांगते हुए, दिव्य स्यमंतक मणि के साथ प्रभु को दे देता है और इस प्रकार रत्नद्वय प्राप्त कर मुदित होते हुए मधुधाम गृह तज देते हैं।[२२५] अतः व्यक्तित्व-शून्य यह 'रत्न' भी कृष्ण-पत्नी के रूप में कृष्णायन की चरित्र-भूमि में अपने मनोभाव-शून्य स्वरूप में व्यक्त हुआ है। जाम्बवती की अवतारणा भी नायक के शौर्य प्रकाशन का माध्यम मात्र है।

द्रोपदी— कृष्णायन की कथावस्तु में द्रोपदी की चरित्र-सृष्टि पांडव-पत्नी के रूप में उपस्थित हुई है किन्तु कथावस्तु में उसका स्थान पांडव-कृष्ण-मित्रता एवम् नायक के 'निज जनरक्षक' स्वरूप को व्यक्त करने का माध्यम भी बना है। अतः कथा-वस्तु में द्रोपदी का स्थान भी नायक के यश प्रकाशन का हेतु हुआ है एवम् कृष्णायन के अन्य नारी-पात्रों की तरह वह भी नायक-कीर्ति-विस्तार का एक साधन है।

द्रोपदी का प्रथम परिचय पांचाल-सुता त्रिभुवन-सुन्दरी नारी के रूप में मिलता है जिसकी मधु-सुरभि से भारत-भूमि सुरभित रहती है।[२२६] स्वयंवर स्थल में प्रवेश करते समय इसका अनुपम सौन्दर्य सब-जन नयनों को अचल

२२२ कृष्णायन पृ० १२२।
२२३ वही पृ० १२२।
२२४ वही पृ० १२१।
२२५ वही पृ० २०४।
२२६ वही पृ० २६६।

कर देता है।[२२७] कर्ण द्वारा मत्स्य-भेदन के लिए शरासन बाण ग्रहण करते समय द्रौपदी के ये वचन कि 'मैं अनार्य सुत सुत सुवन रखकार को नहीं वरूंगी'[२२८] उसके कुलोत्पन्न गर्व-भाव एवम् उच्च वंशीय पति-प्राप्ति की कामना का परिचायक है। भीम द्वारा 'भैक्षभिक्षा प्राप्ति' की बात सुनकर भवन के भीतर से ही पिता द्वारा 'वस्तु विशेष' को आपस में बांट लेने का आदेश[२२९] उसे पंच-पांडव पत्नी बना देता है। कृष्ण-पांडव की पुरानी कथा को व्यास मुनि द्वारा सुन कर नृप भी अपनी इस कन्या का विवाह पांचों पांडवों के साथ उत्साह सहित कर देते हैं[२३०] और कुन्ती भी अपनी इस क्लेश-हारिणी वधू का सम्मान करती हैं।[२३१]

द्रौपदी के व्यक्तित्व का निखरित स्वरूप उस समय उपस्थित होता है जब पांडवों द्वारा द्यूत में द्रौपदी को भी दाव पर लगा दिया जाता है और उसे सभा-गृह में लाने का प्रयत्न प्रारम्भ होता है। समाचार विदित कर एक वस्त्र धारण की हुई मुग्ध कुन्तला म्लान पांचाली का व्यथा-बाष्प-प्लावित शशि आनन[२३२] उसकी मार्मिक व्यथा का परिचायक है। दुश्शासन द्वारा केश पकड़ कर सभा-गृह की ओर घसीट कर लाई जाने वाली द्रौपदी का पद-पद पर बिलखना विषम विषाद-विमर्ष युक्त एवम् दृगों से बहती दुर्दिन जल-धार,[२३३] जहां उसकी सहज नारिगत दुर्बलता की द्योतक है, वहीं एक साड़ी में रजस्वला अवस्था में गुरुजनों के आगे जाने की उसकी लाचारी[२३४] उसकी मनोव्यथा को व्यक्त करनेवाली है। सभा के मध्य फूटनेवाले उसके उद्गार[२३५] जहां एक ओर गुरुजनों की धर्म भावना पर चोट करते हैं वहीं दूसरी ओर प्रणाम न करने की अविनय के लिए की जानेवाली उसकी क्षमा प्रार्थना एवम् प्रथम हारे हुए व्यक्ति द्वारा किसी अन्य को हारने के अधिकार को दी जानेवाली चुनौती तत्कालीन समाज के मुख पर मारा हुआ नारी का ऐसा तमाचा है जिसके समक्ष भीष्म विदुर, द्रोण जैसे धर्माभिमानियों का शास्त्र-श्रुतिज्ञान भी पानी भरता नजर आता है। इन मनोद्गारों के अंतर्गत द्रौपदी का मन:स्ताप अथवा वाक्-चातुर्य ही नहीं तत्कालीन नारी का, तत्कालीन समाज की नीति एवम् धर्म-धारणा के प्रति किया गया प्रहार दृष्टिगोचर होता है। अपने इस स्वरूप के अंतर्गत द्रौपदी का आहत नारीत्व, उसके व्यक्तित्व की प्रखरता को व्यंजित करता है।

---

२२७ कृष्णायन पृ० २११।
२२८. वही पृ० ३०१।
२२९. वही पृ० ३०७।
२३० वही पृ० ३१६।
२३१ वही पृ० ३१७।
२३२ वही पृ० ४२२।
२३३ वही पृ० ४२२।
२३४ वही पृ० ४२३।
२३५ वही पृ० ४२३, २४।

दुश्शासन द्वारा कुन्तल पकड़ते ही द्रौपदी की 'पाहि' एवम् पुकार,[२६६] उसके आहत नारी-हृदय की मनोवेदना को व्यक्त करने के साथ ही भरत-कुल तथा नत आनन' पुरुषत्व को चुनौती देती है। हरि द्वारा रक्षा हो जाने पर द्रुपद कुमारी का केश छिटकाकर यह प्रतिज्ञा करना कि 'खल की भुजा के भंजन से प्राप्त रक्त के बिना मैं अपने ये बाल नहीं बाँधूगी' उसके आहत नारी-हृदय के दृढ़ निश्चय का परिचायक है। धृतराष्ट्र द्वारा वर मांगने को कहने पर उसका पांडवों को दासत्व से मुक्त करने का वर मांगना और वर-प्राप्ति के पश्चात् पुन: कुछ मांगने को कहने पर उसका यह कहना कि मुझे मांगने का अभ्यास नहीं है, जब स्वामी दास थे तब मैंने मांग लिया। मेरे स्वामी स्वाधीन हैं वे मुझे जगत-जीत कर दे सकते हैं, अब द्रौपदी दीन नहीं है,[२६७] उसके चातुर्य-कौशल एवम् स्वाभिमान को प्रकट करता है।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में मनोभावों एवम् मनोद्गारों के अंतर्गत व्यक्त होनेवाला द्रौपदी का स्वरूप उसका व्यक्तित्व अपने आप में विलक्षण है। उसमे नारी सुलभ दुर्बलताएं भी हैं और व्यक्तिगत विशिष्टताएं भी। वह एक आदर्श वधु है आदर्श पत्नी है, आदर्श एवम् देवोपम नारी है।

यशोदा —कृष्णायन की कथावस्तु में यशोदा की चरित्र-सृष्टि कृष्ण की स्नेहमयी वात्सल्य हृदया माता के रूप में ही उपस्थित हुई है। कथावस्तु में उसका स्थान मातृ-हृदय के वात्सल्य भाव की व्यंजना करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यशोदा की सर्व प्रथम झलक एक अविदित माता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। कृष्ण को निज तनय जानकर वह फूली नहीं समाती।[२६८] अपने मातृ रूप में कहीं वह कृष्ण को वत्स लाल आदि कह कर खिलौने देती है अथवा दुलराते हुए, झुलाते हुए, कृष्ण का वदन विलोक कर पुलकपूर्ण स्वर में लोरी गाती दिखाई देती है।[२६९] यशोदा का कहीं इस नवीन खिलौने के प्रति जागृत बलराम की उत्कंठा का समाधान करना पड़ता है,[२७०] और कहीं वह व्रज-जनों को 'लबार' कहती हुई सुत को भूल कर भी अकेला न छोड़ने का निश्चय करते हुए लाल कृष्ण को छाती से लगाती है।[२७१] नन्द द्वारा लगाये कृपणता के आरोप को ग्रहण करते हुए, कृष्ण को माखन के कारण चोटी का मोटा होना न बताना चंदा लाने को मांगने पर बहलाना[२७२] लाल को दूर खेलने से जाने के लिए रोकना[२७३] माटी खाते कृष्ण को सांटी लेकर डांटना शिशु-मुख में कोटि -

---

२६६ कृष्णायन पृ० ४२६, २७।
२६७ वही पृ० ४१०।
२६८ वही पृ० २७।
२६९ वही पृ० २९।
२७० वही पृ० १०।
२७१ वही पृ० १४।
२७२ वही पृ० १७।
२७३ वही पृ० १९।

विविध-प्रकार देखकर मक्खन खाने के लिए कहना[204] चोरी की शिकायतें सुन कर उसका खीजना[205] हाऊ का भय बताकर वन जाने से रोकना[206] आदि यशोदा के मातृ-हृदय के वात्सल्य भाव को व्यक्त करते हैं।

यशोदा का मातृ-मन अक्रूर-आगमन के साथ ही कृष्ण-वियोग के प्रहार को सहन नहीं कर पाता है। उसका विलाप उसके कपोलों पर ढरकता अश्रु-जल उसका भूमि पर गिरना कन्हाई कह कर उठना दौड़ना एवम् पुनः धरती पर गिरना[207] उसके मातृ-हृदय की अपार वेदना का परिचायक है। यशोदा का विलाप जहाँ मार्मिक है, वहीं इस विलाप की पराकाष्ठा उसके अनन्य पुत्र-प्रेम की परिचायक है। उद्धव के समक्ष प्रकट यशोदा के मनोद्गार भी उसके मातृ-हृदय की महानता के ही द्योतक हैं। यशोदा का नयनों में अश्रु-कण भर कर यह पूछना कि 'मुझे कन्हाई ने और भी कुछ कहा है'[208] वास्तव में उसके स्नेह-पूरित मन की आतुरता का ही प्रतीक है। श्याम के समाचार सुन-सुन कर यशोदा का हँसना, विलपना श्याम को सुखी जानकर स्वयं सुखी होना आशीष देना देवकी के नाम संदेश भेजते हुए एक बार मोहन की मूर्ति दिखाने की प्रार्थना करना[209] जहाँ उसके मातृ भाव के द्योतक हैं वहीं श्याम के नाम संदेश भेजते हुए उसका यह कहना कि 'वह चाहे जितनी मिट्टी खाय मैं अब सांटी नहीं छुऊँगी चाहे जितने बर्तन फोड़े चाहे जितनी चोरी करे, मैं उसे ऊखल से नहीं बाँधूँगी और न धन्धे करावे को कहूँगी'[210] वास्तव में उसके मातृ-हृदय की सरलता को व्यक्त करनेवाले विचार हैं।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में यशोदा का मातृ-स्वरूप अपने मनोद्गारों एवम् मनोभावों के अंतर्गत अपने परम्परागत व्यक्तित्व को ही प्रकट करता है। 'सूरसागर' की यशोदा एवम् कृष्णायन की यशोदा में भाव-साम्य है और कृष्णायन में उसका प्राचीन कलेवर एक नवीन संस्करण के रूप में ही उपस्थित होता है। कृष्ण-जननी के रूप में यशोदा का मातृ-हृदय सर्वत्र एक रूप में ही दृष्टिगोचर होता है फिर भी प्रबन्ध काव्य की चरित्र-भूमि में जिस कौशल के साथ उसके मातृ-हृदय को व्यक्त किया गया है, वह अनुपम है। अतः कृष्णायन की यशोदा परम्परा से अनुप्राणित होकर प्राणवान है और अपने नवीन कलेवर में भी सरल हृदया महिमामयी माता है।

---

२०४ कृष्णायन पृ० ४१।
२०५ वही पृ० ४२।
२०६ वही पृ० ४८।
२०७. वही पृ० ११६।
२०८. वही पृ० २१६।
२०९. वही पृ० २२०।
२१० वही पृ० २२०।

रावण की उप-नायिकाएं

धान्यमालिनी—रावण की कथावस्तु में धान्यमालिनी की चरित्र-सृष्टि रावण-पत्नी के रूप में उपस्थित होती है। रावण की कथावस्तु के पूर्वार्ध में जहां उसकी स्थिति गौण-सी है वहीं कथा के उत्तरार्ध में 'अरिमर्दन-माता' के रूप में उसका महत्व बढ़ जाता है। धान्यमालिनी का व्यक्तित्व विभीषण-विरोधिनी के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वह राक्षस-कुल-हित-चिन्तिका है। उसकी सर्वप्रथम झलक मंदोदरी-सुत को यह आशीर्वाद देते हुए दिखाई देती है कि 'सारे सुरासुर युद्ध में सम्मिलित रूप में भी तुम्हें हानि नहीं पहुंचा सकें।'[२८१] द्वितीय झलक के अंतर्गत वह त्रिजटासुता के समक्ष अपने अनुभवों को व्यक्त करती दिखलाई पड़ती है। उसी के शब्दों में सामने खड़ी विपत्ति के कारण उसके मन में जरा भी धैर्य नहीं आने पाता है; तो भी किसी प्रकार साहस को समेट कर वह अपने मन को समझाती रहती है।[२८२] अक्षयकुमार, सुलोचना रावण आदि की चर्चा करते-करते उसका मौन रह जाना एवम् अश्रु बरसाने लगना[२८३] उसके हृदय की व्यथा को व्यक्त करता है। परिचारिका के मुख से मंदोदरी के समाचार ज्ञात कर उसका चेतना-शून्य-सा हो जाना एवम् चेतना लौटने पर अपनी विवश विधवा भगिनी पर दया रोष हंसी और रुलाई का आना[२८४] उसके सम्मिश्रित स्वभाव का परिचायक है। कटार लेकर उसका मंदोदरी भवन में जाना एवम् विभीषण की आशों पर पानी फेरते हुए उसका उसे बुरी तरह फटकारना[२८५] उसकी तेजस्विता को व्यक्त करता है। मंदोदरी को स्वयं से श्रेष्ठ समझ कर कहने में संकोच का अनुभव करते हुए भी उसका मंदोदरी को ऐसा बर्ताव करने के लिए कहना कि जिससे कुल का पानी न जाने पावे और मंदोदरी को अवसरों की रक्षक कटार सौंपते हुए सुअवसर पाकर नराधम का हृदय विदीर्ण कर देने की सलाह देना[२८६] उसकी विनय भावना तेजस्विता एवम् समयोचित बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

धान्यमालिनी देश-काल और अवसर के अनुसार आचरण करनेवाली है। मय को विभीषण के प्रति क्रोधित होते देख कर जहां एक ओर वह राक्षस-वंश में किसी अन्य को जीवित न पाकर, वंश-रक्षा के विचार से विभीषण के लिए दया-दृष्टि रखने की बात कहती है,[२८७] वहीं विभीषण को झूठी सफाई देते देख कर उसका यह कहना

२८१ रावण महाकाव्य १६। १४।
२८२ वही १४। २१।
२८३ वही १४। ३३।
२८४ वही १४। ३४। ३२।
२८५ वही १४। ३५ से ४६।
२८६ वही १४। ४४ से ४८।
२८७ वही १५। ३४।

कि 'अब क्यों दूध के धोये बड़े मानी साधु बनते हो, तुम्हारी काली करतूतों की कहानी तो जगत विदित है'[288] उसकी स्पष्टवादिता का द्योतक है। अरिमर्दन की माता के रूप में उसका विभीषण-विरोध तीव्र हो उठता है और अपने पुत्र को सारी कथा सुनाने के पश्चात् उसका उसे युद्ध के लिए तैयार करना और आरती लाकर तिलक करना[289] उसके मातृ-हृदय की दृढ़ता एवम् वीर भावना का परिचायक है।

रावण की चरित-भूमि में धान्यमालिनी का व्यक्तित्व, प्रतिशोध की ज्वाला में प्रज्ज्वलित एक नारी का व्यक्तित्व है जो अपने पति के प्रति किए गए विश्वासघात को कभी क्षमा नहीं कर पाती और उसके मनोद्गार उसे एक कटु-सत्य भाषिणी के रूप में ही उपस्थित करते हैं। संक्षेप में धान्यमालिनी का व्यक्तित्व सर्वथा रावण-पत्नी के अनुरूप है।

सुलोचना —रावण की कथावस्तु में सुलोचना की चरित्र-सृष्टि एक प्रासंगिक प्रेम-कथा के रूप में उपस्थित होती है। मातामही के घर से लौटते समय मेघनाद मृगया के लिए भटकता हुआ एक मंदिर के पास सरोवर के निकट विश्राम करने लगता है। अपने हाथ से सरोवर-सरोज लाकर पार्वती-पूजा करने की भावना से प्रेरित होकर संपूर्ण सखियाँ अपने साथ एक नागकन्या को जो अपने अंक लोचनों के कारण सुलोचना कहलाती है, सरोवर की ओर बढ़ती है।[290] दूर लगे एक सरोज को लाने के निमित्त जैसे ही सुलोचना तैरने उतरती है, वैसे ही उसकी दाहिनी भुजा एवम् बाम फड़कने लगती है और सरोवर में जरा-सी दूर जाने पर ही एक नक्र-ग्राह दिखाई देता है।[291] काल के समान नक्र को आते देखकर सुलोचना का घबराना जोर से 'हाय दई' कहकर सहमना गिरना एवम् मुख से बोल न पाना[292] उसकी नारी-सुलभ दुर्बलता को व्यक्त करता है। सखियाँ मेघनाद से सहायता-याचना करती हैं और मेघनाद नक्र को मारकर मझधार में बहती सुलोचना को कर-सेतु बनाकर बहने से रोकता है और सखियों के आग्रह पर सुलोचना को अंक में लेकर किनारे लाता है।[293] शैलजा मंदिर में सखियों के यह पूछने पर कि 'जिसने तुम्हें प्राण-दान दिया है तुमने उसके हित का क्या विचार किया है,'[294] सुलोचना मंजु बोध बता कर यह कहती है कि 'मैं इस युवक को अपना तन-मन दे चुकी हूँ इस बात की साक्षी शैलजा है।

---

२८८ रावण महाकाव्य १५।४१।
२८९ वही १६।१५ से १८।
२९० वही ६।१८।
२९१ वही ६।३६।
२९२ वही ६।४०।
२९३ वही ६।४७।
२९४ वही ६।४८।

हे माता, अब आज तुम्हारे ही हाथों है, हमारी अभिलाषा पूरी करो।[२९५] सुलोचना के इन मंजुल वचनों को सुनकर मेघनाद उसकी मांग में गौरी सिंदूर लगा देता है और अपनी मणि-मंडित अंगूठी पहनाकर उसके साथ गंधर्व विवाह कर, लंका लौट आता है।

रावण की चरित-भूमि में सुलोचना की चरित्र-सृष्टि वर्णनात्मक ही है और प्रिय-वियोग के पश्चात् उसके विरह-व्यथित हृदय की कहीं भी व्यंजना नहीं हो पाई है। पातालपुरी से लौटने पर मेघनाद ही उसके विरह में व्याकुल रहता है चांद द्वारा संदेश भेजता है और मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् सुलोचना के सती होने के उल्लेख[२९६] तथा मान्यमालिनी द्वारा भीषण ज्वाला में इस वर-वधू के जलने की चर्चा[२९७] के अतिरिक्त सुलोचना का व्यक्तित्व कहीं भी चित्रित नहीं होने पाया है। मनोभावों के अंतर्गत न तो उसके स्वरूप की ही व्यंजना हुई है और न उसके चरित्र पर ही विशेष प्रकाश पड़ता है। वह एक प्रेममयी सती नायकन्या के रूप में मेघनाद प्रिया एवम् वर-वधू परिलक्षित होती है एवम् प्रासंगिक पात्र की तरह विलुप्त हो जाती है।

कैकसी —रावण की कथावस्तु में कैकसी की चरित्र-सृष्टि रावण की तपस्विनी माता एवम् कुल-हित-कांक्षिणी के रूप में उपस्थित होती है। उसकी सर्व प्रथम झलक एक अनुरागिनी किन्तु गुरुजनों की मर्यादा रखनेवाली लज्जाशीला युवती के रूप में दृष्टिगोचर होती है। पिता के मुख से कुबेर को विश्रवा मुनि का पुत्र जानकर उसके मुख पर आनेवाली अनूप छटा, गुरुजनों की मर्यादा के कारण उसका अपनी अभिलाषा को छिपाना[२९८] उसके अनुरागी किन्तु मर्यादाशील स्वभाव का परिचायक है। वह आज्ञाकारिणी संतान है। माता के आदेशानुसार वह विश्रवा मुनि को अपना पति मानकर सुत-कामना के निमित्त जब उनके आश्रम की ओर प्रस्थान करती है तो उसका अनुपम रूप दृष्टिगोचर होता है। उसके चलते ही गुलाब गुल्लाला आदि की सुषमा का संकीर्ण होना इंदीवर, अरविन्द चम्पक आदि की प्रभा का सकुचाना दाड़िम श्रीफलादि का उसके सौंदर्य के सामने पानी भरना चंद्रमा का छुपना खंजनों का उड़ना, मीन का जल में लुप्त हो जाना[२९९] आदि इस बात के द्योतक हैं कि वह अनुपम सुन्दरी है। देवर्षि नारद के मोहक अलाप पर उसका तन-मन न्यौछावर करना जहां उसके संगीत-प्रेम का परिचायक है वहीं बीन उठाकर कैकसी का मंजु गान गायन उसके संगीत कला नैपुण्य का भी द्योतक है।[३००]

---

२९५ रावण महाकाव्य ६।४६।
२९६ वही १३।२१।
२९७. वही १४।११।
२९८. वही १।११।
२९९. वही १।१७-१८।
३०० वही १।४७, ५०।

नारद द्वारा कैकसी से समस्त बातें ज्ञात कर लेने के पश्चात् उसे सुरेश एवम् हरि जैसे वर का लोभ बताना तथा कैकसी का यह कहना कि 'हरि पिता के वैरी हैं और सुरेश पिता से युद्ध में हार चुके हैं। अतः हे मुनि मैं आपके पाँव पड़ती हूँ इस प्रसंग को त्याग दीजिए क्योंकि माता-पिता के अनुरोधभरे वचन कैसे भी टाले नहीं जा सकते'[101] जहाँ उसके कुलाभिमान मातृ-पितृ-भक्ति को व्यक्त करनेवाला है, वहीं वह उसके दृढ़ निश्चय का भी द्योतक है। मुनि को तपलीन जानकर आंतरिक प्रेरणावश कैकसी का भी तप की तैयारी के लिए अंग से आभूषणादि उतार कर फूलों-सी मृदुल देह पर वल्कल धारण करना और तापसी का वेश बनाना[102] उसकी प्रेम-नेम-दृढ़ता का परिचायक है। अपनी अभिलाषा-पूर्ति के पश्चात् उसका अपने पुत्रों को समर्थ हो जाने के बाद तप के लिए प्रेरित करना एवम् माता के उपदेशानुसार तप में मन लगाकर निज पूर्वजों के समान ललित-कलित-कीर्ति का विस्तार करने की बात पर जोर देना[103] उसकी दूरदर्शिता के साथ ही उसके कुल-हित-कांक्षी स्वरूप का भी परिचायक है। कुल मिलाकर कैकसी का व्यक्तित्व एवम् तापसी स्वरूप अपने रूप-गुण तथा निश्चय में किसी देवी या मानवी से कम नहीं है। रावण-कुम्भ की माता होकर भी वह कहीं दानवी नहीं है।

शूर्पणखा :—रावण की कथावस्तु में शूर्पणखा की चरित्र-सृष्टि रावण की एक नीतिपटु बहिन के रूप में उपस्थित होती है। कथा में वह राम-रावण-युद्ध का कारण है। अतः कथावस्तु के घटना-क्रम को वह एक नया मोड़ प्रदान करती है। राजनीति में निपुण होकर शूर्पणखा का जटिल प्रश्न में निज सम्मति देना[104] उसके नीति नैपुण्य का परिचायक है। रावण के राज्यारोहण के पश्चात् उसे गुप्त-दूत का पद प्राप्त होता है और वह राजनीति के अनेक अटूट कार्य करने लगती है।[105] मुनियों के यज्ञों पर रोक लगाने के हेतु पंचवटी में स्थापित नई राजधानी की अध्यक्षा का पद[106] भी उसे ही प्राप्त होता है। शूर्पणखा का प्रमुदित होकर कानन-विचरण करना और सुरनायक तक का उस दिशा में दृष्टि उठा कर न देख सकना[107] उसकी अपरिमित शक्ति का परिचायक है। लक्ष्मण द्वारा उसे मार डालने की धमकी देने पर भी शूर्पणखा का, जिसकी भ्रू-छाया द्वारा चौदह सहस्र राक्षस-सेना का संचालन होता था, धमकी की रंच मात्र भी चिन्ता न करना[108] उसकी निर्भयता एवम् शक्ति-मद का

---

१०१ रावण महाकाव्य २।२१।

१०२ वही २।१३।

१०३ वही ३।४२।

१०४ वही ३।१२।

१०५ वही ५।१।

१०६ वही १०।४०।

१०७ वही ११।८।

१०८ वही ११।२८।

परिचायक है। लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काट लिए जाने पर खर के समक्ष उसका रोना-बिलखना,[३ ४] जहाँ उसकी नारी सुलभ दुर्बलता का द्योतक है, वहीं अपनी कुरूपता को दर्पण में देखकर रावण के पास समस्त समाचार भेजने के पश्चात्, उसका भवन में आग लगाकर जल जाना[३१] उसकी आत्मघाती प्रवृत्ति के साथ-साथ उसके स्वाभिमान का भी परिचायक है।

रावण की चरित भूमि में सूर्पनखा का व्यक्तित्व एक नवीन रूप में परम्परा के प्रतिकूल उपस्थित किया गया है। उसकी कुरूपता का कारण विरूपता न बता कर उसे राजनैतिक रूप प्रदान किया गया है और इस प्रकार सूर्पनखा को एक कर्तव्यनिष्ठ, *नीति-पटु शासन संचालिका के रूप में उपस्थित किया गया है।*

सीता —रावण की कथावस्तु में सीता की चरित्र-सृष्टि प्रतिनायक-पत्नी के रूप में उपस्थित होती है। रावण अपनी बहिन के अपमान का बदला लेने की इच्छा से एवम् विम-अपहरण की बात से राम की अपकीर्ति फैलाने की कामना से ही राम की 'प्रियदार' का हरण करने को तत्पर होता है।[१११] अत कथा में सीता का स्थान, नायक-प्रतिनायक के मान-सम्मान का हेतु बनता है। सीता की प्रथम झलक एक नीति परायण दूरदर्शी नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है जब वह सूर्पनखा-वध को तत्पर लक्ष्मण को रूपवती अबला पर ऐसी अनीति करते देख कर रोकती है और नारी पर हाथ उठाने के शास्त्र-निषेध का हवाला देते हुए, सोये सिंह को जगाने एवम् वनवासियों पर इस क्रिया से आपत्ति बुलाने का निर्देश करती है।[११२] सीता की द्वितीय झलक रावण-बन्दिनी के रूप में हनुमान-आगमन पर मिलती है। हनुमान के मुख से पति की कुशल-क्षेम जानकर जानकी के मुखचन्द्र का विकसित होना एवम् उस पर चाँदनी आनन्द-प्रभा का बढ़ना[११२अ] उसके पति प्रेम का द्योतक है। सीता का प्रभु को विलम्ब न करने का निवेदन और एक माह के समय में लङ्का न आने पर प्राण-त्याग का निश्चय[११३] उसके आकुल हृदय का परिचायक है। *सीता का अन्तिम उल्लेख रावण-*पराजय के पश्चात् सजी शिविका में लक्ष्मण के साथ भेजते समय हुआ है और उसके पश्चात् राम-लक्ष्मण कपि-कटक सहित सीता यान में हर्षित बैठी हुई, अवध-प्रयाण करती दृष्टिगोचर होती है।[११४] इस प्रकार रावण की चरित-भूमि में सीता का चरित्र-चित्रण नाम मात्र को हुआ है। मनोभावों के अन्तर्गत न तो उसका स्वरूप और न उसका व्यक्तित्व ही स्पष्ट हो पाया है।

---

१०९ रावण महाकाव्य ११।१७।

११० वही पृ० ११।११।

१११ वही पृ० १२।६।

११२ वही पृ० ११।१२, ११।

११२अ वही पृ १२।२६।

११३ वही पृ० १२।२७।

११४ वही पृ० १३।१२।

अन्य नारी-पात्रों का व्यक्तित्व-विश्लेषण

रासो के अन्य स्त्री-चरित्र

पृथ्वीराज रासो में युद्धों और शौर्य प्रदर्शन के प्रसंगों के साथ ही विवाह समयों का भी अभाव नहीं है। अतः स्त्री चरित्रों की भी कमी नहीं है। परन्तु चित्रण की दृष्टि से ये पात्र गौण से साबित होते हैं। उल्लेखनीय पात्रों में इच्छावती[1] इंछावती[2] पुंडीरनी[3] पृथाकुमारी[4] आदि के नाम लिए जा सकते हैं। प्रथम तीन पात्रों की सृष्टि तो कथा में पृथ्वीराज के शौर्य प्रदर्शन या विलास-वर्णन की दृष्टि से हुई है और पृथाकुमारी जो पृथ्वीराज की बहिन थी का विवाह-वर्णन पृथ्वीराज के वैभव प्रदर्शनार्थ तथा चित्तौर के समरसिंह के साथ उसके सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए ही किया गया है। कुछ पात्रों की सृष्टि कौतुहल अथवा जिज्ञासा-शांति के लिए ही कर ली गई है जैसे होली के समय गासी-गमौज के कारणों पर प्रकाश डालने के लिए चौहान-वशी हुआ राक्षस की बहिन ढुंढिका[5] की सृष्टि। अतः इन पात्रों में चरित्र-चित्रण का अभाव-सा है। रासो में इन पात्रों की संख्या-वृद्धि का हेतु या तो पृथ्वीराज का शौर्य-प्रदर्शन अथवा कवि का शृंगार वर्णन है।

पद्मावती के अन्य स्त्री-चरित्र

पद्मावत के अन्य उल्लेखनीय नारी-पात्रों में रत्नसेन तथा बादल की माता एवम् देवपाल तथा बादशाह की दूती हैं। कथानक में प्रथम दो का चित्रण जहाँ सामान्य माताओं के रूप में उपस्थित होता है, वहीं अन्तिम दो का चित्रण भी दूतियों के परम्परागत मसलों को ध्यान में रख कर ही किया गया है। संक्षेप में उनका चरित्र-निरूपण इस प्रकार है—

रत्नसेन की माता —इसका चरित्र सामान्य माता के रूप में ही व्यक्त हुआ है। कथानक में उसका स्थान प्रभाव शून्य है। उसके मातृत्व में धात्री सुलभ मोह का अभाव है। बिना मांगने वाए रत्नसेन से उसका यह पूछना कि 'तुम सदैव भोग-रत रहे हो अतः तुम से योग कैसे साधा जावेगा बिना छाँह के कैसे धूप सहन करोगे कैसे गुदड़ी ओढ़ोगे कैसे पैदल चलोगे कैसे रूखा मोटा कुटा अन्न खाओगे ?[6] जहाँ उसके मातृ-हृदय के वात्सल्यजन्य स्वरूप का परिचायक है, वहीं उसमें उस

---

१ पृथ्वीराज रासो, समय ११।
२ वही समय १६।
३ वही समय १६।
४ वही समय २१।
५ वही समय २२।
६ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४४।

प्रेरक उद्बोधन का अभाव है जो प्रायः क्षत्रीय माताएं ऐसे अवसरों पर व्यक्त किया करती हैं। वह पुत्र को प्रोत्साहित नहीं हतोत्साह करती ही दृष्टिगोचर होती है। उसमें साधारण माताओं की सी दुर्बलता है। मनोभावों के अन्तर्गत व्यक्त होने वाली मातृ-हृदय की वेदना का भी चित्रण में अभाव है। उसका व्यक्तित्व एक सामान्य माता से अधिक कुछ न होकर व्यक्तिगत विशेषताशून्य है।

बादल की माता—यह भी सामान्य माता के रूप में ही व्यक्त हुई है। कथा-वस्तु में उसका स्थान नाम मात्र को ही है। बादल को बालक समझ कर वह उसके समक्ष युद्ध की भयकरता का जो चित्र खींचती है[७] वह उसकी नारी-सुलभ दुर्बलता का ही द्योतक है, उसके क्षत्राणी-सुलभ ओज का नहीं। रण में जाते हुए पुत्र को रोकने का उसका प्रयत्न न तो गोरा जैसे वीर की पत्नी के लिए शोभनीय ही है और न तत्कालीन क्षत्रीय नारी के अनुरूप ही। संक्षेप में उसका व्यक्तित्व एक पुत्र-वत्सला माता का व्यक्तित्व है।

कुमुदिनी—कुमुदिनी का चित्रण भी जो कि देवपाल की दूती के रूप में उपस्थित होती है, सामान्य दूतियों के लक्षणानुसार ही हुआ है। कथानक में देवपाल दूती की अवतरणा पद्मावती की पति-परायणता को व्यक्त करने के लिए ही हुई है। अतः कथानक में उसका स्थान नायिका के शील-गुण की व्यंजना के 'हेतु' की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। स्वयं को पद्मावती के नैहर की बताकर एवम् सिंहल-द्वीप में उसे बाल्यावस्था में गोद मे बिठा सीप से दूध पिलाने की बात कह कर,[८] वह जिस आडंबर जाल की रचना करती है और रसोई, रस फूल आदि की चर्चा लेकर पद्मावती के समुद्र की हिलोर के समान यौवन को देख-देखकर हृदय मैं ठनकी बात बनाते[९] वह जिस नाटकीयता द्वारा अपना कार्य सिद्ध करना चाहती है वह सामान्य दूतियों के अनुरूप ही है। उसका आडम्बर उसकी धूर्तता उसका वाक्चातुर्य एवम् प्रगल्भता सभी दूतीवत् हैं। यद्यपि वह एक असफल दूती सिद्ध होती है, फिर भी उसका व्यक्तित्व अपने आप में एक खासा है।

बादशाह की दूती—अलाउद्दीन की रंगशाला की यह पातुरी[१०] जो जोगिनी वेष में बादशाह की दूती बनकर पद्मावती को फुसला-बहकाकर निकाल लाने के लिए जाती है सामान्य दूतीवत् ही है। अपने आडम्बर-जाल को फैलाते हुए रत्नसेन की दुःख-दशावस्था की चर्चा कर वह योगिनी होकर साथ चलने के लिए तत्पर

---

७. जायसी ग्रन्थावली पृ० २८२।　　९. वही पृ० २८२,७३।
८. वही पृ० २६८।　　१०. वही पृ० २८४।

कर सकी है,[11] किन्तु पद्मावती की सखियों के कारण उसके कूट-कौशल पर पानी फिर जाता है। उसका व्यक्तित्व एक सफल धूर्ता का व्यक्तित्व है और अपनी धूर्तता में वह कुमुदिनी से कहीं अधिक सफल हुई है।

मानस के अन्य नारी पात्र

मानस की कथा-भूमि में अन्य नारी-पात्रों की भी विपुलता है। शतरूपा एवं विश्वमोहिनी, सरस्वती, अत्रि-पत्नी अनुसूया अहिल्या शबरी त्रिजटा लंकिनी आदि की चरित्र सृष्टि कथावस्तु में प्रासंगिक रूप से ही उपस्थित हुई है। शतरूपा का उल्लेख रामावतार के एक कारण रूप में उपस्थित हुआ है। कामदेव के भस्म हो जाने पर शंकर से पति प्राप्ति का वरदान प्राप्त करने के निमित्त रति-विनय विलाप की चर्चा हुई है। नारद-मोह प्रसंग में विश्वमोहिनी का नाम आता है। राम-राज्याभिषेक में देवताओं के अनुरोध पर अवरोध डालने की दृष्टि से एवं मंथरा मति भ्रम उत्पन्न करने के लिए सरस्वती की चर्चा है। स्त्री-धर्म उपदेशार्थ अनुसूया का उल्लेख पाया जाता है। राम के भक्तवत्सल स्वरूप की झाँकी व्यक्त करने के हेतु अहिल्या एवं शबरी का नाम आता है। लंकिनी का नाम राक्षस-कुल के नाश की सूचना के निमित्त ही उपस्थित होता है और त्रिजटा 'राम चरित रति निपुन बिबेका' के रूप में उपस्थित होकर, अपने स्वप्न द्वारा राक्षसियों के मन में सीता के प्रति सद्‌भावना जागृत करती है। अतः उनका चरित्र-चित्रण नाम मात्र को ही हो पाया है। शेष उल्लेखनीय नारी-पात्र क्रमशः निम्नलिखित हैं —

मैना — मानस की कथावस्तु में प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत मैना की चरित्र सृष्टि, उमा-माता के रूप में उपस्थित होती है। मैना एक सहृदया जननी है। नारद के मुख से विचित्र वर की बात सुन कर उसका पति को यह कहना कि 'यदि घर, वर और कुल उत्तम हो तो सुता का विवाह करो अन्यथा कन्या कुँवारी ही रहे'[12] जहाँ उसके सुता प्रेम का परिचायक है, वहीं पार्वती को तप के लिए कहे जाने पर उसका आँखों में आँसू भर कर पुत्री को गोद में बिठाना उसे बार-बार गले लगाना एवं गद्‌गद् कंठ के कारण कुछ कह न पाना,[13] उसके स्नेहाधिक्य के साथ-ही-साथ उसकी नारी सुलभ दुर्बलता का भी द्योतक है जो सन्तान-प्रेम के कारण प्रायः मातृ-मन में जागृत हो उठती है। शिव के 'विकट वेष' को देख कर मैना का दुःखित होना, पार्वती को बुला कर गोद में बिठाते हुए अश्रु बहाते विधाता को 'बाउर बर' के लिए दोष देना और नारद के उपदेश के लिए उन्हें कोसना,[14] भी उसकी स्वाभाविक कमजोरी के साथ मातृ प्रेम का व्यंजक है। संक्षेप में मैना का व्यक्तित्व एक सुता-हितकांक्षिणी, सरल हृदया,

---

११ जायसी ग्रंथावली पृ० २७७-७८।
१२. मानस, बालकांड पृ० ८८।
१३ वही पृ० ८९।
१४ वही पृ० ११६।

स्नेहमयी माता का व्यक्तित्व है जिसमें मातृ-सुलभ विशेषताएं एवं नारी-सुलभ दुर्बलताएं विद्यमान हैं।

सुनयना—मानस की कथावस्तु में सुनयना की चरित्र-सृष्टि जनक की विदुषी पत्नी एवं सीता-माता के रूप में उपस्थित हुई है। राम को धनुष तोड़ने उठते देखकर सखि के समक्ष व्यक्त उसकी विकलता एवं आशंका[१५] जहाँ उसके नारी-हृदय की स्वाभाविक संशयाकुलता को व्यक्त करती है, वहीं परशुराम के आगमन पर विधाता द्वारा बनी बनाई बात बिगाड़ देने के लिए उसका पछताना[१६] उसके मातृ-हृदय की नारी-सुलभ भावना का द्योतक है। राम जैसा योग्य जामाता पाकर उसका आनन्दित होना और पुत्री की विदाई के समय अन्य रानियों सहित उसका बार-बार पुत्री से भेंटना जहाँ नारी-सुलभ है वहीं वह उसके पुत्री प्रेम का भी परिचायक है। वन में कौशल्या एवं सुनयना के मध्य होनेवाला वार्तालाप[१७] जहाँ सुनयना के विनम्र स्वभाव का परिचायक है वहीं उसके विचार उसे एक विदुषी नारी के रूप में व्यक्त करते हैं। कुल मिलाकर सुनयना का व्यक्तित्व जनक-पत्नी एवं सीता-माता के अनुरूप ही है।

मंथरा—मानस की कथावस्तु में मंथरा की चरित्र-सृष्टि एक मंदमती अजस पिटारी पर फोड़ चेरी के रूप में उपस्थित होती है। उसकी कपट कुचाल कैकेयी की कुबुद्धि को जागृत करने में सहायक सिद्ध हुई है। अतः वह कथावस्तु के मोड़ का माध्यम है। कैकेयी की यह मंदमती चेरी *गिरा द्वारा मति फेर देने के कारण* अपजस की पिटारी बन कर, अपनी खोटी बुद्धि एवम् नीच जाति के स्वभावानुसार रात-ही-रात में अकाज करने की भावना से वज्रपात करते हुए 'नारी चरित्र, का प्रसार करती दृष्टिगोचर होती है।[१८] अपने प्रथम प्रयास में असफल होने पर उसे जहाँ 'घर-फोरी' की उपाधि से विभूषित होकर 'काने खोरे कुबरे' की कुटिलता एवम् कुचालीपन का स्त्री तथा दासी से संयुक्त करने के नीम चढ़ने जैसा प्रमाण-पत्र प्राप्त होता है[१९] वहीं 'कोउ नृप होउ हमहिं का हानि' का माया-जाल बिछा कर लकीर खींचते हुए विश्वासमय स्वर में रानी का दूध की मक्खी होना बताकर कद्रू तथा वनिता के उदाहरण द्वारा अपने कूट कौशल में सफलता प्राप्त कर वह कैकेयी की चाप पूतरि हो उठती है। इस प्रकार कैकेयी की कुबुद्धि रूपी भूमि में विपत्ति के बीज को विकसित करनेवाली मंथरा वर्षा ऋतुवत् सिद्ध होती है। उसका व्यक्तित्व 'शिव माया' के छल-छिद्र का आधार है और उसकी कपट कुचाल उसे एक मायावी ललना के रूप

१५ मानस बालकांड पृ० २८२।
१६ वही पृ० २९६।
१७ मानस, अयोध्याकांड पृ० ६८१ से ६८४।
१८ वही पृ० ४१२।
१९ वही पृ० ४११ १४।

में उपस्थित करती है। मनोभावों एवं मनोविकारों के अन्तर्गत भी उसका यही छलिया स्वरूप व्यक्त होता है। संक्षेप में मंथरा मनु में मायुर बोलनेवाली मायाविनी है।

शूर्पणखा—मानस की कथावस्तु में शूर्पणखा की चरित्र-सृष्टि रावण-भगिनी के रूप में उपस्थित होती है। वह दुष्ट हृदया एवम् सांपिनी की तरह कठोर है। पंचवटी में सुन्दर राजकुमारों को देख कर वह कामातुर हो उठती है एवम् उसकी निर्लज्जता 'तुम सम पुरुष न मो सम नारी' के रूप में फूट पड़ती है। त्रिलोक में भी अपने अनुरूप पुरुष न पाने के कारण कुंवारी रहने की चर्चा से लगाकर नाक-कान हीन होने तक[20] उसके क्रिया-कलाप उसे एक उद्दाम वासिता एवम् शील-संकोचहीन कामातुरा ही व्यक्त करते हैं। उसके प्रणय निवेदन एवम् उसकी खिसियाहट के अंतर्गत मानवी संकोच का अभाव है और उसका व्यक्तित्व एक दानवी नारी के रूप में ही व्यक्त हुआ है।

चन्द्रिका के अन्य नारी पात्र

रामचन्द्र चन्द्रिका की कथावस्तु में अन्य नारी-पात्रों के अन्तर्गत अनुसूया शूर्पणखा का ही उल्लेख पाया जाता है। अनुसूया का उल्लेख[21] 'पति व्रत की देवता' के रूप में हुआ है और उसके तप-बल की कीर्ति की तरह सुशोभित श्वेत केश तथा कांपती ग्रीवा एवम् शिथिल अंग को संसार की नश्वरता का उपदेश देनेवाले बता कर सीता के पांव पड़ने एवम् अनुसूया द्वारा सिर सूंघ कर उसे गोद में बिठा कर उपदेश देने के साथ ही उसका उल्लेख समाप्त हो जाता है। अतः अनुसूया की चरित्र-सृष्टि नाम मात्र को ही हुई है।

शूर्पणखा—शूर्पणखा का चरित्रांकन चन्द्रिका की कथावस्तु में भी एक कामातुरा के रूप में ही उपस्थित होता है। चन्द्रिका की चरित्र भूमि में शूर्पणखा का प्रवेश दिशा-विदिशाओं को अवगाहन करवाती शरीर की सहज सुगन्ध के साथ होता है जो उसे दूती के समान लेकर आती है।[22] राम की छवि देखते ही उसका मन और तन मदन-मथित[23] हो उठता है वह स्वयं राम से पत्नी बनाने का आग्रह करती है[24] और राम द्वारा लक्ष्मण की ओर उन्मुख कर देने पर वह राजकुमार को संपूर्ण सुख-सम्पत्ति का निदर्शन दिखा कर, अपने साथ रमण[25] करने का आग्रह करती है। फिर हाथ

---

२० मानस मरण्यकांड पृ० ७६१ से ७६३।
२१ रामचन्द्र चन्द्रिका ११। ४ से ६।
२२ वही ११। ११।
२३ वही ११। १२।
२४ वही ११। १५।
२५ वही ११। १७।

विलास को समझ कर उसका भक्षण की कामना करना और नासिका विहीन होकर खरदूषण के पास जाना, खरदूषण का संहार करवा कर उसका रावण के पास पहुँचना, उसके प्रतिशोध-विदग्ध हृदय के ही परिचायक हैं। प्रणय-निराशा के पश्चात् व्यक्त उसकी भक्षण-कामना जहाँ उसके दानवी स्वभाव की परिचायक है, वहीं प्रतिशोध की कामना उसके उस नारी-सुलभ स्वभाव की द्योतक है जो प्रणय-निराशा के पश्चात् प्रतिशोधान्ध हो उठता है। उसके चरित्रांकन में भावात्मकता का अभाव वर्णनात्मकता का प्राधान्य है। अतः मनोभावों के अन्तर्गत उसका स्वरूप व्यक्त नहीं हो पाता है। उसका व्यक्तित्व एक प्रणय-पिपासु कामातुरा नारी का व्यक्तित्व है जो अपने दानवी स्वभाव के कारण प्रतिशोध की ज्वाला से प्रज्ज्वलित हो उठता है।

प्रिय प्रवास के अन्य स्त्री-पात्र

गोपिकाएं—नामोल्लेख की दृष्टि से प्रिय प्रवास की कथावस्तु में ललिता[२६] को छोड़कर अन्य सभी पात्रों का अभाव है किन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। वे स्त्रियाँ ब्रज की गोपिकाएं हैं जिनका स्थान प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में कृष्ण-प्रेमिकाओं एवम् श्याम-वियोगिनियों के रूप में व्यक्त होता है। बोझों की टापों से उड़ी पथ रज को भ्रमित एवम् विप्र-पाकर वे उस धूल में भी श्याम से भिन्न होने की विचित्रितावस्था[२७] की ही कल्पना करती हैं। वे प्रिय के निकट से आनेवाली उस धूल को यथाशि मिटाने वाली समझती हैं और उसे हृदय से लगाते हुए, लोचनों में समा लेना चाहती हैं।[२८] धूल को भी स्वयं के समान भाग्यहीना मलीना समझना क्योंकि वह आगा वाले श्याम पग से लग नहीं पाई[२९] वास्तव में गोपिकाओं की मनोव्यथा का ही द्योतक है। ऊधव द्वारा भ्रमित मन को योग द्वारा समझाने को कहने पर,[३] गोपिकाओं द्वारा उन मृदु प्यारी बातों को जो हृदय-तल-भेदिनी थीं सविनय किन्तु खिन्ना हो-हो कर सुनना[३१] जहाँ उनके शील स्वभाव का द्योतक है वहीं उनकी खिन्नता उनके श्याम प्रेम की परिचायक है।

गोपिकाओं के लिए योग चर्चा प्रेम चर्चा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। जिनके लोचनों में प्यारा नीला असत रमा हो भला वे भूप के पुत्र में कैसे अनुरक्त हो सकती हैं? जो रस प्रियवर में वस्तुतः आसक्ता हो चुकी हैं, वे हृदय-तल में अन्य

---

२६ प्रिय प्रवास ४ । २२ ।
२७ वही ५ । ७१ ।
२८ वही ५ । ७२ ।
२९ वही ५ । ७३ ।
३० वही १४ । ३९ ।
३१ वही १४ । ४० ।

को कैसे स्थान दे सकती है?[३१]अ रवि-किरणें अपना ताप त्याग सकती हैं, चन्द्र-किरणें निज माधुरी को छोड़ सकती हैं किन्तु ब्रजधरा-जन के उरों से मनमोहन की मूर्ति नहीं कढ़ सकती।[३२] अतः उद्धव द्वारा वर्णित गोपिकाओं का अलौकिक पावन प्रेम[३३] उनके व्यक्तित्व को प्रेममय ही प्रकट करता है। मनोभावों के अन्तर्गत व्यक्त उनकी वेदना भी उनके स्नेही स्वरूप की ही परिचायक है। प्रिय प्रवास की गोपिकाएँ परम्परा से अनुप्राणित होकर भी अपना निजत्व रखती हैं और यह निजत्व उनका अनन्य प्रेम-मय व्यक्तित्व ही है।

साकेत के अन्य स्त्री पात्र

साकेत की कथावस्तु में अन्य नारी-पात्रों के अन्तर्गत मंथरा एवम् उर्मिला सखी सुलक्षणा का नाम आता है। सुलक्षणा के नाम का उल्लेख[३४] केवल एक स्थल को छोड़कर कहीं नहीं हुआ है। यदि सुलक्षणा को ही उर्मिला की एकमात्र सखी समझा जाये तो उसका चरित्रांकन साकेत में सामान्य सखिवत् ही उपस्थित होता है। संयोग के क्षणों में वह हास-परिहास में योग बँटाती है, वियोग के क्षणों में वियोग उद्गारों की साक्षी बनती है और विधि के वाम न रहने का आश्वासन देकर धैर्य धारण करने की सलाह देती दृष्टिगोचर होती है। किन्तु सुलक्षणा ही उर्मिला की एकमात्र सखि नहीं है। 'सखियाँ अनेक समझाती थीं'[३५] जैसी पंक्ति सुलक्षणा के एकमात्र सखित्व में बाधक है। अतः साकेत के अन्य नारी पात्रों के नाम पर, चरित्र चित्रण की दृष्टि से मंथरा ही बच जाती है। मंथरा की चरित्र-सृष्टि संक्षेप में इस प्रकार है—

मंथरा—साकेत की कथावस्तु में मंथरा की चरित्र-सृष्टि अपने परम्परागत कुटिला स्वरूप में ही उपस्थित होती है। साकेत के सुमन-क्षेत्र को कीट बने मंथरा के नेत्र फलने नहीं देते हैं।[३६] उसके वाम वचन एवम् क्रूर कपाल को ठोक कर भाल फूटने की बात बताना[३७] उसके कुटिल छलिया स्वरूप की ही व्यंजना करते हैं। कैकेयी के समक्ष वह घर में कौवे उड़ानेवाली नीच एवम् रस में विष घोलनेवाली नागिन ही साबित होती है।[३८] स्वयं को नित्य अपराधी मृत्यु वह कर क्षमायाचना

३१.अ प्रिय प्रवास १४। ६६।
३२ वही १४। १४१।
३३ वही १४। १४७।
३४ साकेत पृ० १६०।
३५ वही पृ० १६०।
३६ वही पृ० ४३।
३७ वही पृ० ४४।
३८. वही पृ० ४६।

विमास को समझ कर उसका मक्षम की कामना करना और नासिका विहीन होकर खरदूषण के पास जाना खरदूषण का सहार करवा कर उसका रावण के पास पहुँचना, उसके *प्रतिशोध विदग्ध हृदय के ही परिचायक हैं। प्रणय-निराशा के पश्चात्* व्यक्त उसकी मदान-कामना जहाँ उसके दानवी स्वभाव की परिचायक है, वहीं प्रतिशोध की कामना उसके उस नारी-सुलभ स्वभाव की द्योतक है जो प्रणय-निराशा के पश्चात् प्रतिशोधात्म्य हो उठता है। उसके चरित्रांकन में भावात्मकता का अभाव वर्णनात्मकता का *प्राधान्य है। अतः मनोभावों के अंतर्गत उसका स्वरूप व्यक्त नहीं हो पाया है।* उसका व्यक्तित्व एक प्रणय-पिपासु कामातुर नारी का व्यक्तित्व है जो अपने दानवी स्वभाव के कारण प्रतिशोध की ज्वाला से प्रज्ज्वलित हो उठता है।

प्रिय प्रवास के अन्य स्त्री-पात्र

गोपिकाएं—नामोल्लेख की दृष्टि से प्रिय प्रवास की कथावस्तु में ललिता[२६] को छोड़कर अन्य स्त्री पात्रों का अभाव है किन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। ये स्त्रियाँ ब्रज की गोपिकाएं हैं जिनका स्थान प्रिय प्रवास की कथावस्तु में कृष्ण-प्रेमिकाओं एवम् *श्याम-वियोगिनियों के रूप में व्यक्त होता है।* भौंरों की टापों से उड़ी पद-रज को भ्रमित एवम् क्षिप्र-पाकर वे उस धूम में भी श्याम से भिन्न होने की विचिलितावस्था[२७] की ही कल्पना करती है। वे प्रिय के निकट से आनेवाली इस धूल को वसान्ति मिटाने वाली समझती हैं और उसे हृदय से लगाते हुए, लोचनों में समा लेना चाहती हैं।[२८] धूम को भी स्वयं के समान भाग्यहीना, मलीना समझना क्योंकि वह बाधा वाले कमल पग से लग नहीं पाई[२९] वास्तव में गोपिकाओं की मनोव्यथा का ही द्योतक है। उद्धव द्वारा भ्रमित मन को योग द्वारा सम्हालने को कहने पर,[३] गोपिकाओं द्वारा उन मृदु प्यारी बातों को जो हृदय-तल-बेधिनी थीं सविनय किन्तु खिन्ना हो-हो कर सुनना[३१] जहाँ उनके शील स्वभाव का द्योतक है, वहीं उनकी खिन्नता उनके श्याम-प्रेम की परिचायक है।

गोपिकाओं के लिए योग चर्चा प्रेम चर्चा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। 'जिनके लोचनों में प्यारा नीला अलक रमा हो बसा वे धूप के पुञ्ज में कैसे अनुरक्त हो सकती हैं? जो उस प्रियवर में वस्तुतः आसक्त हो चुकी हैं वे हृदय-तल में अन्य

---

२६. प्रिय प्रवास ४। २२।
२७. वही १। ७१।
२८ वही १। ७३।
२९ वही १। ७१।
३० वही १४। ११।
३१ वही १४। ४०।

को कैसे त्याग दे सकती है ?[३१अ] रवि किरणें अपना ताप त्याग सकती है चन्द्र-किरणें निज माधुरी को छोड़ सकती है किन्तु यमुना-तट के उरों से मनमोहन की मूर्ति नहीं हट सकती।[३२] अतः उद्धव द्वारा सम्पादित गोपिकाओं का अलौकिक पावन प्रेम[३३] उनके व्यक्तित्व को प्रेममय ही प्रकट करता है। मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त उनकी वेदना भी उनके स्नेही स्वरूप की ही परिचायक है। प्रिय प्रवास की गोपिकाएँ परम्परा से अनुप्राणित होकर भी अपना निजत्व रखती हैं और यह निजत्व उनका अनन्य प्रेम-मय व्यक्तित्व ही है।

साकेत के अन्य स्त्री पात्र

साकेत की कथावस्तु में अन्य नारी-पात्रों के अन्तर्गत मंथरा एवम् उर्मिला सखी सुलक्षणा का नाम आता है। सुलक्षणा के नाम का उल्लेख[३४] केवल एक स्थल को छोड़कर कहीं नहीं हुआ है। यदि सुलक्षणा को ही उर्मिला की एकमात्र सखी समझा जावे तो उसका चरित्रांकन साकेत में सामान्य सखिवत् ही उपस्थित होता है। संयोग के क्षणों में यह हास-परिहास में योग बँटाती है वियोग के क्षणों में वियोग उद्गारों की साक्षी बनती है और विधि के वाम न रहने का आश्वासन देकर धैर्य धारण करने की सलाह देती दृष्टिगोचर होती है। किन्तु सुलक्षणा ही उर्मिला की एकमात्र सखि नहीं है। 'सखियां अनेक समझाती थीं'[३५] जैसी पंक्ति सुलक्षणा के एकमात्र सखित्व में बाधक है। अतः साकेत के अन्य नारी पात्रों के नाम पर, चरित्र चित्रण की दृष्टि से मंथरा ही बच जाती है। मंथरा की चरित्र-सृष्टि संक्षेप में इस प्रकार है:—

मंथरा—साकेत की कथावस्तु में मंथरा की चरित्र-सृष्टि अपने परम्परागत कुटिला स्वरूप में ही उपस्थित होती है। साकेत के सुमन-कोश को कीट बने मंथरा के नेत्र, फलने नहीं देते हैं।[३६] उसके वाम वचन एवम् क्रूर कपाल को ठोक कर भाग फूटने की बात बताना[३७] उसके कुटिल कपटिया स्वरूप की ही व्यंजना करते हैं। कैकेयी के समक्ष यह घर में कीच उछालनेवाली नीच एवम् रस में विष घोलनेवाली भामिनि ही साबित होती है।[३८] स्वयं को नित्य अपराधी भृत्य कह कर क्षमायाचना

३१-अ प्रिय प्रवास १४।५५।

३२ वही १४।१४१।

३३ वही १४।१४७।

३४ साकेत पृ० १६०।

३५ वही पृ० १६०।

३६ वही पृ० ४३।

३७ वही पृ० ४४।

३८. वही पृ० ४६।

विलाप को समाप्त कर उसका मरण की कामना करना और नासिका विहीन होकर खरदूषण के पास जाना, खरदूषण का संहार करवा कर उसका रावण के पास पहुँचना, उसके प्रतिशोध-विदग्ध हृदय के ही परिचायक हैं। प्रणय-निराशा के पश्चात् व्यक्त उसकी मरण-कामना जहाँ उसके दानवी स्वभाव की परिचायक है, वहीं प्रतिशोध की कामना उसके उस नारी-सुलभ स्वभाव की द्योतक है जो प्रणय-निराशा के पश्चात् प्रतिशोधान्ध हो उठता है। उसके चरित्रांकन में भावात्मकता का अभाव वर्णनात्मकता का प्राधान्य है। अतः मनोभावों के अंतर्गत उसका स्वरूप व्यक्त नहीं हो पाया है। उसका व्यक्तित्व एक प्रणय-पिपासु कामातुरा नारी का व्यक्तित्व है जो अपने दानवी स्वभाव के कारण प्रतिशोध की ज्वाला से प्रज्वलित हो उठता है।

प्रिय प्रवास के अन्य स्त्री-पात्र

गोपिकाएं —नामोल्लेख की दृष्टि से प्रिय प्रवास की कथावस्तु में ललिता[२६] को छोड़कर, अन्य स्त्री पात्रों का अभाव है किन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। ये स्त्रियाँ ब्रज की गोपिकाएं हैं जिनका स्थान प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में कृष्ण-प्रेमिकाओं एवम् श्याम वियोगिनियों के रूप में व्यक्त होता है। घोड़ों की टापों से उड़ी पथ-रज को भ्रमित एवम् शिर-धारकर ये उस धूल में भी श्याम से मिलने की विचित्रलालसा[२७] की ही कल्पना करती हैं। वे प्रिय के निकट से आनेवाली इस धूल को व्यथाग्नि मिटाने वाली समझती हैं और उसे हृदय से लगाते हुए, लोचनों में समा लेना चाहती हैं।[२८] धूल को भी स्वयं के समान भाग्यहीना, मलीना समझना क्योंकि वह जाना वाले कुसुम पग से लग नहीं पाई[२९] वास्तव में गोपिकाओं की मनोव्यथा का ही द्योतक है। ऊधव द्वारा भ्रमित मन को योग द्वारा सम्हालने को कहने पर,[३०] गोपिकाओं द्वारा उन कटु प्यारी बातों को जो हृदय-तल-वेधिनी थीं सविनय किन्तु खिन्ना हो-हो कर सुनना[३१] जहाँ उनके शील स्वभाव का द्योतक है वहीं उनकी खिन्नता उनके श्याम-प्रेम की परिचायक है।

गोपिकाओं के लिए योग चर्चा प्रेम चर्चा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। जिनके लोचनों में प्यारा नीला जलद रमा हो भला वे धूप के पुंज में कैसे अनुरक्त हो सकती हैं? जो रस प्रियवर में वस्तुतः आसक्त हो चुकी हैं वे हृदय-तल में अन्य

---

२६ प्रिय प्रवास ४।३२।
२७. वही ५।७१।
२८. वही ५।७२।
२९ वही ५।७३।
३० वही १४।१६।
३१ वही १४।४०।

को कैसे स्थान दे सकती है ?[३१अ] रवि-किरणें अपना ताप त्याग सकती हैं, चन्द्र-किरणें प्रिय माधुरी को छोड़ सकती हैं किन्तु ब्रजधरा-जन के उरों से मनमोहन की मूर्ति नहीं कढ़ सकती।[३२] अतः उद्धव द्वारा सराहित गोपिकाओं का अलौकिक पावन प्रेम[३३] उनके व्यक्तित्व को प्रेममय ही प्रकट करता है। मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त उनकी वेदना भी उनके स्नेही स्वरूप की ही परिचायक है। प्रिय प्रवास की गोपिकाएँ परम्परा से अनुप्राणित होकर भी अपना निजत्व रखती हैं और यह निजत्व उनका अनन्य प्रेम-मय व्यक्तित्व ही है।

साकेत के अन्य स्त्री पात्र

साकेत की कथावस्तु में अन्य नारी-पात्रों के अन्तर्गत मंथरा एवम् उर्मिला सखी सुलक्षणा का नाम आता है। सुलक्षणा के नाम का उल्लेख[३४] केवल एक स्थल को छोड़कर कहीं नहीं हुआ है। यदि सुलक्षणा को ही उर्मिला की एकमात्र सखी समझा जावे तो उसका चरित्रांकन साकेत में सामान्य सखिवत् ही उपस्थित होता है। संयोग के क्षणों में वह हास-परिहास में योग बँटाती है वियोग के क्षणों में वियोग उद्‌गारों की साक्षी बनती है और विधि के वाम न रहने का आश्वासन देकर धैर्य धारण करने की सलाह देती दृष्टिगोचर होती है। किन्तु सुलक्षणा ही उर्मिला की एकमात्र सखि नहीं है। 'सखियाँ अनेक समझाती थीं'[३५] जैसी पंक्ति सुलक्षणा के एकमात्र सखित्व में बाधक है। अतः साकेत के अन्य नारी पात्रों के नाम पर, चरित्र चित्रण की दृष्टि से मंथरा ही बच जाती है। मंथरा की चरित्र-सृष्टि संक्षेप में इस प्रकार है—

मंथरा—साकेत की कथावस्तु में मंथरा की चरित्र-सृष्टि अपने परम्परागत कुटिला स्वरूप में ही उपस्थित होती है। साकेत के सुमन-क्षेत्र को कीट बने मंथरा के नेत्र फलने नहीं देते हैं।[३६] उसके वाम वचन एवम् क्रूर कपाल को ठोक कर भाल फूटने की बात बताना[३७] उसके कुटिल छलिया स्वरूप की ही व्यंजना करते हैं। कैकेयी के समक्ष वह घर में कीच उछालनेवाली भील एवम् रस में विष घोलनेवाली नागिन ही साबित होती है।[३८] स्वयं को निरत अपराधी मृत्यु वह कर क्षमायाचना

३१अ प्रिय प्रवास १४।५५।
३२ वही १४।१४१।
३३ वही १४।१४७।
३४ साकेत पृ० १६०।
३५. वही पृ० १६०।
३६ वही पृ० ४३।
३७. वही पृ० ४४।
३८ वही पृ० ४५।

करते हुए भी, समझ में आनेवाले मर्म को कहना, अपना धर्म बता कर[३९] वह विष घूँट कौशल से अपने उगले जहर की ओर इंगित कर जाती है वह उसे पूरी मायाविनी ही सिद्ध करता है। मंथरा का यह ताड़ जाना कि कैकेयी का शांतगेह ज्वालामुखी पहाड़ बना हुआ है[४०] उसकी विघ्न-सतोषी कुटिल बुद्धि का परिचायक है। उसकी उदासी उसकी क्षमायाचना और उसका कपाल पीटना—सभी उसे जहर की बुझी ही सिद्ध करते हैं। उसका व्यक्तित्व उस कुटिला नारी का व्यक्तित्व है जो नारी सुलभ दुर्बलता का उपयोग कर अपना उल्लू सीधा करने में परम पटु होती है।

नूरजहाँ के अन्य स्त्री-पात्र

सर्व सुन्दरी—नूरजहाँ की कथावस्तु में सर्व सुन्दरी की चरित्र-सृष्टि मेहर सखी के रूप में उपस्थित होती है। वह लाला के जमींदार मनसूर की पुत्रवधू एवम् विनय राय की पति-परायण पत्नी है। सर्व सुन्दरी नूरजहाँ के बिमकते हृदय पर अंकुश का काम करती है। मर्यादा खोकर किसी के पहलुवे न बाटने की बात कहते हुए जब मेहर उत्तेजित हो उठती है तो सर्व सुन्दरी उसे शान्त करते हुए, धैर्यपूर्वक जीवन की कठिनाइयों का सामना करने की सलाह देते हुए, खारे समुद्र-सा पति पाकर भी उसे सुरसरी के समान बहने की सलाह देती दृष्टिगोचर होती है।[४१] वह विवाह को व्यापार नहीं समझती और उसका आदर्श मेहर को क्षणिक देह-सुख के स्वप्न दिखा फुसलाकर देवी बनाने का रहता है।[४२] वह मेहर को चार दिन के इस जीवन में पथ भ्रष्ट न होने की राय देते हुए, लाज की अनमोल मणि के रूप में देखना चाहती है।[४३] पति का सिर शेरअफगन द्वारा उड़ा दिये जाने पर वह सिन्दूर-विहीन माँग में रुखमरे योगिनी के वेष में उपस्थित होती है और एक भिखारी के समान बीबी को पैदल ले जानेवाले शेरअफगन एवम् मेहर दोनों को उसका शीघ्र ही यह दिन देखने का अभिशाप देना जिसमें प्रिय-बिछोह की तड़पन होती है[४४] उसके नारी-मन के आक्रोश एवम् नारी सुलभ दुर्बलता को व्यक्त करता है। शेरअफगन की मृत्यु के पश्चात् वह मेहर के समक्ष स्वयं के धैर्य का उदाहरण रखते हुए, उसे भी धैर्य-धारण की सलाह देती है।[४५] मेहर के समक्ष व्यक्त जीवन-मरण विषयक उसके उद्गार[४६] उसे एक विदुषी नारी के रूप में ही उपस्थित करते हैं। वह मेहर को जीवन की कभी देती भी

---

३९ साकेत पृ० ४०।
४० वही पृ० ५९।
४१ नूरजहाँ पृ० ८८।
४२ वही पृ० ८९।
४३ वही पृ० ९०।
४४ वही पृ० ११३।
४५ वही पृ० १२०।
४६ वही पृ० १२० से १२२।

सनचरों से रखवाली करने की चेतावनी देते हुए, उसे जीवन के भावमय क्षणों में मंद लहरी होकर, भूतल-हृदय-राशि पर लहर की छाप छोड़ जाने की सलाह देती है।[४७] इस प्रकार सर्व सुन्दरी का व्यक्तित्व आदर्श भावना और विवेक से अनुप्राणित होकर अपनी लघुता में ही महान साधारणता में भी असाधारण एवम् संकटावस्था में भी सहनशील है।

नाहरसिंह की पत्नी—नूरजहाँ की कथावस्तु में नाहरसिंह की पत्नी की चरित्र-सृष्टि प्रासंगिक मात्र है किन्तु प्रभावशून्य नहीं है। वह एक वीर रमणी के रूप में उपस्थित होती है। पति द्वारा बंगाल प्रस्थान की अनुमति चाहने पर विकल होकर भी वह पति की विजय-कामना करते हुए, वीर-धर्म का पालन कर जीवन अमर बनाने की बात कहती दृष्टिगोचर होती है।[४८] किन्तु यह जानकर कि वह युद्ध में नहीं हत्या करने जा रहा है तो वह ऐसे पतित कार्य के लिए उसकी भर्त्सना करती है, ऐसी नीच वासना को त्यागने की सलाह देती है जिसमें विवेक नहीं है। और स्वार्थ के लिए किसी देश-द्रोही के तलुवे चाटने के बजाय भीख माँगने या राणा के समान दाने-दाने को तरसते हुए वन में भटकने को अच्छा समझती है।[४९] ऐसे नीच कर्म करनेवाले का वह मुँह तक देखना पसन्द नहीं करती और हठ के नाम पर यदि पति जाना ही चाहे तो पहले कटार से अपना अंत करने की भावना करती है।[५०] इस प्रकार अपने ओजपूर्ण उद्बोधन द्वारा वह पति के हृदय-परिवर्तन का कारण बनती है और उसका व्यक्तित्व क्षात्र-धर्म की आभा से आलोकित एक वीर नारी का व्यक्तित्व सिद्ध होता है।

सिद्धार्थ की सुजाता—सिद्धार्थ की कथावस्तु में सुजाता की चरित्र-सृष्टि एक सरल हृदया गृहस्थ नारी के रूप में उपस्थित होती है। कथावस्तु में उसका स्थान प्रासंगिक मात्र है। सुजाता एक महाधनी उत्तम भूमिहार की सुलोचना रूपवती धन्या मयी सुशीला पतिमोददायिनी सुगेहिनी है।[५१] ग्राम में आदर गौरवान्विता होकर भी पुत्र-सुख वंचित होने के कारण उसका दुखित रहना[५२] उसकी नारी सुलभ मातृत्व-कामना का परिचायक है। बन-देवता की प्रार्थना के पश्चात् उसकी कामना के पूर्ण होने पर ही क्षीरोदन लेकर उसका वन में पहुँचना एवम् गौतम को ही 'वन-देवता' मानकर, क्षीरोदन भेंट करते हुए विनय करना[५३] उसके स्वभाव की सुगमता एवम् भक्ति-

---

४७ नूरजहाँ पृ० १११।
४८ वही पृ० १००।
४९ वही पृ० १०१।
५० वही पृ० १०२।
५१ सिद्धार्थ पृ० २०९।
५२ वही पृ० २१०।
५३ वही पृ० २१२।

भावना का द्योतक है। गौतम के शब्दों में वह 'कुलांगना उदारता की प्रति-मूर्ति एवम् स्वधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म को न जानने वाली'[५४] है। कुल मिला कर सुजाता का व्यक्तित्व एक स्वधर्म-परायणा गृहस्थ नारी का व्यक्तित्व है।

साकेत-संत के अन्य स्त्री पात्र

साकेत-संत की कथावस्तु में अन्य स्त्री-पात्रों के रूप में मंथरा एवम् अरुन्धति का उल्लेख हुआ है, चरित्र-चित्रण नहीं। मंथरा के नाम का सर्व प्रथम उल्लेख कुमाविश द्वारा हुआ है। एक इशारे में ही सब कुछ समझने वाली इस दासी की बात को वे अन्य समझते हैं।[५५] भरत द्वारा उसका उल्लेख कैकेयी की मन्त्राणी[५६] के रूप में हुआ है एवम् शत्रुघ्न इसे अतिशय खोटी समझ कर पीटते दृष्टिगोचर होते हैं।[५७] अतः साकेत-संत में मंथरा का व्यक्तित्व विशेषणों द्वारा ही व्यक्त हुआ है, उसके कार्य-कलापों द्वारा नहीं। इसी प्रकार कैकेयी के मुनिराज के घर जाने के प्रसंग में अरुन्धति का उल्लेख तपस्वी की स्वयं तप-सिद्धि-सी[५८] के रूप में हुआ है। रानी के आँसुओं की तीव्र धारा बहते देख कर वे करुणार्द्र हो उठती हैं और सस्नेह रानी को उठाकर निज उर से लगाकर उसका ताप घटाती[५९] दृष्टिगोचर होती हैं। साकेत-संत की चरित्र भूमि में उक्त दोनों ही स्त्री-पात्रों का न तो मनोभावों के अंतर्गत स्वरूप व्यक्त होने पाया है और न उनके चरित्र का चित्रण ही। फिर भी अन्य पात्रों के कथन एवम् वर्णनात्मकता द्वारा उन्हें एक धूमिल-सा व्यक्तित्व प्रदान किया गया है।

कृष्णायन के अन्य स्त्री पात्र

कृष्णायन की कथावस्तु में कृष्ण-चरित्र से सम्बन्धित अनेक स्त्री पात्रों की चर्चा हुई है। अधिकांश पात्रों की अवतरणा नायक के शौर्य-प्रदर्शनार्थ अथवा कथा को विविधता प्रदान करने की दृष्टि से, महाभारत की विभिन्न प्रासंगिक उपकथाओं के अनुरूप ही पात्रों के माध्यम द्वारा व्यक्त हुई है। अतः तदनुरूप उठनेवाले अधिकांश स्त्री पात्र अपने सांकेतिक स्वरूप के अतिरिक्त विशेष व्यक्तित्व ग्रहण नहीं कर पाये हैं। उषा[६०] लक्ष्मणा[६१] परिणय प्रसंग उदाहरणार्थ सामने रखे जा सकते हैं। कंस-चेरी कुब्जा अवन्ति रानी, देवमाता अदिति इंद्र-पत्नी शचि सविपन मुनि-पत्नी अभिमन्यु-पत्नी उत्तरा गांधारी आदि का भी कृष्णायन की

---

५४ सिद्धार्थ पृ० २११।
५५ साकेत संत पृ० २।७२।
५६ वही पृ० ३।३६।
५७ वही पृ० ३।५२।
५८ वही पृ० ६।४।
५९ वही पृ० ६।१०।
६० कृष्णायन पृ० ३५२।
६१ वही पृ० ३४४।

कथावस्तु में केवल प्रासंगिक उल्लेख ही हुआ है, चरित्र-चित्रण नहीं। अन्य नारी पात्रों में उल्लेखनीय पात्र कुन्ती एवम् सुभद्रा हैं जिनका व्यक्तित्व निरूपण संक्षेप में इस प्रकार है:—

कुन्ती—कृष्णायन की कथावस्तु में कुन्ती की चरित्र-सृष्टि पाण्डव-माता के रूप में उपस्थित होती है। अक्रूर के कौरवपुरी प्रवेश के समय कुन्ती अपने श्वेत वैधव्य वसनों में पत त्रि विरस-वदित छवि-लेखावत्[12] दृष्टिगोचर होती है। पाण्डवों को बालक जानकर अपने मातृत्व के उत्तरदायित्व का पालन करने के हेतु वह सती नहीं हो पाती है। पुत्रों सहित नित्य नवीन त्रास सहन करने की बात करते-करते अक्रूर के समक्ष उसका व्यथा-विलाप[13] वहाँ उसकी नारी सुलभ दुर्बलता का द्योतक है वहीं शस्त्र-विद्या प्रदर्शन के समय कर्ण को अपमान भय से अपना पुत्र न कह पाना अकुला कर मूर्छित होना एवम् चेतना प्राप्त करने पर शर-आहत भीत मृगी के समान दृष्टिगोचर होना[14] उसके मातृ हृदय के नैसर्गिक प्रेम का परिचायक है। इसी प्रकार नगर में स्वयंवर-याग की बात सोचकर पुत्रों के देर तक न आने पर उसके मन में उठनेवाले तर्क-वितर्क ऐसे ही क्षणों में भीम का 'भद्र भिक्षा' पाने का स्वर एवम् कुन्ती का घर के भीतर से ही प्रमुदित मन से प्रकट होनेवाला आदेश[15] उसके मातृ हृदय के नैसर्गिक प्रेम का परिचय देते हैं। हरि के शब्दों में कुन्ती सयानी माता धैर्य की खान एवम् बिना अवलम्ब ही माता-पिता के कर्तव्य का पालन करने वाली वह पुण्य स्वरूपा नारी है जिसके पुण्य के कारण ही पाँडव 'त्रिभुवन उजियारे' होते हैं।[16] अभिमन्यु-वध के समाचार ज्ञात कर भी कुन्ती माता सतत शोकिता[17] ही दृष्टिगोचर होती है। पुत्रों से समाकर पीन एक प्रवाहित उसका स्नेह भाव उसके मातृ स्वरूप का ही व्यंजक है। उसकी कष्ट सहिष्णुता उसका धैर्य उसकी वात्सल्यजनित आकुलता विकलता सभी उसके गरिमामय मातृत्व की परिचायक हैं। संक्षेप में, कुन्ती का व्यक्तित्व कृष्णायन में एक पुण्य स्वरूपा स्नेहशीला माता के व्यक्तित्व के रूप में ही व्यक्त हुआ है।

सुभद्रा:—कृष्णायन की चरित्र भूमि में सुभद्रा की चरित्र-सृष्टि कृष्ण भगिनी अर्जुन-पत्नी एवम् अभिमन्यु-माता के रूप में उपस्थित होती है। इस लावण्यमयी मधुभाषिनी के मन में अर्जुन के प्रति प्रथम दर्शनजन्य अनुराग का उदय होता है[18] और 'मृग-शिशु सदृश चपल भोली पति की माता-पिता मधुबन नृपति एवम् पुरजन

---

१२ कृष्णायन पृ० २२४।
१३ वही पृ० २२५।
१४ वही पृ० २२८।
१५ वही पृ० ३०७।
१६ वही पृ० ३०९।
१७ वही पृ० ७०५।
१८ वही पृ० १८७।

ग्राम-पियारी'[६९] इस कुमारी का हरि-अनुमति से वन-विहार के समय अर्जुन द्वारा हरण होता है।[७०] हरि-कौशल एवम् नीति के कारण युद्ध प्रसंग टल जाता है और सुभद्रा अर्जुन-पत्नी बन जाती है। कुन्ती के लिए यह 'यदुवंश प्रजाता वधू' पुलक का कारण होती है, पांचाली उसकी सुचारु स्वरूप एवम् सुशीलता देखकर उसे भगिनी के समान मानती है और अर्जुन के लिए सुभद्रा 'देह-धारी हरि-प्रीति' सिद्ध होती है।[७१] अभिमन्यु-वध के उपरान्त उसकी अश्रु-विहीन गंभीर पीड़ा एवम् हरि को देखकर उसके बदन से सागर-ज्वार की तरह बहुनवाल उद्‌गार,[७२] उसके जननी सुलभ विषाद तथा विषादजन्य उत्ताप के परिचायक है। उसकी अन्तर-बाष्प उसके मोह विषाद की द्योतक है। हरि क शब्दों में वह 'वीरजा वीर पति बृहिणी और जननी और इस भगिनी'[७३] साबित होती है। संक्षेप में सुभद्रा का व्यक्तित्व हरि-भगिनी के अनुरूप ही है।

रावण की केकुमती —रावण की कथावस्तु में कैकुमती की चरित्र-सृष्टिमय की माता एवं रावण की मातामही क रूप में उपस्थित होती है। सर्व प्रथम केकुमती कन्या के लिए योग्य वर की चिन्ता से चिन्तित दृष्टिगोचर होती है और उसके मन मे यह भाव जाग्रत होता है कि अगर कन्या के अनुरूप वर प्राप्त न हो सका तो यह सारा धन-वैभव वृथा है।[७४] इसी प्रकार कुबेर को देख कर मनुहारपूर्वक पति से उसका कुबेर के सम्बन्ध में पूछना और अन्य भाव' का संकेत करना[७५] उसकी उसी उद्विग्नता का परिचायक है जो कन्या-वर प्राप्ति-कामना के रूप में उसके हृदय में जाग्रत होती है। पुत्री को समझा-बुझा कर विधवा मुनि के यहाँ भजते समय 'गत गौरव' को प्राप्त करने की उसकी भावना जहाँ स्वाभाविक है वहीं पुत्री के वाम लोचन को फड़कते देख कर मनोकामना पूर्ण होने का अनुमान कर हृदय में आनन्द का न समाना भी[७६] नारी सुलभ है। दशमुख के शशि भाल को देख कर उसके आनन्द अम्बुधि का बढ़ना[७७] उसके मातामही स्नेह भाव का परिचायक है। कुल मिला कर केकुमती का व्यक्तित्व एक कुल-हित-कांक्षिणी नारी का व्यक्तित्व है जो उद्दाम एवम् मानव-भाव से अनुप्राणित रहता है।

---

६९ कृष्णायन पृ० ३४८।
७० वही पृ० ३६१।
७१ वही पृ० ३६२।
७२ वही पृ० ७०५।
७३ वही पृ० ७०६।
७४ रावण महाकाव्य १।२१।
७५ वही पृ० १।२६।
७६ वही पृ० १।३५।
७७ वही पृ० ४।६।

सिंहावलोकन

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र-भूमि पर रासो से रावण महाकाव्य तक एक विहंगम दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि अपनी चरित्रांकन-साधना में विविधतापूर्ण एकता लेकर चली है। चरित्रांकित पात्रों में जहां कालानुसारण की अद्भुत क्षमता परिलक्षित होती है, वहीं नवीनता की ओट में सुदीर्घ साधना-सम्पन्न दृष्टि को भी नहीं भुलाया गया है। नारी-जीवन के सात्विक सामग्री एवम् तामस-स्वरूप की व्यंजना के साथ-साथ सद्-असद् के विवेचन में मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का भी आश्रय ग्रहण किया गया है। हिन्दी-महाकाव्यों की नारी जहां आदर्श से अनुप्राणित है एवम् पातिव्रत्य का स्वर जहां अन्य स्वरों से कुछ अधिक ऊंचा है वहीं नारी की कलंक-कालिमा को धोने में भी सहृदयता से काम लिया गया है। कैकेयी तथा सूर्पणखा की चरित्र-सृष्टि एवम् उनका परिवर्तन होना स्वयं इसका प्रमाण है। काव्य की उपेक्षिताएं भी अधिक काल तक उपेक्षिता नहीं रह पाई हैं। घृणा का वह स्वर जो आरम्भ में नारी के प्रति प्रयुक्त हुआ है धीरे-धीरे विमुख होता गया है। आत्मिक दुर्बलताओं एवम् विशेषताओं के प्रदर्शन में भी पक्षपात से काम लेने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन पात्र भी आधुनिकता से अनुप्राणित जान पड़ते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि को युग-युग जो मौलिक खाद प्रदान किया जाता रहा है उसने केवल उसकी उर्वरा-शक्ति को ही सम्पन्न नहीं, उसमें अंकुरित बीजों को भी परिपुष्ट एवम् सघन किया है।

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि

- भावों के अन्तर्गत नारी-जीवन और उसके विविध स्वरूप।
- विभावों के अन्तर्गत नारी के विविध आलंबन स्वरूप एवम् उसकी उद्दीपनमयी चेष्टाओं का निरूपण।
- अनुभावों के अन्तर्गत नारी के कायिक मानसिक एवम् सात्विक कार्य-कलाप और उनका स्वरूप।
- संचारी भावों के अन्तर्गत नारी-जीवन की विविध तरंगावलियाँ।
- भावभूमि की विशेषताएँ।

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि के अंतर्गत नारी-जीवन पर विचार करते समय हमारा ध्यान काव्य की उस रसमयी भावना की ओर आकर्षित होता है जहाँ स्थाई भाव विभाव अनुभाव एवम् संचारी भावों से संयुक्त होकर हृदय में अलौकिक एवम् विलक्षण आनन्द की सृष्टि करते हैं। शुक्लजी के मतानुसार काव्य का सत्यभावों के उपयुक्त विषयों को सामने रख कर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव हृदय का सामञ्जस्य स्थापित करता है।[1] पं० रामदहिन मिश्र के कथनानुसार रसों की व्याख्या भावों का मनोविज्ञान है।[2] साथ ही भाव ही रस के मूल प्रवर्तक एवम् सीमा के संस्थापक हैं।[3] अतः हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि पर विचार करते समय नारी-जीवन के विश्लेषण का आधार रस शास्त्रीय विवेचन द्वारा ही उपादेय हो सकता है क्योंकि रस के मूल में भावों का निवास है।

भावों के अन्तर्गत नारी-जीवन और उसके विविध स्वरूप

भाव मन के विकार माने जाते हैं। प्रत्यय-बोध अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति—इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम भाव है।[4] जिसकी रस में सदा स्थिति होती है अथवा रसानुकूल हृदय में जो विकार उत्पन्न होता है, उसे स्थायी-भाव कहते हैं।[5] रति हास शोक, क्रोध उत्साह भय ग्लानि आश्चर्य और निर्वेद स्थायी भाव माने गए हैं। इन्हीं भावों के अंतर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नारी-जीवन और उसके विविध स्वरूप की व्यंजना संक्षेप में इस प्रकार है —

---

१ रस-मीमांसा पृ० १९१।

२ काव्य-दर्पण पृ० १६६।

३ रस-मीमांसा पृ० १९१।

४ वही पृ० १९८।

५ रस-कलश पृ० ५।

रति-भाव के अंतर्गत नारी-जीवन की प्रेममय व्यंजना हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में अत्यन्त विशद रूप में दृष्टिगोचर होती है। सब प्रथम हमारा ध्यान सदा एकरस रहनेवाली उस अनन्य प्रीति की ओर जाता है, जिसे उत्तम-रति की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस अनन्य प्रेम-साधना में आत्म-ज्ञान भी पीछे छूट जाता है—

आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्म ज्ञान।[6]

लोभ या भय भी इस प्रेम को पराभूत नहीं कर पाता क्योंकि—

इस कोमल तन के भीतर है, हृदय कोष का मंडल।
जिसमें न कभी घुस पाये हैं विश्व कुबेरों के दल॥[7]

असम्भव के सम्भव हो जाने के पश्चात् भी इस प्रेम-दृढ़ता के विचलित होने की कोई आशंका नहीं है—

हो के विभिन्न, रवि का कर, ताप त्यागे।
देवें मयंक कर की तज माधुरी भी॥
तो भी नहीं ब्रज-धरा-जन के उरों से।
उत्फुल्ल मूर्ति मनमोहन की कढ़ेगी॥[8]

बड़ी-से-बड़ी पाशविक शक्ति को भी यह प्रेम चुनौती देता दृष्टिगोचर होता है—

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।[9]

इस अनन्य प्रेम-साधना के समक्ष भूख-प्यास भी वृथा सिद्ध होती है। न देह की सुध रहती है और न काम का ज्ञान। क्योंकि—

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मन लागा॥[10]

इस अनन्य प्रेम की पूजा और उपासना भी अनन्य ही है—

और मैं? तुम्हें हृदय में धार,
चढ़ा दी अर्घ्य आरती आर्त।
विश्व की सारी कान्ति समेट
कर दी एक तुम्हारी भेंट॥[11]

---

६ साकेत पृ० २६८।
७ नूरजहाँ पृ० १२।
८ प्रिय-प्रवास १३।१४१।
९ मानस, सुन्दरकाण्ड पृ० ८०७।
१० मानस, बालकाण्ड पृ० ९१।
११ साकेत सर्ग १।४४।

मध्यम-रति के अंतर्गत पाई जानेवाली परस्पर प्रीति एवम् मैत्री भावना के भी दर्शन होते हैं। यथा—

हाथ लक्ष्मण ने तुरन्त बढ़ा दिये,
और बोले 'एक परिरंभण प्रिये।
सिमट सी सहसा गई प्रिय की प्रिया,
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।
किन्तु घाते में उसे प्रिय ने किया,
आप ही फिर प्राप्य अपना ले लिया।[१२]

स्वार्थ से परिपूर्ण अधम रति-भावना का भी हिन्दी-महाकाव्यों की नारी में अभाव नहीं है। आँखों में बस कर अपना उल्लू सीधा करने की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है—

उनकी आँखों में बस कर धुमड़ूँ खूब मचाऊँगी।
अपना उल्लू सीधा करने को बुलबुल उन्हें बनाऊँगी॥[१३]

प्रेम के उत्तम मध्यम एवम् अधम स्वरूपों के अतिरिक्त रति-भाव के अंतर्गत नारी-जीवन के संयोगात्मक एवम् वियोगात्मक स्वरूप के भी दर्शन होते हैं। संयोग के क्षण परस्पर दर्शन के समय उपस्थित होते हैं। ऐसे क्षणों में हिन्दी-महाकाव्यों की नारी या तो अपने मुखरा स्वरूप में या परिहास-जिज्ञासु रूप में अथवा स्नेह-अनुराग के कारण डूबती उतराती अवस्था में दृष्टिगोचर होती है—

ललित ग्रीवा भंग दिखलाकर अहा।
उर्मिला ने मंद कर प्रिय को कहा—
और भी तुमने किया कुछ है कभी,
या कि मुझे ही पढ़ाये हैं सभी?[१४]

या

कौन तुम? संसृति जल निधि तीर,
तरंगों से फेंकी मणि एक
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक?[१५]

---

१२ साकेत पृ० ४०।
१३ नूरजहाँ पृ० १०७।
१४ साकेत पृ० ११।
१५ कामायनी पृ० ४६।

इस भावुकता का परिणाम यह होता है कि व्यथा भी व्यक्त नहीं की जा सकती क्योंकि—

हाड़ भए सब किंगरी नसें भई सब तांति।
✓ रोंव रोंव तें धुनि उठे, कहों बिथा केहि भांति?[२७]

उसका यों विकल विमना एवम् व्यस्त हो उठना कोई विचित्रतापूर्ण बात नहीं है। वह स्वयं इसका अनुभव करती है और स्वयं इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए कहती है—

मैं नारी हूँ तरल उर हूँ प्यार से वंचिता हूँ।
जो होती हूँ विकल, विमना व्यस्त वैचित्र्य क्या है?॥[२८]

और इसीलिए प्रिय-वियोग में उसकी अवस्था कुछ ऐसी हो जाती है—

बरे एक बेनी मिली मसवारी।
मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी।[२९]

इस प्रकार हिन्दी-महाकाव्यों की यह सती नारी मानस-मंदिर में पति की प्रतिमा थाप कर विरह में जलती-सी स्वयं आरती बन जाती है।[३]

पुत्र विषयक रति के अंतर्गत नारी के वात्सल्य भाव की व्यंजना उसके मातृ स्वरूप की द्योतक है। हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में नारी-जीवन के इस महत्वपूर्ण अंग—उसके मातृत्व—की जो झलक दृष्टिगोचर होती है वात्सल्य के संयोग एवम् वियोग दोनों ही पक्षों के अंतर्गत मातृ हृदय का जो स्वरूप सामने आता है, वह अपने आप में महान् है। संयोग-पक्ष के अन्तर्गत वात्सल्य-भाव अपने स्वाभाविक स्वरूप में व्यक्त हुआ है। हुलराना-दुलराना चूमना-पुचकारना डाटना-फटकारना समझाना शिकायतें आने पर खीज कर मारना-पीटना बालक को व्यथित या उदास देखकर अपने किए पर पश्चाताप करना इस मनोवेदना के क्षणों में शिकायत करनेवालों को कोसना आदि ऐसी क्रियाएं हैं जिनके अन्तर्गत नारी-जीवन का मातृ स्वरूप अपने स्वाभाविक रूप में हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में उपलब्ध हो जाता है। कृष्णायन के 'अवतरण कांड' के प्रारम्भिक पृष्ठ उदाहरणार्थ सामने रखे जा सकते हैं। मानस के 'बालकांड' के अन्तर्गत भी मातृ स्वरूप की वात्सल्यमयी झांकी आंशिक रूप में दृष्टिगोचर हो जाती है। सिद्धार्थ के तृतीयसर्ग 'उन्मेष' में भी आंशिक रूप में मातृ स्वरूप के वात्सल्य-भाव की व्यंजना हुई है।

---

२७ जायसी ग्रंथावली पृ० १५६।   २९ राम-चन्द्रिका ११। ३१।
२८ प्रिय-प्रवास ६०। ५०।   ३० साकेत पृ० २६७।

यह मातृ स्वरूप केवल बाल्यकाल तक ही सीमित नहीं रहता है। पुत्र के युवा हो जाने पर भी नारी का वात्सल्य भाव अपने मातृ स्वरूप का परित्याग नहीं कर पाता। युवा राम को समक्ष पाकर कौशल्या का वात्सल्य भाव जिस रूप में प्रकट होता है वह नारी के सहज मातृत्व का ही द्योतक है। यथा—

> बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता।
> गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये।[31]

कृष्णायन में 'कान्हु' नाम मात्र सुन कर यशोदा का विकल हो उठना नयनों में अश्रु छलछला आने के कारण कुछ दिखाई न पड़ना और 'पुरातन पुरुष' से ही पुत्र को पहचानना वास्तव में मातृत्व के उस वात्सल्य भाव का ही परिचायक है जो 'कमसक' मथुराई को भी अंक में भर कर हिम-शीतल आनन्द अश्रु बहाता हुआ इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है—

> चिबुक हस्त चिबु बदन बिलोकति,
> तिलत कपोल सलिल दृग मोचति।
> फेरति मस्तक कर महतारी,
> बिह्वल भी हरि विश्व बिसारी।[32]

अपनी कुटिलता से कलंकित होकर भी यह मातृत्व अपने सहज स्नेह का परित्याग नहीं कर पाता। वह अपवाद को सहन कर सकता है चिरकाल तक 'नरक भोग' सकता है किन्तु उसके मन का प्यार केवल पुत्र का प्यार पाने की आकांक्षा रखता है—

> कैकेयी चिल्ला उठी सोन्माद—
> सब करें मेरा महा अपवाद,
> किन्तु उठ भी भरत मेरा प्यार,
> चाहता है एक तेरा प्यार।[33]

वियोगावस्था में यह वात्सल्य भाव और भी अधिक निखर उठता है। ऐसे अवसरों में नारी के मातृ हृदय की आकुलता-विकलता उसके जिस विछोह-विदग्ध स्वरूप को व्यक्त करती है, वह स्वरूप मातृत्व की महानता का ही व्यंजक है। नारी के अंतर से उठनेवाला वात्सल्यजनित यह हाहाकार, भय उत्ताप ग्लानि चिन्ता विषम प्रलाप उन्माद आदि से परिपूर्ण हो उठता है और उसका मातृत्व मूर्तिमान होकर अपनी उपमा आप ही हो जाता है।

---

३१ मानस अयोध्याकांड पृ० ४२२। ३३ साकेत पृ० १६४।
३२ कृष्णायन पृ० २१६।

पुत्र-प्रयाण का प्रसंग निकट उपस्थित होते ही नारी का मातृ हृदय व्याकुल हो उठता है। बार-बार पट हटाकर सुत का मुख निहारते हुए, विछोह की कल्पना से अश्रु ज्वार सा उठना स्वाभाविक है किन्तु पुत्र की निद्रा भंग का भय वात्सल्यजनित दुःख-वेग को वात्सल्यजनित संयम द्वारा रोकने का प्रयत्न करता है और—

हरि न जाग उठें इस सोच से।
सिसकती तक भी वह थीं नहीं।
इसलिए उनका दुख वेग से।
हृदय था शतधा अब हो रहा ॥[१४]

किन्तु यह संयम पुत्र-प्रयाण के साथ ही प्रयाण कर बैठता है और पट हटा कर पुत्र का बारम्बार मुख निहारनेवाली माता उठ-उठ कर धरती पर गिरने लगती है—

यथा यशोमति धरति न आयो गिरति भूमि, उठि कहति कन्हाई।
दौरति बहुरि, गिरति पुनि धरनी, टेरति सुत कलपति अंब धरनी।[१५]

इसके पश्चात् विछोह-काल प्रारम्भ हो जाता है और प्रत्येक क्षण प्रत्येक वस्तु जननी-हृदय को 'सालने' लगती है। बात-बात पर मातृ मन खीझ उठता है और—

मथि मथि मथने को बैठती दासियाँ थीं।
मथन रव उन्हें था चाव लेने न देता।
यह कह कह के ही रोक देती उन्हें थी।
तुम सब मिलके क्या कान को फोड़ दोगी।[१६]

सुत-विछोह के इन क्षणों में ही रूढ़ियों के संस्कार भी जाग्रत हो उठते हैं और भारतीय नारी का अंध-श्रद्धालु स्वरूप भी दृष्टिगोचर हो उठता है—

प्रतिदिन कितने ही देवता थीं मनाती।
बहु यजन कराती विप्र के वृन्द से थीं।
नित घर पर कोई ज्योतिषी थीं बुलाती।
निज प्रिय सुत आना पूछने को यशोदा।[१७]

इसके बाद यह मातृ मन 'कहाँ है कहाँ है ?' की रट लगाने लगता है। पीड़ा सहते सहते किसी को भी पीड़ा न पहुँचाने की भावना माता के भावुक हृदय में घर कर लेती है और एक दिन यही उदात्त भावना विश्वास के स्वर में यों व्यक्त हो उठती है—

---

१४ प्रिय प्रवास ३। ३१।
१५. कृष्णायन पृ० ११६।
१६ प्रिय प्रवास ६। १८।
१७ वही ६। २०।

छोना जाते सकुच न बुढ़ता में किसी का।
आँखों कोई न कर दुख से लाल सके किसी का।
पूछो कोई कमलभर की बाँह से को न देवे।
लोने का भी लखन न बिना दीप के हो किसी का।[३८]

इसके अतिरिक्त मातृ हृदय के वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति समक्ष पुत्री के लिए सुयोग्य वर की चिन्ता करते समय या अयोग्य वर मिलने पर पश्चात्ताप करते समय अथवा विवाहोपरान्त पुत्री को विदा करते समय भी दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि पुत्री पराया धन है और उसकी विदा या वियोग अनिवार्य-सा हो जाता है फिर भी पार्वती को विदा करते समय मैना के निम्न उद्गार, मातृ हृदय की वात्सल्य भावना के ही द्योतक है —

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी।[३९]

इस प्रकार हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में वात्सल्य-व्यंजना की दृष्टि से नारी-जीवन का सबल पक्ष, उसका मातृ स्वरूप भी अपनी संपूर्ण गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुआ है।

हास्य के अंतर्गत नारी-जीवन के उन्मुक्त स्वरूप का भी हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में अभाव नहीं है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से हास हास्य रस का स्थायी भाव माना गया है और विकृत आकार, वाणी वेष तथा चेष्टा आदि को देखने से इस भाव का उदय होता है। यह आत्मस्थ एवम् परस्थ दोनों रूपों में उत्पन्न होता है।[४०]

मंथरा के विचित्र स्वरूप को देखकर कैकेयी का हँसना आत्मस्थ हास्य का प्रतीक है। एक नारी द्वारा दूसरी नारी के 'त्रिया चरित्र' को देख कर इस भाव का उदय होता है—

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।[४१]

सामने वाले की विकृति के प्रति मन में विचित्रतापूर्ण उक्ति के सूझ जाने पर भी यह भाव नारी के हास का कारण हो उठता है—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि।[४२]

---

३८ प्रियप्रवास १०।६६।
३९ मानस, बालकांड पृ० १२४।
४० काव्य-कल्पद्रुम पृ० १६६
४१ मानस अयोध्याकांड पृ० ४१२।
४२ वही पृ० ४१४।

अपने मधुमय व्यंग्यों से पुलकित होकर भी नारी का प्रमुदित स्वरूप दृष्टिगोचर हो जाता है। यथा—

> हंसी मांडवी प्रथम ताड़का,
> फिर यह पूर्पणखा नारी
> किसी विड़ालाक्षी की भी भ्रम
> प्राणि वाली है नारी।[४३]

अथवा

> ललिता स्वर तानी समय, प्रविसेउ युति अभिराम
> भये चुप भय ही तबहु. ठन बिला धमधाम।[४४]

कुतूहल के रूप में चुटकी भरते हुए भी नारी का विनोदी स्वरूप सामने आता है—

> पाकर यहां ! उमंग ऊर्मिला अंग भरे वे
> आली ने हंस कहा 'कहां से रंग भरे वे ?'[४५]

नारी के प्रमुदित स्वरूप की झलक उस समय भी परिलक्षित हो जाती है जब वह किसी रहस्यमय बात को हल्के-फुल्के ढंग से टाल देती है किन्तु रहस्य की मिठास मन-ही-मन घुल कर उसके मुख पर हास्य अथवा मुस्कान के रूप में प्रकट हो जाती है। बलराम द्वारा बाल-जिज्ञासा के रूप में कृष्ण के बारे में यह पूछने पर कि यह 'कहां से आया है, प्रश्न के उत्तर के रूप में यशोदा का 'कहां' का समाधान मधुमय रहस्यजन्य हास का ही कारण हो उठता है—

> 'तुम्हरेहि खेलन हेतु मंगावा'
> हंसी महरी हलधर मुख पावा।[४६]

'विशेष अर्थ' से प्रयुक्त विशेषणों एवम् इन विशेषणों का अर्थ जाननेवाले पुरुष की उद्विग्नता देखकर भी कभी-कभी नारी एक रहस्यमय हास्य से प्रमुदित हो उठती है—

> कहा हंस कर 'अतिथि हूं मैं और परिचय व्यर्थ
> तुम कभी उद्विग्न इतने थे न इसके अर्थ।'[४७]

सखियों से जब आये सज्जापूर्ण सत्कारवश नारी नारी के मध्य चलनेवाली सरस चर्चा भी तरल हंसी का कारण बन जाती है और यह 'परिहास विशेष' नारी के सज्जा संयुक्त प्रमुदित स्वरूप को व्यक्त कर देता है—

---

४३ साकेत पृ० ४१२।
४४ कृष्णायन पृ० ४२०।
४५ साकेत पृ ४६५।
४६ कृष्णायन पृ० ३०।
४७ कामायनी पृ० ८७।

'मुझे तुम्हारे कौन प्रमाण ये श्लोक हैं ?
'गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।
सीता ही यह सरल भाव से कह गई
तब भी वे कुछ तरल हंसी हंस रह गई।[४८]

इसी प्रकार अपनी किसी भोली भूल पर अपने प्रियजन को हंसते या मुस्कराते देख कर नारी स्वयं हंस या मुस्करा देती है और यह परस्त हास्य नारी के लज्जा मिश्रित आनन्दित स्वरूप को प्रकट करता है। चिबुक रचना की उमंग में चूक जाने पर और लक्ष्मण द्वारा हंस पड़ने पर उर्मिला के मुख से केवल 'अरे' ही नहीं निकलता बल्कि वह भी लजा कर हंस पड़ती है—

हंस पड़े सौमित्र भावों से भरे,
ऊर्मिला का वाक्य था केवल 'अरे'!
'रंग पद में ही गया, देखा, प्रिये
तुम चिबुक धरने चली थीं क्यों न हो ?'
ऊर्मिला भी कुछ लजा कर हंस पड़ी
वह हंसी थी मोतियों की सी लड़ी।[४९]

इसके अतिरिक्त नारी अपने दाम्पत्य जीवन के अंतर्गत भी अपने हास-परिहासमय स्वरूप में दृष्टिगोचर हो जाती है। कहीं वह पुरुषों की मधुप-वृत्ति पर चोट करती[५०] दिखाई देती है और कहीं उनके शब्द-चातुर्य पर व्यंग-विनोद[५१] अतः हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में नारी का यह उन्मुक्त स्वरूप भी हास-परिहास एवम् व्यंग-विनोद से प्राणवान् हो उठा है।

शोक के अंतर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की नारी अपने करुण स्वरूप में दिखाई पड़ती है। नारी-सुलभ भावुकता के कारण उसका हृदय शोक-संतप्त हो उठता है और यह संतप्तावस्था नारी की 'करुणामयी' संज्ञा को सार्थक करती दृष्टिगोचर होती है। वैधव्य नारी-जीवन का सर्वाधिक कारुणिक स्वरूप है। इस शोक-वेग में वह करुणा की मूर्तिमान प्रतिमूर्ति जान पड़ती है। यथा—

असमय पत घन जब जनु भारी जीतिहु परति नहिं धुर कुमारी।
मानन म्लान लता जनु जीरा, सीच सिरोरुह सुमन विहीना।

---

४८. साकेत पृ० १४७।
४९. वही पृ० ११।
५०. साकेत-संत १।४१।
५१. कृष्णायन पृ० १४२।

बसन श्वेत, भूषण श्रम माहीं प्रथम कपोल पारिंतन माहीं।
विमल उचित मानहु श्रमि सेखा गत द्युति शेष रही कछु रेखा।[५२]

अथवा

सारी श्वेत लसत सिर कैसे। ससि परिवेष सोहु निसि जैसे॥
भूरिन बिन हमि सोहु कमाई। मनहु मृनाल भयो मुरझाई॥
भूम मद रहित लसत मुख कैसे। निसि अकलंक मलिन विधु जैसे॥
अंजन मद मंजन नहीं। सोचन मद न करै मृग मान विमोचन॥[५३]

प्रिय-विछोह के कारण भी नारी अपने करुण स्वरूप में दिखाई पड़ती है। जो मन का धन है और जिस पर जीवन का सारा साज-शृंगार निर्भर है वही जब विरक्त होकर चल देता है तो नारी का विषाद शोक का रूप ग्रहण कर लेता है। उस समय की उसकी यह कारुणिक मूर्ति सजीव करुणाक्त परिलक्षित होती है—

रोवहिं रानी तजहिं पराना। चोवहिं बार करहिं खरिहाना॥
चूरहिं गिउ अभरन उर हारा। अब का पर हम करब सिंगारा?
जा कहं कहहिं रहसि के पीऊ। सोइ चला, काकर यह जीऊ॥
मरै चहहिं पै मरै न पावहिं। उठै आगि सब लोग बुझावहिं॥[५४]

अपनी परित्यक्तावस्था में भी नारी शोकाकुल ही जान पड़ती है। संध्या की उदासी की तरह एक नीरव करुणा उसे आच्छादित किए रहती है और उस समय का उसका यह शोकाकुल स्वरूप एकदम निस्तेज रंगहीन रेखाचित्र-सा दिखाई पड़ता है—

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी न वह मकरंद रहा
एक चित्र बस रेखाओं का अब उसमें है रंग कहां?
वह प्रभात का हीन कला शशि किरन कहां चांदनी रही
वह संध्या थी रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहां।[५५]

प्रिय के अनिष्ट की आशंका मात्र से शोकाकुल हो उठनेवाली नारी के जीवन में करुणा का प्राधान्य होना स्वाभाविक ही है। अतः हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में उसके शोकाकुल स्वरूप की भाव-व्यंजना भी पूर्ण सहृदयता के साथ व्यंजित हुई है।

क्रोध के अन्तर्गत व्यक्त होनेवाले नारी के रौद्र स्वरूप की व्यंजना भी हिन्दी महाकाव्यों की भाव भूमि में दृष्टिगोचर होती है। इच्छा-पूर्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होने

---

५२ रूपनारायण २२४। ५४ जायसी ग्रंथावली पृ० ३६।
५३ रामचरित महाकाव्य १६।२। ५५ कामायनी पृ १७५।

पर अपमान, अपकार या अपने गुरुजनों की निन्दा सुन कर नारी में क्रोध-भाव जागृत हो उठता है और वह रौद्ररूपा दृष्टिगोचर होने लगती है। नारी का यह क्रोध भाव कहीं तो वचनों द्वारा व्यक्त होता है और कहीं मुख-मुद्रा तथा शारीरिक चेष्टाओं द्वारा।

अपनी इच्छा-पूर्ति के मार्ग में मेहर को अवरोध स्वरूप जानकर अमीना द्वारा अपने मुंह से अपनी ही बड़ाई करना एवम् अहं भाव का परिचय देते हुए उत्तेजनात्मक उद्गार व्यक्त करना उसके उग्र क्रोधी स्वभाव का ही परिचायक है जो प्रायः नारी को बढ़-चढ़ कर बोलने के लिए प्रेरित कर देता है—

मैं तुझे आग में झाडूं गी उड़ जायेगा सारी धारा।
मैं मला गला कर मार्क गी सोना हराम कर दूं सारा।
मैं तुरत हूंगी सब परी सब रंग तेरे कट जायेंगे।
तेरे हिमायती हैं जितने मुझसे न कोई घट पायेंगे॥[४६]

अपने परिवार की अनिष्ट आशंका एवम् अपकार का आभास पाकर भी नारी अपने रौद्ररूपा स्वरूप में दृष्टिगोचर हो उठती है। भरत को रस में विष घोलते देख कर कैकेयी का यह स्वरूप उसके रौद्ररूप का ही परिचायक है—

तीखए थे लोचन धवल अडोल
लाल थे लाली भरे कपोल।
न भाती देख सकी उस ओर
कहा दे नहीं न कोप कठोर।[४७]

एक बार सिर पर क्रोध सवार हो जाने पर सामने पड़नेवाली वस्तुओं को अस्त-व्यस्त कर डालना नारी में स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होता है। उस समय वह देवी से दुर्गा बन जाती है —

एड़ियों तक आ छूटे केश
हुआ देवी का दुर्गा वेश।
पड़ा जब जिस पदार्थ पर हस्त
उसे कर डाला ध्वस्त व्यस्त।
तोड़कर फेंके सब भृङ्गार
कण्ठ्य से वे मुक्ता हार।[४८]

अपमान से विवश होकर भी नारी का क्रोध जाग्रत हो उठता है। उसकी असहाय

---

४६ नूरजहां पृ० ४१। ४८ वही पृ० ४२।
४७ साकेत पृ० ४६।

वस्था का अनुचित लाभ उठानेवाला आयोजन जब किसी दैवी सहायता से निष्फल सिद्ध हो जाता है तो नारी इस आकस्मिक सहायता से बल पाकर साक्षात् चंडी बन जाती है—

प्रकटि बसन मिधि तै तेहि काला,
चंडी मनहुँ धाप बिकराला।
द्रुपद कुमारि केश छिटकायी
कीन्ह महा प्रल सबहिं सुनायी

जब भुज भंजन रक्त बिनु बँधिहौं नहिं ये बार,
केहि पति राखी प्राब मम सोई प्रण राखन हार।[८९]

इसी प्रकार अपना सर्वस्व समाप्त होते देख कर संत्रासावस्था में नारी के हृदय में जागने वाला क्रोध, प्रायः श्राप का रूप भी ग्रहण कर लेता है—

अस कहि हरिहि रोष जनु भारी
दारुण भाप दीन्ह पान्धारी
'जस पुत्र कलह मरत कुल नाशा
तैसेहि यदुकुल लहहि बिनाशा।'

पुत्र पौत्र, भ्राता स्वजन बचहि बंश नहि कोय,
एकाकी, निर्जन बिपिन, अंत तुम्हारपु होय।[९०]

उत्साह के अंतर्गत नारी के वीर-वेश की व्यंजना भी हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में दृष्टिगोचर होती है। शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार धर्मवीर युद्धवीर आदि की तरह यद्यपि नारी के भेद करना संभव नहीं है किन्तु अवसर उपस्थित होने पर नारी द्वारा प्रदर्शित उत्साह निश्चयात्मक रूप से उसके वीरांगना स्वरूप की व्यंजना करता है। ऐसे स्थलों का जहाँ नारी का उत्साह प्रदर्शन उसके वीरांगना स्वरूप की व्यंजना करता है, हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में प्राचुर्य नहीं है, लेकिन उनका अभाव भी नहीं है।

धर्म मिता में दस्यु की तरह, नकाब डाल कर अपने घर में किसी को प्रविष्ट होते देख कर नारी जब भयभीत होने के बजाय तलवार खींच कर आगन्तुक को ललकारती है तो उसका यह जाग्रत उत्साह, उसके वीरांगना स्वरूप का ही परिचायक है—

---

८९. कृष्णायन पृ० ४९८, २१। ९०. वही पृ० ७७४।

फिर आगे मग लगी देखने मगर पड़ा जो आगे।
उस नकाब में छिपा किसी को झट तलवार निकाली।
बढ़ती हुई तड़प कर बोली ठहर! कौन? क्यों आया?
कर दूँगी तलवार पार मैं पग जो एक बढ़ाया॥६१

उत्साह के जाग्रत होते ही नारी का अब तक निमलित सुकुमार स्वरूप भी क्षात्र-धर्म तेज से प्रदीप्त हो उठता है और ऐसे क्षणों में उसका वीर-वेश साक्षात् भवानीव दृष्टिगोचर होता है—

आ प्रद्युम्न समीप खड़ी लक्ष्मण की रानी
प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी।
जटा जाल से बाल विलम्बित छूट पड़े थे
आनन पर सौ अरुण घटा में फूट पड़े थे।
माथे का सिन्दूर सजग अंगार सदृश था
प्रथमातप सा पुण्य गात्र यद्यपि वह कृश था।
बाँया कर प्रद्युम्न पृष्ठ पर कंठ निकट था
दायें कर में स्थूल किरण सा शूल विकट था।६२

केवल वेश से ही नहीं वाणी से भी उसका उत्साह फूट निकलता है और वह शत्रु को अपनी करनी का फल चखाने के लिए कीर्ति की तरह आगे-आगे चलना चाहती है—

ठहरो यह मैं चलूँ कीर्ति सी आगे आगे
भोगें अपने विषम कर्म फल अधम अभागे।६३

पुरुष को हतोत्साह होते देखकर नारी में जो उत्साह कभी-कभी जाग्रत हो उठता है, वह पुरुष में वीरता का संचरण ही नहीं करता अपितु नारी के वीरांगना स्वरूप को भी व्यक्त करता है—

जस सुख सुयश बीजे राम सों हीं हरो यों।
हरि हर सब हारे देवी दुर्गा सरी ज्यों॥६४

भय के अंतर्गत नारी का भीरु स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। शास्त्रीय दृष्टि कोण से भय भयानक रस का स्थायी भाव माना गया है और कापुरुष के साथ-साथ भीरु स्त्री भी इसकी पात्रा समझी गई है।६५ प्रथम अध्याय के मनोवैज्ञानिक विवाम

---

६१ नूरजहाँ पृ० ६८।
६२ साकेत पृ० ४७२।
६३ वही पृ० ४७४।
६४ राम-चंद्रिका १६।२२।
६५ रस-कलश पृ० १४८।

के अंतर्गत संवेगों पर विचार करते समय हम देख चुके हैं कि प्रायः भय के कारण व्यक्तिगत वस्तु विषयक अथवा सामाजिक होते हैं। मानसिक अपरिपक्वता अथवा वातावरण के प्रभाव से स्त्रियों में भय की मात्रा अधिक होती है। पूर्व कथित रूपों के अतिरिक्त भारतीय नारी में धर्म भीरुता भी पाई जाती है किन्तु स्वाभाविक भीरुता कायरता है और धर्म-भीरुता आस्तिकता।[६६] अतः नारी का यह धर्मभीरु स्वरूप भय की व्यंजना करते हुए भी भयानक रस की वस्तु नहीं है।

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में नारी का यह भीरु स्वरूप अनेक स्थलों पर विविध रूपों में व्यक्त हुआ है। परन्तु नारी का यह भीरु स्वरूप भयजनित है भयजनक नहीं। यह भीरुता स्वयं भय-संचरित है भय की संचारक नहीं। अतः भयानक रस की दृष्टि से इस भीरुता को रस की नहीं भाव की दीप्तावस्था के रूप में ही देखना चाहिए।

खेल में किसी मूल्यवान् वस्तु के गुम हो जाने पर परवालों की डांट-डपट का भय नारी में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। अतः ऐसे अवसरों पर उसका भय हार्दिक एवम् मानसिक भीरुता के कारण परिताप पश्चाताप आकुलता एवम् रुदन के रूप में व्यक्त होता है—

> खिन खेलें आइवं एहि ठामा। हार गंवाइ चलिउ लेइ हाथा॥
> घर पैठत पूछव यह हारू। कौन उतर पाउव पैसारू॥
> नैन सीप आंसु तस भरे। जानौ मोति गिरहिं सब ढरे॥[६७]

कहीं जाने पर विलम्ब हो जाने के कारण भी नारी के मन में गुरुजनों का भय जागृत हो उठता है। इस भीरुता का कारण नारी की सामाजिक स्थिति है। उदाहरणार्थ—

> सुनि गिरा सुनी सिय सकुचानी। भयउ विलम्ब मातु भय मानी।[६८]

लोक-निन्दा अथवा सामाजिक अपमान का भय भी नारी को मूक बना देता है और वह निन्दा भीरु के रूप में दृष्टिगोचर होती है—

> सखि पुकार निज सुत दशा स्यापत जनु तनु प्राण
> कहि न सकी 'यह मम सुवन' सहि न सकी अपमान।
> गिरी धरणी अकुलाय माय समारेउ कुल नियम
> उठी चेत पुनि पाय जनु धार आहत भीत मृगि।[६९]

---

६६ काव्य-दर्पण पृ० २५२। ६८ मानस बालकांड पृ० १६०।
६७ जायसी ग्रन्थावली पृ० ६५। ६९ कृष्णायन पृ० २६८।

नारी की निर्बलता अथवा असहायावस्था भी उसकी भीरुता का एक कारण
। अतः ऐसे अवसरों पर उत्पन्न भय उसके दीन स्वरूप का व्यंजक होता है —

किन्तु रोक ली गई भुजाओं से मनु की वह
निस्सहाय हो दीन दृष्टि देखती रही वह ।[70]

अथवा

हा धई कैसी करौ अब सो ।
कम्पित भरी बाम मलिन्द्र के पासें ।
आशु भूपी करि दीन्ही गई ।
दुर्मीपिन सों हहा म्याय हवासे ॥
देखते नाम सुधी यह बात है ।
बोलि सकौं न परै मुख तासे ॥
हेरी करै सब न हमरो ।
तै दिखात न आशु बचावन वासे ॥[71]

संकट को सामने देखकर भी निर्बल हृदया नारी भयभीत हो उठती है और
स समय वह संकट भीत अथवा प्राण-भीत के रूप में दृष्टिगोचर होती है —

तलवारें मैंगी ही चमकीं गिरी कमीला पैरों पर ।
कहा 'कीजिए क्षमा मुझे अब अस्म दीजिये मेरा सर ।'[72]

व्यक्तिगत तथा सामाजिक भय के अतिरिक्त नारी में वस्तुजन्य भय भी उसके
ीत स्वरूप का परिचायक होता है । किसी भयंकर स्वप्न को देखकर, स्वजन-स्नेह
कारण भय का जागृत होना नारी में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है । यद्यपि इस
व का कारण उसका स्नेह-भाव होता है किन्तु उसे भयभीत बनाने वाला भयंकर
प्न ही उसकी भीरुता को जागृत करता है । यथा—

श्रद्धा काँप उठी सपने में, सहसा उसकी आँख खुली,
यह क्या देखा मैंने ? कैसे वह इतना हो गया छली ?
स्वजन स्नेह में भय की कितनी आशंकाएं उठ आतीं,
अब क्या होगा इसी सोच में व्याकुल रजनी बीत चली ।[73]

भयंकर वस्तु को देखकर भी नारी घबरा उठती है, उसके मुख से चीत्कार

---

७० कामायनी पृ० १६७ ।
७१ रावण महाकाव्य ११ । १० ।
७२ नूरजहाँ पृ० १ ५ ।
७३ कामायनी पृ० १८६ ।

सिहर उठती है भय के कारण वह सहम जाती है और कंठावरोध हो जाना भी स्वाभाविक है—

काल सौं मत्त को आवत देखि, सुलोचना ऐसी गई घबराई।
ओर सौं हाथ दई कहि कै सहमी, गिरी औ मुख बोलि न पाई॥[७४]

अपने भीरु स्वरूप के अतिरिक्त कुछ स्थलों पर नारी के भयानक स्वरूप की भी व्यंजना हुई है क्योंकि यह स्वरूप दूसरों के लिये भय का कारण बना है। उदाहरणार्थ—

पड़ी थी बिजली सी विकराल
लपेटे थे घन जैसे बाल।
कौन छेड़े ये काले साँप?
अवनि पति उठे अचानक काँप।[७५]

अथवा

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई।
बिथुरे केस रदन विकराला। भृकुटी कुटिल करन लगि भाला।[७६]

भाव की दृष्टि से ग्लानि के अन्तर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नारी के वीभत्स स्वरूप की व्यंजना का प्राय: अभाव है। डाकिनी शाकिनी पिशाचिनियों को अगर नारी की संज्ञा प्रदान की जाये तो युद्धस्थल के प्रसंगों पर उनका क्रिया-कलाप वीभत्स स्वरूप की व्यंजना कर सकता है। पृथ्वीराज रासो में ऐसे स्थलों की भरमार है। किन्तु ग्लानि के अन्तर्गत नारी के वीभत्स स्वरूप की अभिव्यक्ति का प्राय: हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में अभाव ही है।

आश्चर्य भाव के अन्तर्गत नारी के आश्चर्यचकित अथवा विस्मय-विमूढ़ स्वरूप की व्यंजना हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो जाती है। नारी में भावुकता का प्राधान्य होने के कारण किसी अद्भुत वस्तु अथवा अलौकिक घटना को देखकर उसका विस्मय-विमूढ़ या आश्चर्यचकित हो जाना स्वाभाविक है। नारी में यह विस्मय अथवा आश्चर्य भाव कहीं झिझकता तो कहीं घबराहट के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यथा—

सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भई सभीता।
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठी मग माहीं।[७७]

---

७४ रावण महाकाव्य १।४०।
७५ साकेत पृ० १०।
७६ मानस अरण्यकांड पृ० ७१२।
७७ मानस बालकांड पृ० ७१।

अथवा

सुनत स्याम मधुमित बचन कीन्ह बचन बिस्तार।
बिकसत मातु शिशु मुख सरोज कोटिन विश्व प्रसार ॥[७८]

विविध सौंदर्य अथवा विचित्र वस्तु आदि को देखकर नारी का आश्चर्य भाव उत्सुकता के रूप में भी प्रकट होता है और ऐसे अवसरों में वह अपने विस्मय-विमुग्ध उत्फुल्ल स्वरूप में दृष्टिगोचर होती है—

आनन्द मुकलित लोचन आनन,
भ्रमित सत्यभामा सुर कानन।
विस्मित विहँसित पुलकित विकसित,
ललित कुसुम भ्रमित आलोलित।[७९]

निर्वेद के अन्तर्गत नारी का शान्त-धीर स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी महाकाव्यों की भाव भूमि में निर्वेद भाव के अन्तर्गत नारी-स्वरूप की व्यंजना बहुत कम हो पाई है। निर्वेद-संचारी के अन्तर्गत उसके विरक्त उदासीन स्वरूप की व्यंजना अनेक स्थलों पर सुलभ हो सकती है किन्तु निर्वेद भाव के अन्तर्गत उसका स्वरूप बहुत कम स्थलों पर दिखाई देता है। निर्वेद के अन्तर्गत नारी की यह शान्त मूर्ति कहीं तो परमार्थ चिन्तन में लीन दृष्टिगोचर होती है और कहीं शम भाव के कारण अपने सर्व मंगला स्वरूप में। यथा—

जो देती थी कलह ललिता व्याधि के पुंजों को।
जो देती थी मलिन मन की व्यापिनी कालिमायें।
जो देती थी हृदय तल में बीज भावुकता का।
वे थीं चिन्ता विजित गृह में शान्ति धारा बहाती॥[८०]

अथवा

हे सर्व मंगले! तुम महती
सबका दुख अपने पर सहती
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में हो रहती।[८१]

इसके अतिरिक्त जीवन-संघातों से विरक्ति उत्पन्न हो जाने पर, जीवन की

---

७८. कृष्णायन पृ० ४१।
७९. वही पृ० ११६, ४०।
८० प्रियप्रवास पृ० १७। ४७।
८१ कामायनी पृ० २४९।

असारता का अनुभव करते हुए नारी में जो निर्वेदभाव जाग्रत हो उठता है वह उसके तत्व-चिंतन-साधिका स्वरूप को भी हमारे सामने रखता है। सर्प सुन्दरी के निम्न उद्गार उसके इसी चिन्तक स्वरूप के व्यंजक है—

> विवस मिला कूलों में बहती है प्रमत्त जीवन की धार।
> लहरों का सिरजन होता रहता है लहरों का संहार॥
> यों ही बनता और बिगड़ता यह सलिल ही में प्रासीन।
> जीव रूप बन उठ आता है हो जाता फिर वहीं विलीन॥[८२]

भावों के अन्तर्गत उक्त विवेचन को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में भावों के माध्यम से नारी जीवन के विविध स्वरूपों की व्यंजना रस की मधुमती भूमिका के साथ उपस्थित हुई है। इस रस-साधना में 'भाव-दशा' को 'शील-दशा' का रूप देकर नारी के विविध स्वरूपों को व्यंजित करते हुए, साहित्य एवम् जीवन भाव तथा भावना के क्षेत्र में स्वामित्व-सा प्रदान किया है।

विभावों के अन्तर्गत नारी के विविध आलम्बन स्वरूप एवम् उसकी उद्दीपनमयी चेष्टाओं का निरूपण

विभाव एवम् भाव अन्योन्याश्रित माने गए हैं। भरत मुनि के मतानुसार विभाव विशेष ज्ञान का अर्थ रखता है। विभाव कारण निमित्त हेतु—ये पर्यायवाचक हैं।[१] विभावों द्वारा भावों को आलम्बन भी मिलता है और उन्हें उद्दीपित भी किया जाता है। शुक्लजी के कथनानुसार 'हमारी परिस्थिति हमारे जीवन का आलम्बन है अतः उपचार से वह हमारे भावों का भी आलम्बन है।[२] इस दृष्टि से विचार किया जावे तो नारी हमारे जीवन का ही आलम्बन है और जिन परिस्थितियों में नारी का यह आलम्बन स्वरूप जीवन को प्राप्त होता है तथा अपनी उद्दीपनमयी चेष्टाओं द्वारा जीवन को अनुप्राणित करता है उसे देखते हुए उसके स्वरूप सीमित नहीं विविध ही होते हैं। जिसकी स्नेहिल छाया जन्म से मृत्यु पर्यन्त जीवन के साथ रहती है और परिस्थितियों के अनुसार जिसमें परिवर्तन होता रहता है जो जीवन के मूल भावों को अपनी चेष्टाओं द्वारा उद्दीपित करने का कार्य भी करती है, उस नारी को रीति-ग्रन्थों के निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर एकाधिक भावों का आलम्बन मात्र मान लेना कुछ उचित नहीं

---

८२ नूरजहाँ पृ० १९।

१ भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा पृ० ८।

२ रसमीमांसा पृ० १११।

जान पड़ता। अतः विभावों के अंतर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में व्यंजित नारी के विभिन्न आलम्बन स्वरूपों पर विचार करते समय हम इस बात पर भी विचार करेंगे कि अपनी उद्दीपनमयी चेष्टाओं के अंतर्गत नारी किन परिस्थितियों का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होती है और इन परिस्थितियों का 'कारण' 'निमित्त' या 'हेतु' होने के कारण नारी अपने किस स्वरूप में अभिव्यंजित होती है।

शास्त्रीय दृष्टिकोणानुसार शृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायिका भेद का स्थान आता है। नायिका भेद की दृष्टि से नायिका की व्यावहारात्मक प्रवृत्ति के अंतर्गत जाति अनुसार धर्मानुसार, वयानुसार अवस्थानुसार एवम् गुणानुसार अनेकानेक भेद-विभेद किए गए हैं। हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नायिका-भेद के लक्षणों को सामने रख कर नारी की चरित्र-सृष्टि नहीं हुई है और न उसके भावों का निरूपण ही। 'स्त्री-भेद-वर्णन'[३] एवम् स्त्री भेद-वर्णन खण्ड[४] के नाम से जाति-अनुसार किए जानेवाले भेद का भी केवल रासो एवम् पद्मावत को छोड़कर अन्य महाकाव्यों में अभाव है। धर्मानुसार किए जानेवाले विविध भेद की दृष्टि से भी हिन्दी के अधिकांश महाकाव्यों में स्वकीया नायिका का ही प्राधान्य है। परकीया के भी रूप यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं किन्तु सामान्या नायिकाओं के नाम पर रासो की चित्ररेखा एवं नूरजहाँ की अनारकली को छोड़कर सामान्या नायिकाओं का भी हिन्दी-महाकाव्यों में अभाव है। चित्र-रेखा एवम् अनारकली की चरित्र-सृष्टि भी कुछ ऐसे ढंग से हुई है कि वे नायिका-भेद के लक्षणानुसार सामान्या सिद्ध नहीं होती। उन्होंने अपने प्रेम का जो मूल्य चुकाया है, वह किसी उत्तमा नायिका से कम नहीं है। इसी प्रकार गुणानुसार भी हिन्दी-महाकाव्यों में उत्तमा मध्यमा एवम् अधमा नायिकाओं की व्यंजना हुई है किन्तु अधमा के चित्र बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं। यही हाल वयानुसार एवं अवस्थानुसार किए जानेवाले भेदों का भी है। खींच-तान कर लक्षणों के अनुसार उन्हें नायिका-भेद की चौखट में खड़ा किया जा सकता है किन्तु वह उनकी वास्तविक भावाभिव्यक्ति को प्रकट करने में असमर्थ सिद्ध होता है। अतः नायिका भेद के निश्चित आधारों के आधार पर प्रस्तुत किए जानवाले भेद-विभेदादि द्वारा व्यक्त होनेवाले नायिका के इन लक्षणबद्ध स्वरूपों की चर्चा न करते हुए, विभावों के अंतर्गत केवल 'नारी' के रूप में ही उसके विविध स्वरूपों पर विचार करना उत्तम होगा क्योंकि 'लक्षण' से 'लक्ष्य' का स्थान कहीं अधिक महत्वपूर्ण एवम् उपादेय होता है।

शुक्लजी के मतानुसार रीति-ग्रन्थों की बदौलत रस-दृष्टि परिमित हो गई है। वे इस बात को भी मानते हैं कि बुद्धि की व्याप्ति के लिये मनुष्य को जिस प्रकार

३ रासो समय २५। ४ जायसी ग्रन्थावली पृ० २०७, ८।

विस्तृत एवम् अनेक रूपात्मक क्षेत्र मिला है, उसी प्रकार भावों की व्याप्ति के लिए भी'।[४अ] ऐसी स्थिति इस परिमितता के मोह को छोड़ कर आगे की ओर दृष्टि डालने पर शास्त्रीय सिद्धांतों के बजाय व्यवहारिक रूप पर विचार करना होगा। नारी का आलम्बन-स्वरूप निर्धारित करते समय शास्त्र सम्मत मार्ग का परित्याग दुस्साहस अवश्य है क्योंकि सदियों से चली आई वासनात्मक दृष्टि का परित्याग करना राज मार्ग को छोड़ कर पगडंडी पकड़ने के समान है। फिर भी यह दुस्साहस करने का प्रयत्न केवल इसी दृष्टिकोण से किया गया है कि इस सुनिश्चित पथ के अतिरिक्त अगर पगडंडियों पर भी विचार कर लिया जावे तो अनुचित न होगा क्योंकि ये पगडंडियां भी अपना कुछ हेतु तो रखती ही हैं। साथ ही नारी का यह आलम्बन स्वरूप निर्धारित करते समय हम उन उद्दीपनमयी चेष्टाओं पर भी विचार करेंगे जो नारी के स्वरूप विशेष के निर्धारण का हेतु हुई हैं।

रति भाव की पुष्टि अथवा प्रेम के प्रस्फुरण में नारी अपने जिस आलम्बन स्वरूप में दृष्टिगोचर होती है, वह उसके विविध स्वरूपों को हमारे सामने रखता है। प्रथम के अन्तर्गत उसका अनुपम सौंदर्य आता है जो अपनी मूकता द्वारा भी प्रेम-भाव को प्रस्फुटित कर भाव-व्याप्ति का मूक आलम्बन सिद्ध होता है। जैसे—

करत बत कही अनुज सन मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरन्द छवि करै मधुप इव पान॥[५]

अपनी मूकता में भी नारी का यह आलम्बन स्वरूप रति भाव का हेतु होता है क्योंकि—

कन्या सुन्दर काम रंग रखती अंगांग में है यदा
आती है रति रेख भी युवक के उत्फुल्ल नेत्राब्ज में
क्रीड़ा कामिनी की युवा हृदय का संकोच, दोनों तदा
होते स्वर्ग प्रकाश से सुरभि से सारंग से विम्ब हैं।[६]

द्वितीय के अन्तर्गत उसकी भाव भंगिमाएं, शारीरिक चेष्टाएं या क्रिया-कलाप आते हैं जो अपने आप में मूक रह कर भी सुप्त प्रेम को मुखरित कर देते हैं। यथा—

छूते मसृण भुज मूलों से वह आमंत्रण था मिलता,
उन्नत वक्षों में आलिंगन, सुख लहरों सा तिरता।
मौवा हो उठता जो धीमे धीमे निश्वासों में
जीवन का ज्यों ज्वार उठ रहा, हिमकर के हासों में।[७]

४अ रस मीमांसा पृ० ११२ ११३। ६ सिद्धार्थ पृ० ७७।
५. मानस बालकांड पृ० २१८। ७ कामायनी पृ० ११६।

अथवा

पहुंच के वह पास कुमार के विपुल विभ्रम युक्त चढ़ी हुई
कुच मिला कर, चपल भौंह से, 'तुम मिले मुझको' कहती हुई।[८]

तृतीय के अंतर्गत उसका वह मुखरित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है जो वाणी-विलास द्वारा अपनी उद्दीपनमयी वाचिक चेष्टाओं से संयुक्त होकर प्रेम भाव को जागृत एवम् उद्दीपित करने का हेतु होता है। उदाहरणार्थ—

पिउ आयसु माथे पर लेऊं। जो मंगि मइ नैह सिर देऊं॥
पै पिय! बचन एक सुनु मोरा। चाखु पिया! मधु थोरे थोरा॥[९]

अथवा

उसने कहा हटो सम्हलो तो देखो कोई आया।
छोड़ उसे वह लगा देखने इधर उधर घबराया॥
देख न कोई पुन: खींच कर चुम्बन की वर्षा कर।
बार बार आलिंगन करके नया हर्ष में वह भर॥[१०]

उक्त उदाहरणों में 'थोरे थोरा' एवम् 'हटो सम्हलो तो' में जो वाणी-विलास व्यक्त हुआ है वह प्रेम भाव का आलम्बन ही नहीं अपनी सांकेतिकता के अंतर्गत भावोद्दीपन का भी हेतु है।

वैवाहिक जीवन प्रेम का परिपुष्ट सामाजिक स्वरूप है। इसके अंतर्गत नारी के जो आलम्बन स्वरूप हमारे सामने आते हैं, वे प्रधानत: चार रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं—विनयात्मक रूप में विनोदात्मक रूप में विषादात्मक रूप में और विवेकात्मक रूप में। अपने चारों ही रूपों में वह दाम्पत्य भावना को पुष्ट बनाती हुई रति भाव के पोषण का हेतु होती है।

विनयात्मक रूप में नारी की विनय-भावना के साथ अश्रु का सम्मिलित हो ...ना भावोद्रेक का कारण हो जाता है और इस सम्मिलित स्वरूप द्वारा रति-भाव ...था प्रेम भावना को बल प्राप्त होता है। जैसे—

नम्र स्वर में वह बोली 'नाथ
बढ़ाई कैसे दुख में हाथ।
बताओ यदि हो कहीं उपाय'
टपाटप गिरे अश्रु असहाय॥[११]

...दार्थ पृ० ७१।
...यसी ग्रंथावली पृ० १४१।
१० नूरजहाँ पृ० ५०।
११ साकेत सर्ग ४। ८।

विनोदात्मक रूप में नारी की विनोद भावना के साथ व्यंग एवम् मुस्कान मिल कर अनुराग वृद्धि के 'निमित्त' ही होते हैं—

कर बढ़ा कर जो कमल सा खिला
मुस्कराई और बोली उर्मिला
'मत्तगज बन कर विवेक न छोड़ना
कर कमल कह कर न मेरा तोड़ना।'[12]

विवादात्मक रूप में नारी का मान कलह का रूप ग्रहण कर जब कटु वचन कहने पर उतारू हो जाता है तो यह मान दाम्पत्य भावना का सहज अंग होने के कारण क्षोभ-संयुक्त होकर भी अनुराग वृद्धि का ही हेतु बन जाता है। उदाहरणार्थ—

बसत कपट उर जदपि महाना। सत्य कुशल नहिं तुम सम आना।
वंचत कहि कहि 'प्राण पियारी', मानत हृदय तुच्छ मोहिं नारी।
नित्य विवाह मञ्जुलाचारा, एकहु संग नहिं हृदय तुम्हारा।
स्वेच्छाचारी अंकुशहीना, आत्म निरत तुम नेह विहीना।[13]

विवेकात्मक रूप में नारी अपनी धर्म एवम् कर्तव्य बुद्धि द्वारा जिस भावना को व्यक्त करते दृष्टिगोचर होती है और इस भावना के साथ विश्वास एवम् दृढ़ता का जो स्वर व्यक्त होता है वह निसंदेह प्रेम-भाव का पोषक ही है। यथा—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनि हुं ते ताते।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति विहीन सबु सोक समाजू।
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।
प्राण नाथ तुम बिनु जग माहीं। मो कहु सुखद कतहुँ कछु नाहीं।[14]

इसके अतिरिक्त पुत्र विषयक रति अथवा वात्सल्य भाव की पुष्टि की दृष्टि से नारी का स्नेह शंकाकुल स्वरूप वात्सल्य व्यंजना का हेतु होकर आलम्बन की स्थिति में परिलक्षित होता है। उसकी कातरता अथवा उसका वर्णन वात्सल्यजनित स्नेह को उद्दीपित करता ही जान पड़ता है जैसे—

कहाँ रहा नटखट ! तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना।
अरे पिता के प्रतिनिधि तूने भी सुख दुख तो दिया घना,
चंचल तू बनचर मृग बन कर भरता है चौकड़ी कहीं
मैं डरती हूँ तू रूठ न जाये करती कैसे तुझे मना।[15]

---

१२ साकेत पृ० ३३।
१३ कृष्णायन पृ० १४२।
१४ मानस अयोध्याकाण्ड पृ० ४६५।
१५ कामायनी पृ० १७६।

नारी की नाटकीय उपस्थिति अथवा उसका 'नारी-चरित्र' हास का आलम्बन बन कर अपनी उद्दीपनमयी चेष्टाओं द्वारा हास-भाव को उद्दीपित करता भी दृष्टिगोचर होता है—

> भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी।
> उतर देइ नहिं लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आंसू।।[१६]

यहां मंथरा का सिसकारें भर कर आंसू ढारना 'नारी चरित्र' से संयुक्त होकर ही हास का आलम्बन बन पाया है और भावोद्दीपन का हेतु हुआ है अन्यथा किसी को रोते देख कर हंसना मनुष्यता नहीं बर्बरता का ही परिचायक हो सकता है।

नारी का प्रिय-वियोगी स्वरूप जब करुणा की प्रतिमूर्ति बन कर विकल उठता है और प्रिय की स्मृति प्रलाप की तरह व्यक्त होने लगती है तो उसका यह स्वरूप युत सहानुभूति को उद्दीपित कर सहृदय जन के शोक का कारण बन जाता है और करुणा का आलम्बन। जैसे—

> रुदन से परिप्लावित लोचना, हृदय को युग हाथ से थाम के।
> बिलपती बहु भांति यशोधरा, विरह आकुल हो कहने लगी।
> 'अहह, नाथ, कहां! मम प्राण हैं! हृदय के धन, जीवन सार हैं!
> विरह वारिधि में तज के मुझे, तुम कहां किस ओर चले गये?'[१७]

अपने हठीले स्वभाव के कारण चाहे वह प्रेमजन्य क्यों न हो, नारी कभी-कभी प्रतिकूल आचरण के कारण क्रोध-भाजन हो उठती है और उसकी स्नेहजन्य चेष्टायें भी क्रोध को उद्दीप्त कर, क्रोध-प्रकाशन का हेतु बन जाती हैं। बादल की पत्नी का यह प्रतिकूल आचरण क्रोध का आलम्बन ही बनता है—

> पायन्ह धरा लिलाट धनि, बिनय सुनहु हो राय।
> अलक परी फंदवार होई कैसेहु तजै न पाय।।[१८]

व्यावहारिक क्षेत्र में प्रायः नारी हतोत्साही पुरुष को उत्साहित करती भी दृष्टिगोचर होती है। नारी द्वारा किया जानेवाला उत्साह-वर्धन का यह प्रयत्न, कहीं तो लड़खड़ाते उत्साह का आलम्बन बन कर सामने आता है और कहीं अपनी उद्दीपनमयी चेष्टाओं द्वारा पथ भ्रांत वीरत्व को गुमराह होने से बचाते हुए, उत्साह-वर्धन का हेतु होता है। उदाहरणार्थ—

---

१६ मानस अयोध्याकांड पृ० ४१२। १८ जायसी ग्रंथावली पृ० २८४।
१७ सिद्धार्थ पृ० १२५।

कहा आगंतुक ने सस्नेह 'अरे तुम इतने हुए अधीर।
हार बैठे जीवन का दाँव जीतते मरकर जिसको वीर।
बन रहे हो अपने ही बोझ, खोजते भी न कहीं अवलम्ब,
तुम्हारा सहचर बन कर क्या न उऋण होऊँ मैं बिना विलम्ब।[१९]

अथवा

तो क्या यों कायर सा छिप कर हत्या को जाते हो।
मिट्टी में क्षत्रिय कुल गौरव अपना मिलवाते हो?
ऐसा पतित काम करने से तनिक नहीं शरमाये।
धन के लालच से पूर्वज का नाम हँसाने आये॥[२०]

परिस्थिति विशेष में नारी या तो प्रेमियों के लिए भय की वस्तु हो सकती है या कामियों के लिए। हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि में क्रुद्ध नारी का अज्ञात कोप भय एवम् विस्मय दोनों का ही हेतु हुआ है। कैकेयी को शिकार न पाई हुई सिंहिनी के समान सविकार सोती देखकर अनिष्ट की आशंका एवम् अज्ञात कोप का रहस्य, दशरथ के मन में क्षुब्ध भय तथा विस्मय को उद्दीपित ही नहीं करता अपितु, उसके 'बाहुल्य' का निमित्त बनता है। यथा—

पधारे जब भीतर भूपाल वहाँ जाकर देखा जो हाल
रह गये उससे वे हत क्षुब्ध बढ़ा भय विस्मय का बाहुल्य।
न पाकर मानों अपना शिकार, सिंहिनी सोती थी सविकार।[२१]

इतना ही नहीं कभी-कभी विषम परिस्थिति में आक्रुद्ध नारी की आहत-सी वाणी, आक्रोश से संयुक्त होकर जब धर्माभिमानियों के शास्त्र-स्मृति ज्ञान को चुनौती देती दृष्टिगोचर होती है तो उसकी यह उद्दीपनमयी पीड़ा भीष्म-से दृढ़ व्रतियों के मन में भी ग्लानि के उद्गम का कारण बन जाती है। द्रौपदी की चुनौती और भीष्म की स्थिति तो देखिए—

'भीष्म, विदुर, कृप द्रोण नृप सेवहिं धर्म अभिमान।
बैठे कस सब मौन गहि कहाँ शास्त्र श्रुति ज्ञान?'
व्याकुल भीष्म न ग्रीवा उठावा, बोलत दुखमय वचन सुनावा
'अब असंख्य देखेउ जग माहीं नहिं ते अधिक नीच जन नाहीं।
व्यर्थ मोहिं कस दैव जियावा बहु मान मम लखत नशावा।'[२२]

---

१९. कामायनी पृ० ५८, ५९।
२०. नूरजहाँ पृ० १०१।
२१. साकेत पृ० ५६।
२२. कृष्णायन पृ० ४२४।

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में व्यक्त नारी के उक्त विविध स्वरूपों और उनकी उद्दीपनमयी चेष्टाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी किन परिस्थितियों में किन भावों को अवलम्ब देने और उद्दीपित करने का 'हेतु' हुई है। यदि भरत मुनि के मतानुसार 'विभाव विशेष ज्ञान का अर्थ रखता है' और विभाव कारण निमित्त हेतु-ये पर्यायवाची हैं तो 'विशेष ज्ञान' का 'हेतु' बनी नारी के विभावों के अंतर्गत व्यक्त उक्त स्वरूप सार्थक हैं चाहे उक्त स्वरूप शास्त्रीय कसौटी पर सही टंच साबित न होते हों। यदि कारण निमित्त या हेतु विभाव के पर्यायवाची नहीं हैं और शास्त्र सम्मत होने के बाद भी नायिका भेद को आचार्य त्रिवेदी जैसे विद्वानों द्वारा 'काव्य की विडम्बना'[23] का दर्जा प्राप्त हो सकता है तो मैं अपने इस दृष्टिकोण को सविनय 'मति-भ्रम' मान लेने के लिए तैयार हूँ। उक्त विवेचन को एक दृष्टिकोण के रूप में ही मैंने विभावों के अंतर्गत रखा है, किसी सिद्धांत के रूप में नहीं। शुक्लजी के कथन के आधार पर ही मैंने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है। शुक्लजी का कथन है कि 'किसी भावोद्रेक द्वारा परिचालित अंतर्वृत्ति जब उस भाव के पोषक स्वरूप गढ़ कर या काट-छाँट कर सामने रखने लगती है तब हम उसे सच्ची कवि-कल्पना कह सकते हैं।'[24] हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में विभावों के अंतर्गत नारी की स्वरूप व्यंजना में व्यक्त इसी कवि-कल्पना को स्पष्ट करने का प्रयास उक्त विवेचन द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

अनुभावों के अंतर्गत नारी के कायिक मानसिक एवम् सात्त्विक कार्य-कलाप और उनका स्वरूप

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में अनुभावों के अंतर्गत नारी के विविध कार्य कलापों एवम् उनके स्वरूप की जो व्यंजना हुई है, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

कायिक अनुभाव के अंतर्गत कटाक्ष आदि कृत्रिम आंगिक चेष्टाओं द्वारा नारी के कार्य-कलाप व्यक्त होते हैं। मन की बात वाणी द्वारा प्रकट न करते हुए भी नारी जब अपनी आंगिक चेष्टाओं द्वारा भाव प्रकाशन का प्रयत्न करती है तो उसके इस कार्य कलाप का स्वरूप चेष्टाजनित होता है। जैसे—

> बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी, पिय तन चित भौंह करि बाँकी।
> खंजन मंजु तिरीछे नैननि निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सैननि ॥[1]

---

२३ रस रंजन पृ० ७१।

२४ भ्रमर-गीत सार, भूमिका पृ० २८।

१ मानस अयोध्याकांड पृ० ४१७।

अथवा

होकर विनमित यौवन के नव कुसुम भार से भोरी।
है भीत लंक लचकाती कर चितवन से चितचोरी॥
वन वीचि विलास सरित की वह रस ही रस बरसाती।
आँखों को नचा नचा कर, छल केतु ध्वजा फहराती॥[२]

मानसिक अनुभाव के अंतर्गत नारी-मन के आमोद-प्रमोद प्रकट होते हैं। अतः करण की वृत्ति से ही ये उत्पन्न होते हैं। मानसिक अनुभावों द्वारा व्यक्त नारी के क्रिया-कलापों का स्वरूप बाह्य भावों से लक्षित होकर भी मनोवृत्तिगम्य होता है। दूसरे शब्दों में इस आंतरिक तत्त्व का लक्षित स्वरूप माना जा सकता है। जैसे—

तनिक रुक गई भोली बाल, 'इसे अलाप कहूँ कि प्रलाप ?'
अधर पर एक मधुर मुस्कान, ओस सी लहरा गई अजान॥[३]

अथवा

हर्षित हरि आवेउ पुनि सैनन 'आवेउ सांझ जानि संग बैनन।
'अहहीं' कहेउ प्रकट हँसि बाला गवनि भवन वियोग विहाला॥[४]

सात्विक अनुभाव के अंतर्गत नारी के अकृत्रिम अंग-विकार हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। सात्विक अनुभाव स्वतः उद्भूत होते हैं और सत्व गुण से उत्पन्न होने के कारण सात्विक कहे जाते हैं। अतः इन अनुभावों के अंतर्गत नारी के कार्य-कलाप अपने सात्विक रूप को प्रकट करते हैं। सात्विक अनुभाव आठ प्रकार के होते हैं जिनके अंतर्गत नारी के कार्य-कलाप हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में इस प्रकार व्यक्त हुए हैं —

१ स्तम्भ —हर्ष भय लज्जा विस्मय विषाद आदि से शरीर के अंगों का यथासमय रुक जाना स्तम्भ कहलाता है। प्रेम-विवशता के अंतर्गत नारी का स्तंभित स्वरूप देखिए—

चतुर सखि लखि कहा गुसाईं। पहिरावहु जयमाल सुहाईं।
सुनत जुगल कर माल उठाईं। प्रेम विवस पहिराव न जाई॥[५]

दुःसमाचार सुनकर भी नारी अपने स्तंभित स्वरूप में दृष्टिगोचर होती है—

कैकेयी का मुख भी न खुला, पाषाण शरीर हिला न डुला।

---

२ नूरजहाँ पृ० ९४।
३ साकेत सर्ग १। १५।
४ कृष्णायन पृ० ५५।
५ मानस, बालकाण्ड पृ० २६१।

बस रुक सी गईं बड़ी आँखें, मानों थीं यहीं खड़ी आँखें ।।[6]

२ स्वेद :—यह ताप भय हर्ष, श्रम दुःख आदि से उत्पन्न होता है। सुकुमारता के कारण यात्रा-श्रम से नारी के मुख पर श्रम-बिन्दु का झलक आना स्वाभाविक है। यथा—

चरणों पर कण और मुखों पर बिन्दु थे,
रजःपूत थे पद्म अमृत पूत इन्दु थे ।[7]

हर्षजनित स्वेद भी नारी में दृष्टिगोचर होता है—

सूर्य सुता पाथेय पतिहि, तपफल योग, तप त्याग ।
लाज विलोचन स्वेद अंग रोम रोम अनुराग ।[8]

३ रोमांच —यह हर्ष भय शीत तथा क्रोध आदि से उत्पन्न होता है। किसी कारण से रोमों का खड़ा हो जाना रोमांच कहलाता है। हर्ष से रोमांचित नारी की झलक देखिए—

लाज भी मनोज ने हवाले हनि त्रास परी
मुख सों यदपि कछु कहत न पाई है ।
दोनों भुज मैनी के सरीर की गन्धि भेदि,
रोमावली व्याज सों मनहु कढ़ि आई है ।।[9]

४ स्वर-भंग —भय हर्ष क्रोध मद आदि से स्वाभाविक ध्वनि में विकार उत्पन्न होने पर स्वर भंग पाया जाता है। भावातिरेक के कारण नारी के स्वर भंग का स्वरूप गद्गद् बोल के रूप में प्रकट होता है—

स्नात करके सखी नवला ललित कर्ण कपोल
भिन्न पुलक कदम्ब सा था भरा गद्गद् बोल ।[10]

५ कम्प —क्रोध भय शीत आनन्द आदि से कंप उत्पन्न होता है। नारी में भय एवम् आनन्दजनित कंप क्रमशः इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

सिहर बेचारी सो कांप उठी संभली पति बांह पकड़ ।
मन करता सा जाता था प्राणों की धड़क रही धड़ धड़ ।।[11]

---

६ साकेत पृ० १७८ ।
७. वही पृ० १२५ ।
८. कृष्णायन पृ० ३२९ ।
९ रावण महाकाव्य १ । ३१ ।
१० कामायनी पृ० ६४ ।
११ नूरजहाँ पृ० ११२ ।

तथा

बढ़ि करन हरि विधि बढ़ि पूजा, बरेउ एक पद बढ़ेउ न दूजा।
बिसरे सुमन प्रकंपित बामा गहेउ हस्त सस्मित घन स्यामा॥[12]

६ वैवर्ण्य —मोह, क्रोध भय श्रम शीत ताप आदि से इसकी उत्पत्ति होती है। नारी में यह वैवर्ण्य उसकी मुख-छवि को परिवर्तित अथवा मलिन करता दृष्टिगोचर होता है—

विकसिता कलिका हिम पात से, तुरत ज्यों बनती अति म्लान है।
सुन प्रसंग मुकुन्द प्रवास का मलिन त्यों वृषभानु सुता हुई॥[13]

अथवा

कुम्हलाई यथा केर वाली, या ग्रस्त चन्द्र की उजियाली।
मुख कांति पड़ी पीली पीली आँखें अशांत नीली नीली॥[14]

७ अश्रु —आनन्द भय शोक क्रोध घृणा अपमान आदि से अश्रु छलछला आते हैं। नारी में इस अनुभाव का प्राधान्य है। आनन्द हो या शोक, भय हो या क्रोध संयोग हो या वियोग प्रायः सर्वत्र ही यह अश्रु मय दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ—

हलक पलक से थे अश्रु आते क्षणों में,
घन कलित कपोलों में बसी पांडुता थी।[15]

अथवा

नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तेहि बिनु अंग लाग सर चीरू॥
टपटप बूँद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारे झोला॥[16]

या

अश्रु भरे रुक्मिणी नयन भये सरीप अँगार,
इक कर पोंछत हरि रुधिर, इक लोचन जलधार॥[17]

अथवा

तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम तें उठीं सब रोइ॥[18]

---

१२. कृष्णायन पृ० १२५।
१३ प्रियप्रवास ४। २६।
१४ साकेत पृ० १६०।
१५. सिद्धार्थ पृ० २४७।
१६ जायसी ग्रं० पृ० १५५।
१७ कृष्णायन पृ० २४६।
१८. रामचन्द्रिका १०। १०।

८—प्रलय —श्रम मोह मद निद्रा मूर्च्छा आदि से यह उत्पन्न होता है। देह-दशा की विस्मृति को प्रलय माना जाता है। प्रलय के अन्तर्गत नारी का निश्चेष्ट स्वरूप ही अभिव्यक्त हुआ है। जैसे—

देखत नैन सुमुखि न दिसि परिय भूमि सँभार।
सँजोगी जोगिन भई अब वनिताय परिवार ॥[19]

अथवा

इधर उर्मिला मुग्ध गिरी, कह कर 'हाय ! धड़ाम गिरी।'[20]

कायिक मानसिक एवम् सात्विक अनुभावों के अतिरिक्त आहार्य अनुभाव भी होता है किन्तु नारी की वेश-रचना की चर्चा को भाव भूमि के अंतर्गत वृथा जान कर ही यहाँ उसका निरूपण नहीं किया गया है। इसी प्रकार उन मद्रावादित अनुभावों की चर्चा भी जो नारी के अंगज अयत्नज एवम् स्वभावज अलंकार माने गए हैं यहाँ इसलिए नहीं की गई है कि उनकी गणना अलंकारों के रूप में ही विशेष रूप से की जाती है। अनुभाव अनेक हैं। अतः विस्तार भय के कारण हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में कायिक मानसिक एवम् सात्विक अनुभावों के अन्तर्गत ही नारी के विविध कार्य-कलापों एवम् उनके स्वरूप का विवेचन यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में अनुभावों के अन्तर्गत व्यक्त नारी के कार्य-कलाप भावाभास के हेतु ही सिद्ध होते हैं। दूसरे शब्दों में इन कार्य-कलापों को भावानुभव का साधन माना जा सकता है।

संचारी भावों के अन्तर्गत नारी-जीवन की विविध तरंगावलियाँ

शास्त्रीय दृष्टिकोण से संचरणशील अर्थात् अस्थिर मनोविकारों या चित्त-वृत्तियों को संचारी भाव की संज्ञा प्रदान की गई है।[1] संचारी भाव रस के उपयोगी होकर जल-तरंग की भाँति उसमें संचरण करते हैं। संचरण ही संचारियों का गुण है क्योंकि ये भाव रस की सिद्धि तक स्थिर नहीं रह पाते हैं। शुक्लजी के कथनानुसार 'जो भाव ऐसे हैं जिन्हें किसी पात्र को प्रकट करते देख या सुनकर श्रोता या पाठक भी उन्हीं भावों का सा अनुभव कर सकते हैं वे तो प्रधान भावों में रखे गए हैं शेष भाव और मन के वेग संचारियों में डाल दिये हैं।[2] अतः यह स्पष्ट है कि संचारियों के अन्तर्गत जीवन का संचरणशील स्वरूप ही दृष्टिगोचर हो सकता है।

---

१९. रासो, समय ६६। ६४१।
२०. साकेत पृ० ११२।

१ काव्य-दर्पण पृ० ८४।
२ रस मीमांसा पृ० २०२, २०३।

हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि के आधार पर, संचारी भावों के अंतर्गत नारी जीवन की जो विविध तरंगावलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उन्हें हम नारी के जीवन-सागर की संचरणशील भाव-तरंगें मान सकते हैं। सचारियों की तरह इन भाव-तरंगों का स्वरूप भी विविधता का व्यंजक है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—

निर्वेद की दृष्टि से नारी के जीवन में ऐसे क्षण आ उपस्थित होते हैं जब ईर्ष्या अपमान आपत्ति, व्याधि, इष्ट-वियोग दारिद्र्य अथवा आक्षेप के कारण वह दीन चिन्तित मलिन अथवा अश्रु विगलित हो उठती है। अपने लाड़ले लाल का वियोग नारी को जिस स्थिति में ला खड़ा करता है, वह स्थिति जीवन को निस्सार-सा अनुभव करती हुई विरक्ति से परिपूर्ण हो उठती है और नारी का जीवन निराशाजनित निर्वेद भावना से भर जाता है—

विधिवश हम में हा ! शक्ति बाकी नहीं है।
तन तज सकने की हो गयी क्षीण ऐसी।
वह इस अवनि में भाग्यवाली बड़ी है।
अवसर पर सोवे मृत्यु के अंक में जो।
बहु कलप चुकी हूँ त्रस्त भी हो चुकी हूँ।
जग कर कितनी ही रात रो चुकी हूँ।
अब न हृदय में रक्त का लेश बाकी।
तन बल मात्रा में सभी खो चुकी हूँ।[१]

मनस्ताप श्रम दुःख अथवा क्षोभ के कारण जब नारी में हृदयजनित विकलता शिथिलता असहनशीलता अथवा अनुत्साह दृष्टिगोचर होने लगता है तो नारी-जीवन ग्लानि से भर उठता है। मर्यादा एवम् शील का परित्याग कर गुरुजनों के समक्ष उपस्थित होने पर बाध्य करना नारी-जीवन की सबसे बड़ी ग्लानि का क्षण होता है। उदाहरणार्थ—

पद पद द्रुपद सुता बिलखाती करत कादृ पामर अभागी।
सकल न रजस्वला में नारी परस निषिद्ध अंग इक सारी।
ताहुँ पाय जो गुरुजन आगे लावहि पातक लवहि प्रमाये।[४]

इष्ट-हानि अथवा अनिष्ट की आशंका मात्र से नारी में विवर्णता स्वर-भंग कंठ का उठना अथवा कंठ-अवरोध का सूख जाना स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होने लगता है और नारी-जीवन शंका से उद्वेलित-सा हो उठता है—]

---

१ प्रियप्रवास ७। ४१, ४२। ४ कृष्णायन पृ० ४२१।

मंदोदरि पर संपति भारी। प्रतिभा स्त्रबहिं नयन मग वारी।[५]

प्रसूया भाव नारी-जीवन को ऐसे क्षणों में कम्पुषित करता दृष्टिगोचर होता है जब दूसरे का उत्कर्ष न देख सकने के कारण या तो नारी दूसरे के दोषों को प्रकट करने लगती है या तिरस्कार, क्रोध अथवा निन्दा की शरण लेती है। जैसे—

उसका निबाह होवे उससे जो सौदागर की जाई है।
जिसके कुल का कुछ पता नहीं जो ठोकर खाती धाई है।
मुझको तो बात खटकती है उसकी दुनियाँ दिखलाती है।
यह नाटक नित ही होता है वह रोज बाग में आती है।[६]

आनन्द का मोहयुक्त अतिरेक नारी में मद के रूप में दृष्टिगोचर होता है। मद के क्षणों में नारी-जीवन मादकता से भर उठता है और यह मादकता मोम बने अंगों को बल खिलाते हुए, प्रलय को भी स्वप्नवत् बना देती है—

सब अंग मोम से बनते हैं कोमलता में बल खाती हूँ,
मैं सिमिट रही अपने में, परिहास गीत सुन पाती हूँ।
स्मित बन जाती है तरल हँसी, नयनों में भरकर बांकपना
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो वह बनता जाता है सपना।[७]

अपनी सुकुमारता के कारण श्रम के क्षणों में नारी पसीना-पसीना हो उठती है साँस फूलने लगती है और मुख सूख जाता है—

प्यासे कांति पथ से लथ पथ तलवे बाट माँगते जल।
झलके के मोती का पानी पिला प्रण्हूँ करती शीतल॥
कांटा हुई जबान प्यास से कौंध झूलता है जाता।
चारों ओर विकट मरुस्थलो का है दृश्य नजर आता॥[८]

परिश्रम व्याधि जागरण अथवा मर्मान्तिक पीड़ा के क्षणों में नारी में आलस्य भाव दृष्टिगोचर होता है। यथा—

जागत रैनि जाइ गिन तारा। गई आलस सोवत बेकरारा।[९]

अथवा

निद्राशील सुनेत्र मग्न सुखदा जो स्वप्न की ज्योति थी,
सो होके वह का लगी हृदय की संवाहिका शक्ति से,

---

५ मानस, लंकाकांड पृ० १०४१।
६ नूरजहाँ पृ० ५४।
७ कामायनी पृ० ६८।
८. नूरजहाँ पृ० १२।
९. जायसी ग्रंथावली पृ० १४२।

हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि के आधार पर, संचारी भावों के अंतर्गत नारी जीवन की जो विविध तरंगावलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उन्हें हम नारी के जीवन-सागर की संचरणशील भाव-तरंगें मान सकते हैं। संचारियों की तरह इन भाव-तरंगों का स्वरूप भी विविधता का व्यंजक है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—

निर्वेद की दृष्टि से नारी के जीवन में ऐसे क्षण भी उपस्थित होते हैं जब ईर्ष्या अपमान आपत्ति, व्याधि, इष्ट-वियोग दारिद्र्य अथवा आक्षेप के कारण वह दीन चिन्तित मलिन अथवा अश्रु विगलित हो उठती है। अपने लाड़ले लाल का वियोग नारी को जिस स्थिति में ला खड़ा करता है, वह स्थिति जीवन को निस्सार-सा अनुभव करती हुई विरक्ति से परिपूर्ण हो उठती है और नारी का जीवन निराशाजनित निर्वेद भावना से भर जाता है—

विविवस हम में हा ! शक्ति बाकी नहीं है।
तन तज सकते भी हो गये क्षीण ऐसे।
वह इस अवनि में भाग्यशाली बड़ी है।
अवसर पर सोवे मृत्यु के अंक में जो।
वह कलप चुकी हूँ दग्ध भी हो चुकी हूँ।
जग कर कितनी ही रात रो चुकी हूँ।
अब न हृदय में रक्त का लेश बाकी।
तन बल धारा में क्षमी सी चुकी हूँ।[3]

मनस्ताप श्रम दुःख अथवा क्षोभ के कारण जब नारी में हृदयजनित विकलता शिथिलता असहनशीलता अथवा अनुत्साह दृष्टिगोचर होने लगता है तो नारी-जीवन ग्लानि से भर उठता है। मर्यादा एवम् शील का परित्याग कर पुरुजनों के समक्ष उपस्थित होने पर नाट्य करना नारी-जीवन की सबसे बड़ी ग्लानि का क्षण होता है। उदाहरणार्थ—

पद पद हृ पद सुता बिलखानी, करत काहु पामर अभिमानी।
लखत न रजस्वला में नारी परत निविड़ पंच इक सारी।
काहु भाव जो पुरुजन मागे, नायहि पातक सबहि अभागे।[4]

इष्ट-हानि अथवा अनिष्ट की आशंका मात्र से नारी में विवर्णता स्वर भंग कंठ का उठना अथवा कंठ-शोष का सूख जाना स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होने लगता है और नारी-जीवन शंका से उद्वेलित-सा हो उठता है—)

---

३ प्रियप्रवास ७। ५१, ५२। ४ कृष्णायन पृ० ४९२।

मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी।[५]

असूया भाव नारी-जीवन को ऐसे क्षणों में कलुषित करता दृष्टिगोचर होता है जब दूसरे का उत्कर्ष न देख सकने के कारण या तो नारी दूसरे के दोषों को प्रकट करने लगती है या तिरस्कार, क्रोध अथवा निन्दा की शरण लेती है। जैसे—

उसका निकाह होवे उससे जो सौदागर की जाई है।
जिसके कुल का कुछ पता नहीं जो ठोकर खाती आई है।
मुझको तो व्यर्थ जलाती है, चंचल दुनिया दिखलाती है।
वह नाटक नित ही होता है वह रोज बाग में आती है।[६]

आनन्द का मोहयुक्त अतिरेक नारी में मद के रूप में दृष्टिगोचर होता है। मद के क्षणों में नारी-जीवन मादकता से भर उठता है और यह मादकता मोम बने अंगों को बस पिघलाते हुए, प्रत्यक्ष को भी स्वप्नवत् बना देती है—

सब अंग मोम से बनते हैं, कोमलता में बल खाती हूँ
मैं सिमिट रही सी अपने में, परिहास गीत सुन पाती हूँ।
स्मित बन जाती है तरल हँसी, नयनों में भरकर बाँकपना
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो, वह बनता जाता है सपना।[७]

अपनी सुकुमारता के कारण श्रम के क्षणों में नारी पसीना-पसीना हो उठती है, साँस फूलने लगती है और मुख सूख जाता है—

प्यासी कढ़ि पग से लग लग तलवे चाट माँगति जल।
झलके के मोती का पानी पिला कहूँ करती शीतल ॥
कातर हुई अजान प्यास से साँस फूलता है जाता।
चारों ओर विकल मरुस्थली का है दृश्य नजर आता ॥[८]

परिश्रम व्याधि जागरण अथवा गर्भावस्था के क्षणों में नारी में आलस्य भाव दृष्टिगोचर होता है। यथा—

जागत रैनि भएउ भिनसारा। भई अलस सोवत बेकरारा।[९]

अथवा

निद्रालीन सुनेत्र मध्य मृदुता की स्वप्न की ज्योति थी
सो होके वह था लगी हृदय की संचालिका शक्ति से,

---

५ मानस, लंकाकांड पृ० १०४१।
६ नूरजहाँ पृ० ५४।
७ कामायनी पृ० ६८।
८ नूरजहाँ पृ० १२।
९ जायसी ग्रंथावली पृ० १५२।

साम्राज्ञी प्रवरस्वभार जब से सभार होने लगा,
पत्नी भी निज प्रश्न में प्रथम हो वक्तव्यमाला हुई ।[१]

दुःख-शारीरिक अथवा मनस्ताप आदि से नारी-जीवन में दैन्य का संचरण होता है । ऐसे क्षणों में वह पीड़ित दिखाई पड़ती है—

सैनिक हु अब साथ नहीं । जिनके बल मैं यहि नीके प्रचारौं ॥
रोवत रोवत क्षीन भयो तन । कैसे सरासन की कर धारौं ॥
यहु अबला अस के परिफन्द में । का बिधि सौं अब याहि निवारौं ॥
कौन उपाय सौं है सखि आस । अचानक आई विपत्ति की टारौं ॥[११]

इष्ट वस्तु की अप्राप्ति होने पर नारी चिन्ता से भर उठती है । नारी-जीवन में चिन्ताओं का अभाव नहीं है । यौवनागमन के साथ ही चिन्ता उसे सताने लगती है—

हेम सेत के बर मोहि पावहिं । पिता हमार न आँख लगावहिं ॥
जोबन मोर भयउ जस गंगा । देह देह हम्ह लाग अनंगा ॥[१२]

मोह भी नारी-जीवन का अंग है । भय वियोग दुःख चिंता, सुख आदि के उत्पन्न होते ही चित्त विक्षेप के कारण यथार्थ ज्ञान के होते ही नारी में मोह जागृत हो उठता है—

देखेउ आये कुँवर कन्हाई । भवति कहूँ कहूँ बुद्धि समायी ।
इतने ही मह मायी नन्द रानी । कहति "कहा राधा बौरानी ? [१३]

स्मृति से नारी-जीवन नित्य तरंगित रहता है । किसी भी सादृश्य मूलक वस्तु के अवलोकन मात्र से उसका भावुक हृदय प्रिय की स्मृति में लीन हो जाता है—

नैनोन्मादी बहु मुदमयी नीलमा गात की सौं ।
प्यारे नीले गगन तल के अंक में राजती है ।
भू में शोभा, सुरज बल में वह्नि में दिव्य आभा ।
मेरे प्यारे कुँवर वर सी प्रायशः है दिखाती ।[१४]

नारी-जीवन में धृति के दर्शन उस समय होते हैं जब विपत्ति से लोभ मोहादि के कारण उसका मन चंचल नहीं होने पाता है । जैसे—

मुझे राज्य का खेद नहीं राम भरत में भेद नहीं ।
मझली बहन राज्य लेवें उसे भरत को दे देवें ।[१५]

---

१० सिद्धार्थ पृ० १२ ।
११ पावस महाकाव्य ११ । ११ ।
१२ जायसी ग्रंथावली पृ० २१ ।
१३ कृष्णायन पृ० ७१ ।
१४ प्रियप्रवास १६ । ८७ ।
१५ साकेत पृ० ६६ ।

परिस्थिति विशेष में उठनेवाली लज्जा व्रीड़ा के रूप में प्रकट होती है। पुरुष के समागम-प्रस्ताव से नारी के मन में तरंगित होनेवाली व्रीड़ा का स्वरूप ही विचित्र होता है—

कुछ लतिका सी सघन तब पर न बढ़ती बोल,
खड़ी शिशिर निशीथ में ज्यों ओस भार नवीन।
झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार,
लद गई पाकर पुरुष का नर्म मय उपचार।[16]

प्रेम अथवा ईर्ष्या-द्वेष के कारण जब नारी का चित्त अस्थिर हो उठता है तो चपलता चंचल लहरियों की तरह नारी-जीवन को संगीतमय बना देती है। नारी में अनुरागमूलक चपलता अत्यन्त आकर्षक रूप में प्रकट होती है—

प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥[17]

इष्ट पदार्थ की प्राप्ति अथवा अभीष्ट जन के समागम आदि से प्राप्त आनन्द नारी जीवन में हर्ष के रूप में लहरा उठता है—

भये स्वयंवर हरि तत्काला। मेली हुलसि कुँवरि बर माला॥[18]

सुन्दर अथवा कुरूप, प्रिय या अप्रिय बात के सुनने पर जब नारी अपने शान्त स्वरूप को त्याग कर उत्तेजित हो उठती है तो उसमें आवेग दृष्टिगोचर होने लगता है—

किन्तु चाहे जो कुछ हो आज सहूँगी कभी न यह अन्याय।
करूँगी मैं इसका प्रतिकार, पलट जावे चाहे संसार॥[19]

नारी जिस समय विवेकशून्य अथवा किंकर्तव्य विमूढ़-सी दृष्टिगोचर होती है उस समय उसकी यह चित्तवृत्ति जड़ता के रूप में प्रकट होती है—

सेहुर चढ़ी रह गई वहीं पर हिली न बोली चाली।
मौन मूर्ति बन गई लिये कर में करवाल निराली॥[20]

नारी जब अपने प्रभाव, ऐश्वर्य विद्या अथवा कुलीनता आदि का अहंकार करते हुए स्वयं को अन्य से अधिक समझने लगती है तो उसमें गर्व भाव का उदय होता है। जैसे—

---

१६ कामायनी पृ० ६४।
१७. मानस, बालकांड पृ० २८४।
१८. कृष्णायन पृ० २०८।
१९ साकेत पृ० ९९।
२० नूरजहाँ पृ० ७०।

मैं तो फकीर की बेटी हूँ मेरा तो कुल है अति उत्तम।
सौंदर्य और लावण्य मेरा है नहीं किसी से भी कुछ कम ॥[२१]

इष्ट-हानि असहायावस्था अथवा असफलता के कारण जब नारी निरुत्साह सी होकर अनुताप करती है तो उसमें विषाद जागृत हो उठता है—

चर पर आंसू की धार बहाई सिर पर
अवरुद्ध हो उठा कंठ सिसकियाँ लेकर।
अपनी ऊष्मा में आप जली जाती थी,
स्थिर थी पर फिर भी बही चली जाती थी।[२२]

औत्सुक्य के अंतर्गत नारी में इष्ट कार्य की तात्कालिक सिद्धि की भावना दृष्टिगोचर होती है। ऐसे क्षणों में वह कुछ उतावली अथवा अधीर हो उठती है—

धीरे धीरे श्रवण करके नन्द की बात प्यारी।
जाते जो थे वपुष तजके प्राण थे लौट आये।
आँखें खोलीं हरि जननि ने कष्ट से और बोलीं।
क्या आवेगा कुँवर ब्रज में साथ दो ही दिनों में ॥[२३]

विषयों से निवृत्त होकर नारी जब विश्राम करने की मनःस्थिति में होती है तब निद्रा भाव के दर्शन होते हैं—

पर मन भी क्यों इतना ढीला, अपने ही होता जाता है।
घन श्याम खंड सी आँखों में, क्यों सहसा जल भर आता है ॥[२४]

अपस्मार चित्त की वह वृत्ति है जिसमें मिर्गी रोग के समान लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। वेदना आघात आदि से नारी का हृदय जब दुर्बलता अनुभव करते हुए गिर गिर पड़ता है कम्पित होने लगता है तो नारी-जीवन में अपस्मार परिलक्षित होता है—

दसा जसोमति बरनि न जाती। गिरति भूमि उठि चहति कन्हाई।
धीरति बहुरि गिरत भुवि धरनि। देखत सुत कलपति मन धरनि।[२५]

निद्रा दूर करनेवाले कारणों से अथवा आघात से मिटने पर सचेत होने का नाम विबोध है। स्वप्न के कारण एकाएक कच्ची नींद से जाग पड़ने के बाद नारी का विबोध देखिये—

---

२१ नूरजहाँ पृ० ५२।
२२ साकेत-सर्ग ११। ४१।
२३ प्रियप्रवास ७। ६०।
२४ कामायनी पृ० १०४।
२५. कृष्णायन पृ० ११६।

पुरीयं पश्चात् चरितज्ञ बाल में प्रवाल माला हिलने लगी तथा,
प्रफुल्ल कंजाक्ष नेत्र भी तभी, विपुष्ट हस्ताम्बुज से छिपे गये।[२६]

निन्दा, अपमान मान हानि आदि के कारण जब नारी में चिड़चिड़ाहट अथवा असहिष्णुता दृष्टिगोचर होती है तो वह अमर्ष भाव से संचरित हो उठती है—

अस मन समुझ कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहीं तोही।[२७]

भय गौरव लज्जा आदि से उत्पन्न हर्ष आदि भावों को जब नारी चतुराईपूर्वक छिपाने का प्रयत्न करती है तो उसमें अवहित्था भाव तरंगित हो उठता है—

देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥[२८]

अपमान, घृणित व्यवहार आदि के कारण नारी में उग्रता के दर्शन भी हो उठते हैं—

ऊँची आवाज सों देखि तिन्हैं। मन मानिनी भौंह तरेरि कै बोली॥
'बोलि कहा तुम भेजत हो इतै। नित नई कुलटानि की टोली॥[२९]

जब नारी शास्त्रादि के विचार से किसी तथ्य का निर्णय कर लेती है तो इस निर्णय के अंतर्गत मति की व्यंजना होती है—

जौ पै गाँठि कंत तुम जोरी। आदि अंत लहि जाइ न छोरी॥
यह जग काहु जो अथहि न आथी। हम तुम नाह, दुहूँ जग साथी॥[३०]

रोग, वियोग आदि के संताप से नारी का मन जब व्याकुल हो उठता है तो उसमें व्याधि के दर्शन होते हैं—

सजल नीर भर ही सखी तू कदली की खोर
टपक रहा है देख अब रोम रोम से स्वेद।[३१]

भय शोक आदि से जब नारी का चित्त भ्रान्त हो उठता है तो उसमें उन्माद भाव जागृत होने लगता है—

आके छुट्टी मिलकर फिर यों बालिका व्यग्र बोली।
मेरी बातें तनिक न सुनीं पातकी पातकों ने।

---

२६ सिद्धार्थ पृ० १७२।
२७ मानस सुन्दरकांड पृ० ८६०।
२८ मानस, बालकाण्ड पृ० २११।
२९ रावण महाकाव्य १४। १८।
३० जायसी ग्रंथावली पृ० ३००।
३१ साकेत पृ० २८७।

पीड़ा नारी हृदय तल की नारि ही जानती है।
तुही तू है विकल बनता, शान्ति तू ही मुझे दे ॥[३२]

भाव के अंतर्गत नारी-हृदय की व्यग्रता दृष्टिगोचर होती है—

क्या कर सकती थी मरी मंथरा दासी मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।
जल पंजर गत अब अरे अधीर अभागे, वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे।[३३]

संदेह के कारण जब नारी के मन में ऊहापोह उत्पन्न होता है तो वह वितर्क से पूर्ण हो उठती है—

रहौं लजाइ त पिउ चलै गहौं त कह मोहिं ढीठ।
ठाढ़ि तेवानि कि का करौं दूभर दुऔ बईठ ॥[३४]

नारी-जीवन में उपस्थित होनेवाला वियोग-काल मरण से कम नहीं होता है। वियोग-काल में नारी मृत्यु के समान ही वेदानुभव करती है किन्तु मरण के वास्तविक क्षण उपस्थित होने पर भी कभी-कभी उसके लिये मृत्यु-कष्ट नगण्य-सा हो जाता है। जैसे—

फिर वह बड़ी गोद में प्रिय के प्रतिम प्रिय को झांकी कर।
बार बार रो लगा चूमने होकर विकल अंक में मर ॥[३५]

इस प्रकार हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में संचारी भावों के अंतर्गत भी नारी-जीवन की विविध तरंगावलियां नारी-हृदय में संचरण करने वाले विभिन्न भावों की व्यंजक हैं। नारी के स्थायी भाव-स्वरूप की तरह उसका संचरणशील स्वरूप भी कुछ कम विशेषताएं नहीं रखता है।

भाव-भूमि की विशेषताएं

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि के अंतर्गत व्यक्त नारी-जीवन की भाव-व्यंजना ही अपनी निज की विशेषताओं से अनुप्राणित है। हिन्दी-महाकाव्यों में जहां एक ओर रस की मधुमती भूमिका के साथ नारी-जीवन के विभिन्न भावात्मक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं वहीं दूसरी ओर उसकी भावाभिव्यक्ति उसे एक गौरवशाली व्यक्तित्व भी प्रदान करती है। भाव-वैविध्य के बाद भी हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नारी के प्रति सहृदय दृष्टि का अभाव नहीं है। भाव-व्यंजना की दृष्टि से उसका स्वकीया स्वरूप तो अपने आप में महान् ही है परन्तु परकीया के रूप में भी उसकी जो भाव-व्यंजना हुई

---

३२ प्रिय-प्रवास १२। ८।
३३ साकेत पृ० ९४७।
३४ जायसी ग्रंथावली पृ० २८३।
३५ नूरजहां पृ० ४१।

है, वह पूर्ण सहृदयता के साथ हमारे सामने आती है। नारी के सामान्य स्वरूप को भी हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में सहृदयतापूर्वक व्यक्त किया गया है। सहज अथवा परम्परित स्वरूप ही भाव-व्यंजना के माध्यम नहीं रह पाये हैं और भावना के उत्तरोत्तर विकास द्वारा नारी के कुटिल कठोर कुण्ठाग्रसित स्वरूप को भी मनो विश्लेषण के माध्यम द्वारा खोजने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि का एक छोर यदि तिमिर भूमि चरण के चेरी जैसी भावनाओं से अनुप्राणित होकर चलता है तो अपने दूसरे छोर तक पहुँचते-पहुँचते वह भावना नारी को मङ्गलमय स्वीकार करते हुए उसके सर्वमंगला स्वरूप की स्थापना करती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि 'मोड़' पर न चलते हुए भी अपनी साधना-मय दृष्टि से अनुप्राणित रही है और नवीनता के समावेश द्वारा कालानुसरण एवम् युग दृष्टि की अद्भुत क्षमता रखते हुए इस भाव-भूमि ने अपने साधना-मय भाव-मार्ग को प्रशस्त ही किया है। इस भाव साधना ने जहाँ नारी-चरित्रों को नवीनता प्रदान की है वहीं सदियों की साधना-मय दृष्टि के अंकुश ने उस उच्छृंखल मनोवृत्ति को इस भावभूमि में पनपने का अवसर प्रदान नहीं किया है जो विजातीय या विदेशी है। इसलिये इस भाव-गंगा का जल गदला नहीं हो पाया है। साथ ही युगदृष्टि एवम् साधना-मय दृष्टि के समन्वय के परिणाम स्वरूप भावात्मक आदर्श अनुकरणीय ही न रह कर जीवन से अनुप्राणित भी हो उठा है। अतः हिन्दी-महाकाव्यों की एक हजार वर्षों की यह भाव भूमि नारी की भावात्मक सत्ता की प्राण-प्रतिष्ठा करने में सफल हुई है और 'कुश कांस' की तरह विगत युग की अवास्तविक नारी को अपने भाव-क्षेत्र से उखाड़ कर इस भाव भूमि ने अपनी उर्वरा शक्ति को सुरक्षित बना लिया है।

हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि में नारी की सौन्दर्य-व्यंजना पर विचार करने से पूर्व कला सौन्दर्य एवं नारी का तात्विक विवेचन कुछ आवश्यक-सा हो जाता है। सामान्यतः वस्तु विशेष में प्रदर्शित कौशल को कला की संज्ञा प्रदान की जाती है। काव्य-चमत्कार रस के कथन को ही कला मानते हैं।[1] कला की विभिन्न पाश्चात्य परिभाषाएं[2] कला की महत्ता पर प्रकाश डालती हैं।

नागफेनी कला को शक्ति मानता है और बीन के मतानुसार कला मानस विधान है। इमर्सन कला को ईश्वरीय कार्य का ईश्वरीय मार्ग मानता है और आस्कर वाइल्ड कला में जीवन का रहस्य पाता है। मार्क्स के मतानुसार कला मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा है। जार्ज एलिस कला को पुष्पांकित शिल्प समझता है जबकि रस्किन के मतानुसार कला वस्तुओं को मिथ्या रूप में न रखते हुए सत्य रूप में ही प्रकट करती है। सर जान लुबाक के कथनानुसार जिस प्रकार सूर्य पुष्पों को रंगीन करता है उसी प्रकार कला जीवन को रंगीन बनाती है। बन जानसन एवं जान टेसर ने कला का एकमात्र धतु मज्ञान को माना है। इस प्रकार जितने व्यक्ति हैं, उतनी ही कला की परिभाषाएं हैं और उतने ही कला के स्वरूप हैं। पर प्रायः सभी कलाविद् इस बात पर अपनी सहमति व्यक्त करते हैं कि कला सौन्दर्य की साधना है और सौन्दर्य की अभिव्यंजना ही कला का प्राण-तत्व है।

सौन्दर्य अपने आप में एक कला है। यह वह चमक है जिसका अभाव जीवन को निस्सार कर देता है।[3] सौन्दर्य शास्त्र के प्रवर्तक बामगार्टन ने सौन्दर्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि बुद्धि-क्षेत्र में जिस धर्म या तत्व की अभिव्यक्ति सत्य कहलाती है,

---

१ काव्य दर्पण पृ १२।

२ डिक्शनरी आफ कोटेशन्स पृ० १०१ से १०२।

३ हिस्ट्री आफ ब्यूटी पृ० १७।

हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि में नारी की सौंदर्य-व्यंजना पर विचार करने के पूर्व कला सौन्दर्य एवं नारी का तात्विक विवेचन कुछ आवश्यक सा हो जाता है। सामान्यतः वस्तु विशेष में प्रदर्शित कौशल को कला की संज्ञा प्रदान की जाती है। काव्य-दर्पणकार रस के कथन को ही कला मानते हैं।[1] कला की विभिन्न पाश्चात्य परिभाषाएँ कला की महत्ता पर प्रकाश डालती हैं।

नॉपफेली कला को शक्ति मानता है और बीन के मतानुसार कला मानस विज्ञान है। इमर्सन कला को ईश्वरीय कार्य का ईश्वरीय मार्ग मानता है और आस्कर वाइल्ड कला में जीवन का रहस्य पाता है। मार्बेन के मतानुसार कला मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा है। जान एमिल कला को पुष्पाच्छित शिल्प समझता है जबकि रस्किन के मतानुसार कला वस्तुओं को मिथ्या रूप न रखते हुए सत्य रूप में ही प्रकट करती है। सर जान लुबाक के कथनानुसार जिस प्रकार सूर्य पुष्पों को रंगीन करता है उसी प्रकार कला जीवन को रंगीन बनाती है। बेन जानसन एवं जान टेलर ने कला का एकमात्र शत्रु अज्ञान को माना है। इस प्रकार जितने व्यक्ति हैं, उतनी ही कला की परिभाषाएं हैं और उतने ही कला के स्वरूप हैं। पर प्रायः सभी कलाविद इस बात पर अपनी सहमति व्यक्त करते हैं कि कला सौन्दर्य की साधना है और सौन्दर्य की अभिव्यंजना ही कला का प्राण-तत्व है।

सौन्दर्य अपने आप में एक कला है। यह वह गमक है जिसका अभाव जीवन को निस्सार कर देता है।[2] सौन्दर्य-शास्त्र के प्रवर्तक बामगार्टन ने सौन्दर्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि बुद्धि-क्षेत्र में जिस धर्म या तत्व की अभिव्यक्ति सत्य कहलाती है,

---

१ काव्य दर्पण पृ १२।
२ डिक्शनरी आफ कोटेशन्स पृ० १०१ से १०२।
३ द मिस्ट्री आफ ब्यूटी पृ० १७।

इन्द्रियानुभव के क्षेत्र में उसी अभिव्यक्ति का नाम सौन्दर्य है।[४] शैलिंग के मतानुसार सीमित या सान्त में असीम अथवा अनन्त की झांकी सौन्दर्य है।[५] अरस्तू सौन्दर्य को ईश्वर प्रदत्त प्लेटो स्वाभाविक श्रेष्ठत्व का कारण और होम भविष्य की अवसरवादिता मानता है।[६] यूनानी सौन्दर्य शास्त्र दर्शन के अनुसार सौन्दर्य का नैतिक अच्छाई और तात्विकता से अलग अस्तित्व नहीं है। सुन्दर वह है जो शुभ या मंगलमय है, और सबसे अधिक सुन्दर वह है जो तात्विक है।[७] अरस्तू ने सौन्दर्य को समझने का अधिक वैज्ञानिक प्रयास किया है। अपने तत्व-शास्त्र में उसने सुन्दर और शुभ में भेद करने की चेष्टा की है। एक जगह वह यह भी मान लेता है कि सौन्दर्य आवश्यकता एवं उपयोगिता से अलग चीज है। उसने यह महत्वपूर्ण बात भी कही कि सुन्दर की अनुभूति से उत्पन्न आनन्द में इच्छा या वासना का अभाव रहता है।[८]

बामगार्टन एवम् लसिंग के अतिरिक्त जर्मनी के अन्य सौन्दर्य-शास्त्रियों ने भी अपने-अपने ढंग से सौन्दर्य की व्याख्या की है। हीगल के अनुसार बहुत्व का एकत्व में परिणित हो जाना सौन्दर्य का लक्षण है। वह सत्य व इन्द्रिय ग्राह्य रूप को सौन्दर्य मानता है। कान्ट सौन्दर्य को मनोगोचर समझता है। शापेनहावर इच्छा-शक्ति के वस्तु रूप में प्रकट होनेवाले प्रकाश को सौन्दर्य मानता है।[९]

फ्रांसीसी सौन्दर्य-शास्त्रियों के अन्तर्गत विडरो के कथनानुसार वस्तु के विभिन्न अवयवों की सुसम्बद्धता का नाम सौन्दर्य है। पेरे बेफियर के मतानुसार प्रत्येक जाति का सुन्दर वस्तु विषयक आदर्श अलग-अलग होता है और वस्तु विषयक आदर्श-साहस्य के आधार पर ही उसी परिमाण में वस्तु-सौन्दर्य होता है। क्रिस्टर काशिन सुसम्बद्धता को सौन्दर्य का मुख्य एवं सार्वत्रिक लक्षण नहीं मानता। वह एकता एवं विचित्रता दोनों को ही सौन्दर्य-साधन समझता है। उसकी दृष्टि में सौन्दर्य तीन प्रकार का होता है— भौतिक नैतिक एवं मानसिक। वह भौतिक सौन्दर्य को भावमूलक एवं मानसिक सौन्दर्य को आदर्श सौन्दर्य मानता है। सेव्हेक सौन्दर्य को अदृश्य चेतना का प्रकाश समझता है। उसके मतानुसार प्राणी-सृष्टि का सौन्दर्य मुख्यतः वस्तु के परिमाण वैचित्र्य वर्ण, कोमलत्व आदि अनेक बातों पर अवलम्बित होता है। उसकी मान्यता है कि जड़-सृष्टि का सौन्दर्य अचेतन शक्ति का प्रकाश है।[१०]

---

४ हल सा० विवेचनिका पृ० २१२।
५ पाश्चात्य दर्शन पृ० १७४।
६ डिक्शनरी ऑफ कोटेशन्स पृ० १२८, १२९।
७ पाश्चात्य दर्शन पृ० १६७।
८ वही पृ० ६८।
९ ज्ञान कोश पृ० २४०।
१० वही पृ० २४०।

आंग्ल पण्डितों ने भी सौंदर्य का विवेचन अपने-अपने ढंग से किया है। लार्ड लिस्टवरी ने सौंदर्य-ज्ञान के लिए स्वतन्त्र आर्गेनिज्म का अस्तित्व स्वीकार किया है। लिस्टवरी ने सौंदर्य को जड़-सृष्टि-सौंदर्य, जीव-सृष्टि-सौंदर्य एवं मनसत्सौंदर्य—ऐसे तीन रूपों में विभक्त किया है। हचिसन सौन्दर्य के लिए बाह्य अस्तित्व की आवश्यकता को स्वीकार करता है। वह सौंदर्य को सापेक्ष एवं निरपेक्ष दोनो रूपों मे मानता है। उसके मतानुसार वैचित्र्य मे एकत्व का होना सौंदर्य का मूल है। हेमिस्टर्न एकत्व एवं बहुत्व के संयोग को सौंदर्य मानता है। रस्किन भगवद् स्वरूप की अभिव्यक्ति को सौंदर्य समझता है और बेन की मान्यता है कि सौंदर्य गुण-समुच्चय पर अवलम्बित है।[११]

डार्विन के मतानुसार जीव-विकास में यौन सम्बन्ध के चुनाव मे सौंदर्य सर्वत्र महत्वपूर्ण तत्व रहा है। स्पेन्सर सौंदर्यानुभूति को एक निरुद्देश्य क्रिया मानता है। सौन्दर्यानुभव में जितनी ही ऊँची इन्द्रियाँ व्याप्त होती हैं उसमे उतना ही अधिक आनन्द होता है।[१२]

विभिन्न सौंदर्य-शास्त्रियों की उक्त विचारधारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सौंदर्य के स्वरूप एवं आकार के सम्बन्ध में ही मतभेद नहीं अपितु उसके उपयोग तथा उपभोग के सम्बन्ध में भी मत-मतान्तर चल आ रहे हैं। सामान्यतः हम उसे ही सुन्दर मानते हैं जो नयनाभिराम के साथ-साथ आनन्ददायक भी हो। इरविन एडमनका कहना है कि चिरन्तन तत्व का अवलोकन करना किसी वस्तु को स्वयं उसी के निमित्त देखना है। विशुद्ध सौंदर्यपरक दर्शक क्षणभर अपने को भूल जाता है और संसार को—कला के संसार को—प्राप्त कर लेता है।[१३] दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कला का संसार सौंदर्य का संसार है। कला की साधना सौन्दर्य की साधना है। इस साधना की एकमात्र शर्त कला विषयक सुरुचि है। एडमन की मान्यता है कि कला बुद्धि का ही दूसरा नाम है जो एक सामञ्जस्यपूर्ण समाज में मनुष्य के सारे व्यापारों को अनुप्राणित करेगी जैसा कि यह आज उन विशिष्ट कृतियों में उत्साहपूर्वक कर रही है जिन्हें हम सौंदर्यात्मक के अर्थों में सुन्दर कहते हैं।[१४]

कला, और विशेषकर काव्य-कला में सौंदर्य-बोध सुरुचि-सम्पन्नता पर ही निर्भर होता है। काव्य रमणीयार्थ प्रतिपादक एवं रसात्मक होने के कारण सौंदर्योपासक भी होता है और काव्य की यह सौंदर्योपासना ही उसकी कला का एक कौशल

---

११ इन साइ० ब्रिटानिका पृ० २९१ २२।
१२ पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास पृ० १७६।
१३ दर्शन के उपयोग पृ० १६४।
१४ वही पृ० १७१।

है। काव्य का सौन्दर्य-क्षेत्र अथवा उसका कला-संसार या तो प्रकृति है या मानव। काव्य का आस्वादनकर्ता सुरुचि-सम्पन्न समाज ही होता है। अतः सुरुचि की अभिव्यंजना में काव्य को जिस कौशल की शरण लेनी पड़ती है वह काव्य की कलात्मकता होती है और इस कलात्मकता द्वारा सौन्दर्य की उपासना करते हुए काव्य आनन्द की सृष्टि एवं प्रसार का कारण ही नहीं होता अपितु सौन्दर्य-रुचि का परिष्कारकर्ता भी होता है। जैसा कि शुक्लजी ने कहा है 'मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौन्दर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं।'[15] इन सामान्य आदर्शों की प्रतिष्ठा का श्रेय कला को है। अतः सौन्दर्य और कला अनन्योन्याश्रित हैं।

\ नारी अपने आप में एक सौन्दर्य और एक कला है। संसार की दो महान सभ्यताओं अर्थात् यूनानियों और भारतीयों ने अपनी-अपनी कला की अधिष्ठात्री देवियों की कल्पना नारी रूप में कर अपनी सुरुचि-सम्पन्नता एवम् सौन्दर्य-बुद्धि का ही परिचय दिया है। इस कल्पना का आधार कला एवम् सौन्दर्य का समन्वय ही जान पड़ता है। दूसरे शब्दों में नारी कला एवम् सौन्दर्य का समन्वित सजीव संस्करण है। तुलसीदासजी के शब्दों में कहा जाय तो वह सुन्दरता को भी सुन्दर बनानेवाली और छविगृह के मध्य दीप-शिखा की तरह प्रदीप्त होनेवाली है।[16] भर्तृहरि भी संसार में कमलनयनी स्त्रियों से अधिक सुन्दर अन्य वस्तु नहीं मानते।[17] मेकाले भी यह कहने की अनुमति चाहता है कि संसार की सर्वाधिक सुन्दर वस्तु एक सुन्दर नारी है।[18] इमर्सन ने नारी को एक प्रायोगिक कवि माना है जो अपने असंस्कृत साथी को लुभाती है और उन सब में जिनके निकट वह पहुँचती है, कोमलता आशा तथा प्रवाह का रोपण करती है।[19] अतः संसार की इस सर्वाधिक सुन्दर वस्तु की सौन्दर्य-व्यंजना करते समय कला में सांस्कृतिक सुरुचि-सम्पन्नता कोमलता आशा एवम् प्रवाह का संचरण होना स्वाभाविक है। यदि यह सत्य है कि 'सौन्दर्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति कला में होती है'[20] तो यह भी सत्य है कि सौन्दर्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के लिए कला को संसार की इस सर्वाधिक सुन्दर वस्तु—नारी के सौन्दर्य—को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कला सौन्दर्य एवम् नारी एक-दूसरे के पूरक ही सिद्ध होते हैं। सौन्दर्य नारी की शोभा है, नारी कला की शोभा है और कला सौन्दर्य की शोभा है।

---

१५. रस मीमांसा पृ० ३०।
१६. मानस भास्कर पृ० २५५।
१७. शृङ्गार शतक ५५।
१८. डिक्शनरी आफ कोटेशन्स पृ० १०१६।
१९. वही पृ० ११८ ३६।
२०. पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास पृ० ३५४।

नारी-सौंदर्य के बाह्य उपकरण एवम् उनका वर्गीकरण

सभ्यता के विकास के साथ ही रुचि का विकास भी स्वाभाविक है। देश एवम् काल के अनुसार मनुष्य में रुचि-भेद उपस्थित होता रहता है। रुचि जब प्रवृत्ति का रूप ग्रहण कर लेती है तो कला कुछ सामान्य आदर्शों की प्रतिष्ठा कर रुचि को मरुचि में परिणित करती दृष्टिगोचर होती है। 'जिस सौंदर्य को प्रकृति लम्बे चौड़े विविध जड़-उपादानों से व्यक्त करती है उसे कला में इच्छित सूक्ष्म उपादानों से बांध लिया जाता है।'[1] शुक्लजी के कथनानुसार जिस प्रकार की रूप रेखा या वर्ण विन्यास से किसी की तदाकार परिणति होती है, उसी प्रकार की रूप रेखा या वर्ण विन्यास उसके लिए सुन्दर है।[2] नारी-सौंदर्य के लिए व्यवहृत यह तदाकार परिणति अपने आप में जड़ हो गई है और सौंदर्य-विन्यास की दृष्टि से नारी-सौंदर्य को व्यक्त करने के लिए कुछ लक्षणों एवम् बाह्य उपकरणों का आश्रय ग्रहण किया जाता है। इन गृहीत लक्षणों एवम् उपकरणों का आधार या तो काम-शास्त्रीय विश्वास है या सामुद्रिक लक्षण। सुरुचि-सम्पन्नता के नाम पर सौंदर्य-विन्यास के हेतु कुछ आलंकारिक लक्षण भी निर्धारित कर लिए गए हैं और कुछ नैसर्गिक उपकरण भी जुटा लिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम उन्हें निम्न भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

[१] काम-शास्त्रीय—काम शास्त्रीय आधार पर स्त्रियों को पद्मिनी चित्रिणी शंखिनी एवम् हस्तिनी इस प्रकार चार वर्गों में देखा गया है। इनमें प्रथम दो श्रेष्ठ समझी गई हैं। अतः सौंदर्य के आदर्श भी उन्हीं के लक्षणों से ग्रहीत किए गए हैं। सौंदर्य के लक्षणों की दृष्टि से पद्मिनी का कमलनयनी क्षुद्र रंध्र नासिका वाली अविरल कुच युग्मा दीर्घ केशी कृशांगी सुवर्ण की सी कांतिवाली पद्म गंधा सुवेशी मृदुवचनी सुकुमारी लज्जाशीला राजहंस की सी गतिवाली मृदुल मुस्कान संयुक्त, नृत्य-गान में रुचि रखनेवाली एवम् रति रति तथा भोजन में अल्पता बरतनेवाली होना आवश्यक है। चित्रिणी में सुन्दरता के साथ चांचल्य अल्प लज्जाशीलता एवम् परिहास-प्रियता दृष्टिगोचर होनी चाहिए। यह सकल गुण विभिषा, स्निग्ध देहोत्पन्नाली रति रसज्ञा एवम् तन पर विरल रोम रखनेवाली हो।[3]

[२] सामुद्रिक—स्त्री-रूप के सम्बन्ध में कुछ रूढ़ियाँ सामुद्रिक लक्षणों से भी ग्रहीत की गई हैं। सामुद्रिक लक्षणों की दृष्टि से स्त्री की देह वर्ण पंच आवर्त सत्व

---

१ पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास पृ० ३७४।

२ रस मीमांसा पृ० ३०।

३ हि० सा० की भूमिका पृ० २६२ एवम् ब्रज मा० सा० का ना० भेद पृ० २१६, २० के आधार पर।

स्वर, गति और छाया पर विचार किया जाता है।[४] सामुद्रिक शास्त्र स्त्री के नख शिख के भी शुभाशुभ लक्षणों को व्यक्त करता है। अतः रूप-सौंदर्य की व्यंजना करते समय जिन उपकरणों का उपयोग उपमान के रूप में किया जाता है उनकी खोज अथवा उनका स्वरूप प्रायः सामुद्रिक लक्षणों पर ही आधारित है। अधिकांश बाह्य उपकरणों का चुनाव इन लक्षणों के अनुरूप ही किया गया है। रूप-वर्णन की दृष्टि से कहीं-कहीं इन सामुद्रिक लक्षणों का ही उपकरण के रूप में प्रयोग हुआ है। रूप वर्णन के उपकरणों के अंतर्गत इन सामुद्रिक लक्षणों की चर्चा आगे की गई है।

[३] आलंकारिक—नारी-सौंदर्य के अलंकरण की दृष्टि से काव्य-शास्त्रियों ने *नायिकालंकार के अंतर्गत स्त्रियों की यौवनावस्था के अनुसार-रूप अट्ठाईस अलंकार* माने हैं जिनमें तीन अंगज सात अयत्नज एवम् अठारह स्वाभावज हैं। भाव, हाव और हेला अंगज हैं जिनका शरीर से सम्बन्ध होता है। शोभा कान्ति दीप्ति, माधुर्य प्रगल्भता औदार्य, धैर्य अयत्नज कहलाते हैं क्योंकि ये कृति-साध्य नहीं होते हैं। स्वाभावज के अंतर्गत लीला विलास विच्छित्ति, विब्बोक किलकिंचित मोट्टायित कुट्टमित विभ्रम ललित मद विहृत तपन मौग्ध्य विक्षेप कुतूहल हसित चकित तथा केलि की गणना होती है और ये कृति साध्य होते हैं। एक ओर जहाँ इन्हें सौंदर्य के लक्षण माना जा सकता है वहीं सौंदर्य-चित्रण की दृष्टि से इनका उपयोग उपकरण की भाँति भी किया जा सकता है।

[४] नैसर्गिक—नारी-सौंदर्य की व्यंजना की दृष्टि से नैसर्गिक उपकरणों का अत्यन्त महत्व है। उपमान के रूप में काम आनेवाले ये नैसर्गिक बाह्य उपकरण रूढ़ हो चुके हैं और रूप-वर्णन के अंतर्गत लिए जानेवाले नख-शिख वर्णन में प्रायः इनका प्राधान्य होता है।

[५] अन्य—नारी-सौन्दर्य की श्री-वृद्धि करनेवाले अन्य बाह्य उपकरणों में कुछ वस्तु विषयक होते हैं जैसे स्वर्ण हीर आदि। कुछ अलंकरण विषयक होते हैं जैसे भूषण-वस्त्रादि। कुछ वर्ण विषयक माने जा सकते हैं क्योंकि सौंदर्य की श्री-वृद्धि में रंग-रुचि का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके अतिरिक्त कुछ बाह्य उपकरण चमत्कार-वृद्धि के निमित्त भी अपना लिए जाते हैं। किन्तु ऐसे उपकरण दूर की सूझ अधिक उपकरणात्मक कम होते हैं।

हिन्दी-महाकाव्यों का रूप-वर्णन

हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि के अंतर्गत नारी का जो रूप-वर्णन हुआ है,

---

४ सामुद्रिक तिलक ४। १,२।

इसे मोटे रूप में हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम को व्यक्तित्व प्रधान एवम् द्वितीय को अवयवात्मक कहा जा सकता है। प्रथम के अंतर्गत नारी की रूप व्यंजना उसके व्यक्तित्व प्रधान करती है और द्वितीय के अंतर्गत शिख-नख-निरूपण का प्राधान्य है। व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन स्वाभाविक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है और अलंकारिक रूप में भी। अवयवात्मक रूप-वर्णन में अलंकारिकता का ही प्राधान्य है। अलंकारिक रूप-वर्णन में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षादि की भरमार है।

सर्व प्रथम हम नारी के व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन को लेते हैं। जहाँ यह स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है, वहाँ नारी के सहज व्यक्तित्व की झलक दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ—

सो बरनत पदमावति नारी। रचि रचि बिधि सब कला सँवारी॥
जग बेधा तेहि अंग सुबासा। भँवर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
बेनी नाग मलय गिरि पैठी। ससि माथे होइ दुइज बैठी॥[1]

अथवा

सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी।
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग-अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंग भूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर-नारी॥[2]

या

गुरु से सब स्नान किए, पीताम्बर परिधान किए,
पतिव्रता में पगी हुई, देवार्चन में लगी हुई,
मूर्तिमती ममता माया, कौशल्या कोमल काया।[3]

अलंकारिता के अंतर्गत नारी का व्यक्तित्व प्रधान स्वरूप अपनी सुषमा सौंदर्य एवम् गरिमा से उद्भासित हो उठा है। नारी की इस रूप-व्यंजना में कहीं उपमा उत्प्रेक्षाओं की झड़ी-सी बंध गई है और कहीं प्रतीकात्मकता ने उसके व्यक्तित्व को अलौकिक एवम् अद्भुत बना डाला है। जैसे—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीलामयी।
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी॥[4]

---

1 जायसी ग्रंथावली पृ० २०।
२. मानस, बालकांड पृ० २०४।
३ साकेत पृ० ६२।
४ प्रियप्रवास ४।४।

स्वर, गति और छाया पर विचार किया जाता है।[४] सामुद्रिक शास्त्र स्त्री के नख शिख के भी शुभाशुभ लक्षणों को व्यक्त करता है। अतः रूप-सौंदर्य की व्यंजना करते समय जिन उपकरणों का उपयोग उपमान के रूप में किया जाता है उनकी खोज अथवा उनका स्वरूप प्रायः सामुद्रिक लक्षणों पर ही आधारित है। अधिकांश बाह्य उपकरणों का चुनाव इन लक्षणों के अनुरूप ही किया गया है। रूप-वर्णन की दृष्टि से कहीं-कहीं इन सामुद्रिक लक्षणों का ही उपकरण के रूप में प्रयोग हुआ है। रूप वर्णन के उपकरणों के अंतर्गत इन सामुद्रिक लक्षणों की चर्चा आगे की गई है।

[३] आलंकारिक—नारी-सौंदर्य के अलंकरण की दृष्टि से काव्य-शास्त्रियों ने नायिकालंकार के अंतर्गत स्त्रियों की यौवनावस्था के अनुभाव-रूप अट्ठाईस अलंकार माने हैं जिनमें तीन अंगज सात अयत्नज एवम् अठारह स्वभावज हैं। भाव, हाव और हेला अंगज हैं जिनका शरीर से सम्बन्ध होता है। शोभा कान्ति दीप्ति माधुर्य प्रगल्भता औदार्य, धैर्य अयत्नज कहलाते हैं क्योंकि ये कृति-साध्य नहीं होते हैं। स्वभावज के अंतर्गत लीला विलास विच्छित्ति, बिब्बोक किलकिंचित मोट्टायित कुट्टमित विभ्रम ललित मद विहृत तपन मौग्ध्य विक्षेप, कुतूहल हसित चकित तथा केलि की गणना होती है और ये कृति साध्य होते हैं। एक ओर जहाँ इन्हें सौंदर्य के लक्षण माना जा सकता है वहीं सौंदर्य-चित्रण की दृष्टि से इनका उपयोग उपकरण की भाँति भी किया जा सकता है।

[४] नैसर्गिक—नारी-सौंदर्य की व्यंजना की दृष्टि से नैसर्गिक उपकरणों का अत्यन्त महत्व है। उपमान के रूप में काम आनेवाले ये नैसर्गिक बाह्य उपकरण स्पष्ट से ही चुके हैं और रूप-वर्णन के अंतर्गत किए जानेवाले नख-शिख वर्णन में प्रायः इनका प्राधान्य होता है।

[५] अन्य—नारी-सौन्दर्य की श्री-वृद्धि करनेवाले अन्य बाह्य उपकरणों में कुछ वस्तु विषयक होते हैं जैसे स्वर्ण हीर आदि। कुछ अलंकरण विषयक होते हैं जैसे भूषण-वस्त्रादि। कुछ वर्ण विषयक माने जा सकते हैं क्योंकि सौंदर्य की श्री-वृद्धि में रंग-रुचि का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके अतिरिक्त कुछ बाह्य उपकरण चमत्कार-वृद्धि के निमित्त भी अपना लिए जाते हैं। किन्तु ऐसे उपकरण दूर की सूझ अधिक उपकरणात्मक कम होते हैं।

हिन्दी-महाकाव्यों का रूप-वर्णन

हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि के अंतर्गत नारी का जो रूप-वर्णन हुआ है,

---

४ सामुद्रिक तिलक ४। १,२।

इसे मोटे रूप में हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम को व्यक्तित्व प्रधान एवम् द्वितीय को अवयवात्मक कहा जा सकता है। प्रथम के अंतर्गत नारी की रूप व्यंजना उसके व्यक्तित्व प्रधान करती है और द्वितीय के अंतर्गत शिख-नख-निरूपण का प्राधान्य है। व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन स्वाभाविक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है और अलंकारिक रूप में भी। अवयवात्मक रूप-वर्णन में अलंकारिकता का ही प्राधान्य है। अलंकारिक रूप-वर्णन में उपमा रूपक, उत्प्रेक्षादि की भरमार है।

सर्व प्रथम हम नारी के व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन को लेते हैं। जहाँ यह स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है, वहाँ नारी के सहज व्यक्तित्व की झलक दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ—

भै उनन्त पदमावति बारी। रचि रचि विधि सब कला सँवारी॥
जग बेधा तेहि अंग सुबासा। भँवर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
बेनी नाग मलय गिरि पैठी। ससि माथे होइ दूइज बैठी॥[1]

अथवा

सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी।
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग-अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंग भूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर-नारी॥[2]

या

मुख से कर स्नान किए, पीताम्बर परिधान किए,
पवित्रता में पगी हुई, देवार्चन में लगी हुई,
मूर्तिमती ममता माया, कौशल्या कोमल काया।[3]

अलंकारिता के अंतर्गत नारी का व्यक्तित्व प्रधान स्वरूप अपनी सुषमा, सौंदर्य एवम् गरिमा से समुद्भासित हो उठा है। नारी की इस रूप-व्यंजना में कहीं उपमा उत्प्रेक्षाओं की झड़ी-सी बंध गई है और कहीं प्रतीकात्मकता ने उसके व्यक्तित्व को अलौकिक एवम् अद्भुत बना डाला है। जैसे—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीलामयी।
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थीं॥[4]

---

१ जायसी ग्रंथावली पृ० २०।
२ मानस, बालकांड पृ० २०४।
३ साकेत पृ० १३।
४ प्रियप्रवास ४।४।

स्वर, गति और छाया पर विचार किया जाता है।[४] सामुद्रिक शास्त्र स्त्री के नख शिख के भी शुभाशुभ लक्षणों को व्यक्त करता है। अतः रूप-सौंदर्य की व्यंजना करते समय जिन उपकरणों का उपयोग उपमान के रूप में किया जाता है उनकी खोज अथवा उनका स्वरूप प्रायः सामुद्रिक लक्षणों पर ही आधारित है। अधिकांश बाह्य उपकरणों का चुनाव इन लक्षणों के अनुरूप ही किया गया है। रूप-वर्णन की दृष्टि से कहीं-कहीं इन सामुद्रिक लक्षणों का ही उपकरण के रूप में प्रयोग हुआ है। रूप वर्णन के उपकरणों के अंतर्गत इन सामुद्रिक लक्षणों की चर्चा आगे की गई है।

[३] आलंकारिक—नारी-सौंदर्य के अलंकरण की दृष्टि से काव्य-शास्त्रियों ने नायिकालंकार के अंतर्गत स्त्रियों की यौवनावस्था के अनुभाव-रूप अट्ठाईस अलंकार माने हैं जिनमें तीन अंगज सात अयत्नज एवम् अठारह स्वभावज हैं। भाव हाव और हेला अंगज हैं जिनका शरीर से सम्बन्ध होता है। शोभा कान्ति, दीप्ति माधुर्य प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य अयत्नज कहलाते हैं क्योंकि ये कृति-साध्य नहीं होते हैं। स्वभावज के अंतर्गत लीला विलास विच्छित्ति विब्बोक, किलकिंचित मोट्टायित कुट्टमित विभ्रम ललित मद विहृत तपन मौग्ध्य विक्षेप कुतूहल हसित चकित तथा केलि की गणना होती है और ये कृति साध्य होते हैं। एक ओर जहाँ इन्हें सौंदर्य के समान माना जा सकता है वहीं सौंदर्य-चित्रण की दृष्टि से इनका उपयोग उपकरण की भाँति भी किया जा सकता है।

[४] नैसर्गिक—नारी-सौंदर्य की व्यंजना की दृष्टि से नैसर्गिक उपकरणों का अत्यन्त महत्व है। उपमान के रूप में काम आनेवाले ये नैसर्गिक बाह्य उपकरण रूढ़ हो चुके हैं और रूप-वर्णन के अंतर्गत किए जानेवाले नख-शिख वर्णन में प्रायः इनका प्राधान्य होता है।

[५] अन्य—नारी-सौन्दर्य की श्री-वृद्धि करनेवाले अन्य बाह्य उपकरणों में कुछ वस्तु विषयक होते हैं जैसे स्वर्ण हीर आदि। कुछ अलंकरण विषयक होते हैं जैसे भूषण-वस्त्रादि। कुछ वर्ण विषयक माने जा सकते हैं क्योंकि सौंदर्य की श्री-वृद्धि में रंग-रुचि का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके अतिरिक्त कुछ बाह्य उपकरण चमत्कार-वृद्धि के निमित्त भी अपना लिए जाते हैं। किन्तु ऐसे उपकरण दूर की सूझ अधिक उपकरणात्मक कम होते हैं।

हिन्दी-महाकाव्यों का रूप-वर्णन

हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि के अंतर्गत नारी का जो रूप-वर्णन हुआ है,

---

४ सामुद्रिक तिलक ४। १,२।

इसे मोटे रूप में हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम को व्यक्तित्व प्रधान एवम् द्वितीय को भावनात्मक कहा जा सकता है। प्रथम के अन्तर्गत नारी की रूप व्यंजना उसके व्यक्तित्व प्रदान करती है और द्वितीय के अंतर्गत शिख-नख-निरूपण का प्राधान्य है। व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन स्वाभाविक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है और अलंकारिक रूप में भी। भावनात्मक रूप-वर्णन में अलंकारिकता का ही प्राधान्य है। अलंकारिक रूप-वर्णन में उपमा रूपक उत्प्रेक्षादि की भरमार है।

सर्व प्रथम हम नारी के व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन को लेते हैं। जहाँ यह स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है, वहाँ नारी के सहज व्यक्तित्व की झलक दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ—

मैं उन्मत पदमावति बारी। रचि रचि विधि सब कला संवारी॥
जग बेधा तेहि अंग सुबासा। भंवर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
बेनी नाग मलय गिरि बैठी। ससि माथे होइ दूइज बैठी॥[1]

अथवा

सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी।
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग-अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंग भूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर-नारी॥[2]

या

मुख के सम स्वाद लिए, पीताम्बर परिधान किए,
पवित्रता में पगी हुई, देवार्चन में लगी हुई
मूर्तिमयी ममता माया, कौशल्या कोमल काया।[3]

अलंकारिता के अंतर्गत नारी का व्यक्तित्व प्रधान स्वरूप अपनी सुषमा सौंदर्य एवम् गरिमा से उद्भासित हो उठा है। नारी की इस रूप-व्यंजना में कहीं उपमा उत्प्रेक्षाओं की झड़ी-सी लग गई है और कहीं अतिशयोक्ति ने उसके व्यक्तित्व को अलौकिक एवम् अद्भुत बना डाला है। जैसे—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीलामयी।
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी॥[4]

---

१ जायसी ग्रंथावली पृ० २०। ३ साकेत पृ० ६२।
२ मानस, बालकांड पृ० २७४। ४ प्रियप्रवास ४।४।

अथवा

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि खंड सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल।
गुञ्जरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रससार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिये।
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल।[५]

हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि में नारी का यह व्यक्तित्व प्रधान रूप-सौंदर्य अपने विविध स्वरूपों की झाँकी प्रस्तुत करता है और इस विविधता के अंतर्गत भी उसकी रूप-माधुरी प्रसंगानुकूल हिन्दी-महाकाव्यों की कलात्मकता का परिचय देती है। सर्व प्रथम स्वयंवर-भूमि में वधू-वेष में प्रविष्ट होती नारी के रूप-सौंदर्य की झलक देखिये—

अंग पंकज किंजल्क सुवासा मलय समीर मनहुँ निःश्वासा।
देह कांति इन्दीवर श्यामा, कमलोज्ज्वल मुखेन्दु अभिरामा।
नयन अधीर, मधुर आलोकित नील स्निग्ध अलक अलि कुंचित।
अधर बिम्ब विद्रुम द्युति भासा मंजु कपोल कंठ श्रुति नासा।
युगल सहस्र पद्म पद राजत, मंद मंद मणि नूपुर बाजत।
कर युग मंजुल मृदुल मृणाला अंगुली ललित कलित जयमाला।
मनहु विमोहन हित जग सारा, प्रकटि मोहिनी वपु विधु धारा।
प्रविशति रंग पांचाल कुमारी मत्त लसत युग मचल निहारी।[६]

सास के चरण स्पर्श को जाती वधू और इससे उत्पन्न परिस्थिति के अंतर्गत नारी-सौंदर्य की व्यंजना देखिये—

केंदु सती पद वन्दन काज वधू जब ही झुकै वा छिन धावत।
रंचक सीस सों सारी पसै, परिचारिका आपने हाथ उढ़ावत।

---

५ कामायनी पृ० १६८। ६ कृष्णायन पृ० २१८, ६६।

भीतर सौध लौं बाहर लौं चहुँ ओर जुन्हाई को भार सो पावत।
ता पर मन्द हँसी की छटा, वसुधा में मनो सुधा धार बहावत ॥[७]

कटि में कंचन-पट कौंस कर कछौटा मारे नारी की 'नई धज' की भी एक झलक लीजिए—

कंचन पट कटि में कौंस कछौटा मारे,
सीता माता थीं आज नई धज धारे।
अंकुर हित कर थे कलश पयोधर पावन,
जन मातृ गर्वमय कुशल वदन भव भावन।
पहने थी दिव्य दुकूल अहा! वे ऐसे
उत्पन्न हुआ हो देह संग ही जैसे।[८]

निद्रा-निमग्न नारी का सौंदर्य भी अपनी एक निजी विशेषता रखता है। रूप सौंदर्य की दृष्टि से नारी की यह छवि भी अनुपम है। यथा—

है वस्त्र पात धरते सरके किसी के, ऐसी अर्द्ध वह गाढ़ सुषुप्ति में है,
ज्योत्स्नामयी अनुपमा सुषमा विलोको, मानो वसे शिखर के छवि सो रही है।
देखो सरोज कर एक उरोज पे है, है दूसरा सुमुखी के मुख को छिपाए,
मानों सनाल सरसीरुह मंजु दै या राकेश पे रत बिंब कैरव को बनी है।[९]

अपनी अस्त-व्यस्तता में नारी का रूप-सौंदर्य कवि की रूप-रुचि का विषय होता है और ऐसे क्षणों में उत्प्रेक्षाओं का चमत्कार-सा खड़ा करते हुए यह सौंदर्य यों झलक उठता है—

छुटी कंठ माला दुरै हार टूटे। खसे फूल फैले लसैं केश छूटे।
फटी कंचुकी किंकिणी चारु छूटी। पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी॥
बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं। किधौं साँचहू श्रीफलैं सोभ साजैं।
किधौं स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे। वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे।[१०]

रूप-व्यंजना की दृष्टि से नारी का वय सन्धि काल भी अपना महत्व रखता है। शिशुता की समाप्ति एवम् यौवनागमन के समय सुन्दरी नारी के रूप-सौंदर्य का एक चित्र देखिये—

उस परियों की रानी को सुन्दरी शृंगार-सजी थी।
था अंग मनोरम मानों छवि में देह रंगी थी॥

---

७ रामराज्य महाकाव्य ६।२ ९ सिद्धार्थ पृ० १५५।१७०।
८ साकेत पृ० २२०। १० रामचन्द्रिका पृ० १६।३०,३१।

शिशुता की निशा सिरानी, जब आया यौवन दिनकर।
कटि विकसित तन सरवर में दो सरसिज लसे मनोहर॥
उस सरस सुगन्ध लहर में यौवन हाला में घुल कर।
पुतली सी नाच रही थी आँखों में जादू भर भर॥[11]

तप निमग्ना नारी का रूप-सौन्दर्य अपनी जिस प्रभा को प्रकट करता है वह प्रभा अपने सात्विक सौन्दर्य के कारण अपनी उपमा आप होती है। जैसे—

निरखी तेज पुंज अति नारी, तप निमग्न तपसी सुकुमारी।
मस्तक जटा कलाप ललामा रक्तोत्पल जनु अति अभिरामा।
मंजु मेखला सूक्ष्म कटि, कृश शरीर तप भार।
भानु प्रभा भानुहि मनहुँ तपति विपिन सम्भार॥
जनु शशि कला भानु तल्लीना अग्निशिखा जनु धूम विहीना।
अथवा महि विचित्र बस शोभित, बन देवी भानुहि ध्यान स्थित।[12]

गर्भावस्था काल में भी नारी का रूप-सौन्दर्य अपनी विशिष्टता रखता है। इस विशिष्टता की जो व्यंजना हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि में व्यक्त हुई है उसका एक उदाहरण लीजिए—

केतकी गर्भ सा पीला मुँह आँखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी कम्पित लतिका सी लिये देह।
मातृत्व बोझ से झुके हुए, बंध रहे पयोधर पीन आज
कोमल काले ऊनों की नव पट्टिका बनाती रुचिर साज।
सोने की सिकता में मानो कालिन्दी बहती भर उसास,
स्वर्गंगा में इन्दीवर की या एक पंक्ति कर रही हास।[13]

इसके अतिरिक्त, नारी के व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन की व्यंजना करने में कवियों ने कहीं-कहीं मह-साम्य अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाओं की भी शरण ली है। कहीं अतिशयोक्ति के बाद भी संकोच शेष रह जाता है और कहीं नारी-देह को समुद्र-मंथन द्वारा प्राप्त चौदह दुर्लभ रत्नों से सँवार कर चमत्कारिक रूप-सौन्दर्य की व्यंजना कर दी जाती है। इनके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथइ पानि पंकज निज मारू।

---

११ नूरजहाँ पृ० २१, २४। १३ कामायनी पृ० १४२।
१२ रमन पृ० १२८, २१।

एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय सम तूल॥[१४]

एवम्

जिहिं उदधि मथ्थए, रतन चौदह उद्धारे।
सोइ रतन संजोय, भञ्ज भञ्जह प्रति पारे।
रूप रंग गुन सचिउ, वदन मयुख विय सञ्जिय।
परिमल सुरतरु मय सम पीवा सुम सञ्जिय।
बरन चर चवल तुरय मय मुगति, चुम्बन सुरा।
येनह सु चमत्कारि सोल मनि, भौंह धनुष लज्यौं नरा।[१२]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि में नारी सौंदर्य की व्यंजना की दृष्टि से नारी के व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन में सौंदर्य विषयक सुरुचि एवम् कलात्मकता का पूर्ण परिचय दिया गया है। यह सुरुचि-सम्पन्नता एवम् कलात्मकता यहाँ कवि-हृदय की भावुकता के साथ सम्मिश्रित हो गई है वहाँ नारी की सौंदर्य-व्यंजना पूर्ण शालीनता के साथ प्रकट होती है। उदाहरणार्थ—

मोर मुकुट पू पट की बिजली जलदोपम पट की
चरित बनी जो विधु मुख की, शोभा जो सुषमा सुख की।
साथ सुरभि का सदन बना। अमल कमल सा बदन बना।
अधर प्रबोसे स्मन बना। कुन्द कली से रदन बना।
लगीं सिखाने थीं अलकें मधुप पालती थीं पलकें।
और कपोलों की झलकें बनती थीं छवि की छलकें।
गोल गोल गोरी बाहें, दो बाँहों की दो राहें।
भाग सहारा पक्ष में थे चंचल चख चल मैं दे।
थी कमला सी कल्याणी, कानों में वीणा पाणी।[१५]

नारी-सौंदर्य की व्यंजना की दृष्टि से उसका रूप-लावण्य भी जिसे सामुद्रिक शास्त्र 'पद्मा' की संज्ञा प्रदान करता है, उसके व्यक्तित्व की एक अनोखी झलक व्यक्त करता है—

और देखा वह सुन्दर दृश्य नयन का इन्द्रजाल अभिराम,
कुसुम वैभव में लता समान चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम।[१५अ]

---

१४ मानस, बालकांड पृ० २०४।
१५ साकेत प० ६२, ६१।
१२. रासो, समय ६६। २११।
१५अ कामायनी पृ ४६।

नारी के रूप-सौंदर्य की व्यंजना की दृष्टि से शिख-नख वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। वास्तव में यह नारी-रूप का अवयवात्मक स्वरूप है क्योंकि नारी-शरीर के अधिकांश अवयवों का वर्णन इसके अंतर्गत पाया जाता है। शिख से लगा कर नख तक की इस सौंदर्य-व्यंजना के हेतु जो उपमान काम में लाये जाते हैं वे प्रायः रूढ़ हो चुके हैं। इस उपमानों में नवीनता का समावेश नाम मात्र को ही पाया है। केवल व्यंजना चमत्कार या उपमान के उपयोग का कौशल ही लक्षित होता है। हिन्दी-महाकाव्यों की कथा भूमि में नारी के इस अवयवात्मक स्वरूप की व्यंजना भी अत्यन्त कौशलपूर्वक व्यक्त हुई है। प्रायः प्रत्येक महाकाव्य में इसके विपुल उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। रासो एवम् पद्मावत में तो स्वतंत्र रूप से भी शिख-नख वर्णन के प्रति रुचि प्रदर्शित की गई है किन्तु शेष महाकाव्यों म यह वर्णन प्रसंगानुकूल पाया जाता है। *विस्तार भय एवम् प्रायः एक बात की एक ही जैसी पुनरुक्ति के कारण अवयवात्मक* स्वरूप के अंतर्गत प्रत्येक महाकाव्य क उदाहरण प्रस्तुत न करते हुए, हम यहाँ संक्षेप में नारी की इस सौंदर्य-व्यंजना का निरूपण करेंगे।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम नारी के अवयवात्मक स्वरूप को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम शीर्ष भाग है जिसके अंतर्गत मुख-मंडल केशादि की व्यंजना हुई है। द्वितीय मध्य भाग है जो कंठ स कटि तक माना जा सकता है। तृतीय अधोभाग है जो नितम्ब से लगा कर पग-तल तक जाता है। अवयवात्मक स्वरूप-व्यंजना में स्वाभाविकता के बजाय अलंकारिकता का ही प्राधान्य है। अतः संपूर्ण अवयवात्मक रूप-वर्णन अलंकारिक है।

शीर्ष भाग—स्त्री-शरीर के वर्णन में सर्वाधिक ध्यान मुख-मंडल पर ही दिया गया है। साधारणतः केश ललाट, कपोल मुख नासिका नेत्र अधरोष्ठ, दांत वाणी और कंठ—ये ही मुख-मंडल के वर्णनीय अवयव हैं। हिन्दी-महाकाव्यों की कथा भूमि में इन अवयवांगों की जो व्यंजना हुई है वह संक्षेप में इस प्रकार है—

केश-वर्णन—

[१] प्रथम सीस कस्तूरी केसा। बलि बासुकी, का और नरेसा।
भौर केस वह मालती रानी। बिसहर लुरे लेहि अरघानी।[१७]

[२] तुम्हारा लख कर केश कलाप, प्रबल पर पर सोवेंगे सांप।
घिरेंगे घन समीप घन दूर, नचा कर शत शत मत्त मयूर॥[१८]

---

१७ जायसी ग्रंथावली पृ० ४१। १८. साकेत सर्ग १।३३।

[१] घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलम्बित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास।[19]

माँग-वर्णन—

[१] कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महुँ दामिनी परगसी।
सुरुज किरन जनु गगन बिसेखी। जमुना माहँ सुरसती देखी।[20]

[२] द्वि भाग वाली चिकुरालि मध्यगा, मनोहरा की अति मंजु मांग थी।
प्रदीप्त हो कज्जल कूट पै यथा, प्रदीप की शुभ्र शिखा मनोरमा।
कला किया में अथवा विशेष की सुवर्ण कादंबिनि मध्य चंचला,
कि हेम रेखा कष पै कसी हुई, कि औषधि हो चमकती वनांत में।[21]

ललाट-वर्णन—

[१] यह शिखर मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि खंड सदृश था स्पष्ट भाल।[22]

[२] कहौं लिलार दुइज के ज्योति
देहि लिलाट पर तिलक बईठा। दुइज पाट जानहु ध्रुव डीठा। -
कनक पाट जनु बैठा राजा [23]

कपोल-वर्णन—

[१] गालों पर रचा था या लज्जा से खिल खिल जाती।[24]

[२] पुनि बरनौं का सुरंग कपोला। एक नारंग दुइ किए अमोला।[25]

मुख-वर्णन—

[१] आह, वह मुख। पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम।
अरुण रवि मण्डल उनको भेद दिखाई देता हो छवि धाम।[26]

[२] कंकती को मलमल मधुर मधुरानन में लाल वे सहाय यदि मालिनी बनायी है।
पूनो की निसा की पूरी मंजुल मयंक वाली जाकी लघु चाकर बनन नहीं पायी है।[27]

---

१९ कामायनी पृ० ४७।
२० जायसी पद्मावती पृ० ४१।
२१ सिद्धार्थ पृ० ८६।
२२ कामायनी पृ० १६८।
२३ जायसी पद्मावती पृ० ४२।
२४ नूरजहाँ पृ० ४६।
२५ जायसी पद्मावती पृ० ४४।
२६ कामायनी पृ० ४५।
२७ रावण महा० १। १९।

नासिका-वर्णन—

[१] नासिक खीन खरग के धारा।[28]

[२] देखि भ्रमर रस प्रबरन मएउ नासिका कीर।[29]

[३] नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से।
देख कर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है।[30]

नेत्र-वर्णन—

[१] सीता नयन चकोर सखि रवि बंसी रघुनाथ।[31]

[२] जहँ बिलोकि मृग सावक नयनी। जनु तहँ बरिस कमल सित स्रेनी।[32]

[३] मद मस्त दृगों के साकी, रमणी यौवन का हाला।[33]

[४] उर्मिला ने कीर सम्मुख दृष्टि की
या वहाँ दो खञ्जनों की सृष्टि की।[34]

[५] दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल।[35]

[६] कुटिल भ्रू शरासन सी तनी बन गये युग लोचन ब्याज से।[36]

अधर-वर्णन—

[१] अधर बिम्ब विद्रुम द्युति वाला।[37]

[२] पद्म रागों से अधर मानों बने।[38]

[३] फूल दुपहरि जानौं राता। फूल झरहिं ज्यों ज्यों कहु बाता।[39]

दन्त-वर्णन—

[१] जस भादौं निसि दामिनि दीसी। चमकि उठै तस बनी बतीसी।[40]

---

२८ जायसी ग्र० पृ० २०८।
२९ वही पृ ४३।
३० साकेत पृ० २६।
३१ रामचन्द्रिका पृ० ६।४३।
३२ मानस बालकांड पृ० २२८।
३३ नूरजहाँ पृ० २४।
३४ साकेत पृ० २८।
३५ कामायनी पृ० ११८।
३६ सिद्धार्थ पृ० ७।
३७ कृष्णायन पृ० २१८।
३८ साकेत पृ० २७।
३९ जायसी ग्रंथावली पृ० ४३।
४० वही पृ० ४४।

[२] मोतियों से दांत निर्मित हैं घने।[४१]

[३] कुन्द कली से रदन महा।[४२]

वाणी-वर्णन—

[१] कहहिं परस्पर कोकिल बयनी।[४३]

[२] सुना यह मनु ने मधु गुंजार, मधुकरी का सा जब सानन्द।[४४]

[३] वाणी में वीणा वाणी।[४५]

पलक, भौंह एवम् तिल-वर्णन—

[१] मधुर बालती की पलकें।[४६]

[२] कटाक्ष ये यद्यपि लक्ष पा चुके तथापि भ्रू चाप चढ़ा हुआ लसा।[४७]

[३] असित बान बानों तिल सूझा
सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा धुव गाड़ि।[४८]

ग्रीवा-वर्णन—

बरनौं गीउ कंबु के रीसी। कचन तार लागि जनु सीसी॥
पुनि तेहि ठाँव परी तिनि रेखा। घूट जो पीक लीक सब देखा॥[४९]

मुस्कान-वर्णन—

और उस मुख पर वह मुसक्यान। रक्त किसलय पर ले विश्राम,
अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम।[५०]

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी का मुख-मंडल रूप-सौंदर्य की जो व्यंजना प्रस्तुत करता है वह सुरुचि सम्पन्न होने के साथ ही सरस भी है। अप्रस्तुत उपकरणों के माध्यम से आलंकारिक पुट द्वारा इन अवयवांगों का जो रूप-वर्णन हुआ है, वह भाष्य रूप होने के बाद भी सरस है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वाणी एवम् मुस्कान का वर्णन भी मुख-मंडल से सम्बन्धित होने के कारण कवियों

---

४१ साकेत पृ० २७।
४२ वही पृ० ६१।
४३ मानस, बालकांड पृ० ११६।
४४ कामायनी पृ० ४५।
४५ साकेत पृ० ६१।
४६ वही पृ० ६२।
४७ सिद्धार्थ पृ० ८८।
४८ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४५।
४९ जायसी ग्रंथावली पृ० ४५।
५० कामायनी पृ० ४७।

नासिका-वर्णन—

[१] नासिक खीन धरम के धारा।[28]

[२] देखि भ्रमर रस भवरन भएउ नासिका कीर।[29]

[३] नाक का मोती अधर की कान्ति से
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से।
देख कर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है।[30]

नयन-वर्णन—

[१] सीता नयन चकोर सखि, रवि बंसी रघुनाथ।[31]

[२] जहं बिलोकि मृग सावक नयनी। जनु तहं बरिस कमल सित स्रेनी।[32]

[३] मद मस्त दृगों के साकी, रमणी यौवन का हाला।[33]

[४] उर्मिला ने कीर सम्मुख दृष्टि की
या वहाँ दो खञ्जनों की सृष्टि की।[34]

[५] वो नयन पलाश चषक से युग देते अनुराग विराग ढाल।[35]

[६] कुटिल भ्रू धारा सी लसती बन गये युग लोचन व्याध से।[36]

अधर-वर्णन—

[१] अधर बिम्ब विद्रुम द्युति भासा।[37]

[२] पद्म रागों से अधर मानों बने।[38]

[३] फूल दुपहरि जानौं राता। फूल झरहिं ज्यों ज्यों कहु बाता।[39]

दंत-वर्णन—

[१] जस भादौं निसि दामिनि दीसी। चमकि उठै तस बनी बतीसी।[40]

---

२८ जायसी ग्रं० पृ० २०८।
२९. वही पृ ४१।
३० साकेत पृ० २६।
३१ रामचन्द्रिका पृ ६। ४१।
३२ मानस बालकांड पृ० २५८।
३३ नूरजहाँ पृ० २४।
३४ साकेत पृ० २८।
३५. कामायनी पृ० १५८।
३६ सिद्धार्थ पृ० ७।
३७ कृष्णायन पृ० ९५८।
३८ साकेत पृ० २७।
३९ जायसी ग्रंथावली पृ० ४३।
४०. वही पृ० ४४।

[२] मोतियों से दांत निर्मित हैं घने।[41]

[३] कुन्द कली से रदन रहा।[42]

वाणी-वर्णन—

[१] कहहिं परस्पर कोकिल बयनी।[43]

[२] सुना यह मनु ने मधु गुंजार, मधुकरी का सा जब सानन्द।[44]

[३] बातों में वीणा बाजी।[45]

पलक, भौंहें एवम् तिल-वर्णन—

[१] मधुप माधवी की पलकें।[46]

[२] कपोल ये यद्यपि लाल पा चुके, तथापि भ्रू चाप चढ़ा हुआ रहा।[47]

[३] अविनि बान बानौं तिल सूझा
सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा धुव गाड़ि।[48]

ग्रीवा-वर्णन—

बरनौं गीउ कंबु कै रीसी। कंचन तार लागि जनु सीसी॥
पुनि तेहि ठाँव परी तिनि रेखा। घूँट जो पीक लीक सब देखा॥[49]

मुस्कान-वर्णन—

और उस मुख पर वह मुसक्यान। रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम।[50]

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी का मुख-मंडल रूप-सौंदर्य की जो व्यंजना प्रस्तुत करता है, वह सुरुचि सम्पन्न होने के साथ ही सरस भी है। नैसर्गिक उपकरणों के माध्यम से आलंकारिक पुट द्वारा इन अवयवांगों का जो रूप-वर्णन हुआ है, वह प्राय: रूढ़ होने के बाद भी रम्य है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वाणी एवम् मुस्कान का वर्णन भी मुख-मंडल से सम्बन्धित होने के कारण कवियों

---

४१ साकेत पृ० २७।
४२ वही पृ० ६९।
४३ मानस, बालकांड पृ० ११६।
४४ कामायनी पृ० ४५।
४५ साकेत पृ० ६१।
४६ वही पृ० ६२।
४७ सिद्धार्थ पृ० ८८।
४८ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४५।
४९ जायसी ग्रंथावली पृ० ४५।
५० कामायनी पृ० ४७।

ने उसी रुचि के साथ किया है यद्यपि वाणी और मुस्कान अवयव के अन्तर्गत नहीं आते हैं। यह भी सुरुचि-सम्पन्नता का एक प्रमाण है।

मध्य भाग के अन्तर्गत बाहु हाथ, अंगुलियाँ वक्षस्थल नाभि, त्रिवली रोमावली पृष्ठ एवम् कटि का वर्णन विशेष रूप से किया जाता है। वक्षस्थल-वर्णन में कवियों ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है। मध्य भाग के अंतर्गत नारी के रूप-सौंदर्य की जो व्यंजना हुई है वह इस प्रकार है—

बाहु-वर्णन—

[१] कनक दण्ड दुई भुजा कलाई। जानौ फेरी कुँदेरै भाई ॥[५१]

[२] मृणाल सा कोमल बाहु देखके विस्मित आली अपनी कठोरता
सुवर्ण कङ्कण भी इसीलिये, प्रकाश होता बहु कम्पमान था ॥[५२]

हाथ-वर्णन—

[१] सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जय माला।[५३]

[२] लता पल्लव पुष्पों के साथ, मिलकर हाथ मले निज हाथ।[५४]

हथेली अंगुली-वर्णन—

[१] जानौ रक्त हथोरी बूड़ी। रवि परभात तात वे जूड़ी।
हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा। रुहिर भरी अंगुरी तेहि साथा।[५५]

[२] मञ्जरी सी अंगुलियों में यह कला।[५६]

वक्षस्थल-वर्णन—

[१] हिया थार, कुच कञ्चन लाड़। कनक कचोर उठे जनु चाड़।[५७]

[२] बिना कञ्चुकी स्वच्छ उरोज राजै।
किधौं सांच हूँ श्रीफलै सोम साजै।
किधौं स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे।
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे।[५८]

---

५१ जायसी ग्रंथावली पृ० ४६।
५२ सिद्धार्थ पृ० ८८।
५३ मानस, बालकांड पृ० २६०।
५४ साकेत सर्ग १। ३१।
५५ जायसी ग्रंथावली पृ० ४६।
५६ साकेत पृ० १७।
५७ जायसी ग्रंथावली पृ० ४६।
५८. रामचन्द्रिका १६। ३१

[३] हृदय की गौरव पूर्ण उमंग, देख उत्तुंग मृदुल हो संग।[५९]

[४] आधे खुले सुमन मंजु उरोज ऐसे, जैसे मधुप कवि की कविता लसि हो।[६०]

नाभि त्रिवली एवम् रोमावली-वर्णन—

[१] नाभि कुंड सो मलय समीर। समुद भँवर जस भँवै गंभीर।[६१]

[२] कृशोदरि! इस त्रिवली का जाल, जहाँ लहराया हिम ताल।[६२]

[३] त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी ।[६३]

[४] रोम राजि शृंगार की ललित लता सी राज।[६४]

[५] उर में मनहुँ मदन की रेख। ताकी दीपति दिपति विशेष।[६५]

पीठ एवम् कटि-वर्णन—

[१] बैरिनि पीठि लीन्हि वह पाछे। जनु-फिरि चली अपछरा काछे।
मलयागिरि के पीठ सँवारी। बैनि नागिन चढ़ी जो कारी।[६६]

[२] स्वर क्षीण, क्षीण सी गाती, थी कमर कमान बनाती।[६७]

[३] लंक की क्षामता की छवि को, बर तन्तु मृणाल के पोरत ही रहे।[६८]

[४] कर लखिय लंकय सिव छित्ती कर मुट्ठिय माहि समाई छित्तौ।[६९]

[५] कटी अलक्ष्यता ग्रही, मनो कि रिद्धि रंकई।[७०]

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि में नारी के मध्य भाग का अवयवात्मक स्वरूप भी पूर्ण कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि मध्य भाग की रूप-व्यंजना में प्रयुक्त अधिकांश उपमान भी रूढ़ ही हैं और उसका स्वरूप भी परम्परागत ही है परन्तु उसमें कला-चातुर्य का अभाव नहीं है।

अधोभाग के अंतर्गत नितम्ब जंघा पद-तल आदि का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। साथ ही गति की व्यंजना भी रूप-सौंदर्य की पोषक बनकर आई है। नितम्ब

---

५९ साकेत सर्ग १।१०।
६० सिद्धार्थ पृ० १६८।
६१ जायसी पद्मावली पृ० ४७।
६२ साकेत सर्ग १।१०।
६३ कामायनी पृ० ११८।
६४ रामचन्द्रिका ११।१०।
६५ वही पृ० ११।११।
६६ जायसी ग्रंथावली पृ० ४७।
६७ नूरजहाँ पृ० २४।
६८ पावस महाकाव्य २।१५।
६९ रासो समय २१।१२३।
७० वही, समय ६६।१७५।

से लगा कर नख एवम् पद-तल गया नारी-शरीर का यह भाग जहाँ पूर्ववर्ती कवियों की रूप-व्यंजना का रुचिकर विषय रहा है वहाँ उत्तरवर्ती कवियों द्वारा नितम्ब-नखादि की स्वल्प-व्यंजना नाम मात्र को की गई है। गति के प्रति जो लगाव है, वह सर्वत्र एक जैसा मिलता है। कुछ उदाहरण लीजिए—

नितम्ब एवम् जंघा-वर्णन—

[१] बरनौं नितंब लंक कै] सोभा। औ गज गवन देखि मन लोभा॥
जुरे जंघ सोभा अति पाए। केरा खंभ फेरि जनु लाए॥[७१]

[२] नितम्ब बिंब तुंग ते कटि प्रदेस छीन है।
विभूति भूति सी सबै सु लोक लाज लीन है।
प्रमोद मन्दिरे उदार खंभ जुग्म जानिये।
मनोज के प्रमोद सों विनोद खंभ मानिये॥[७२]

[३] नितंब मद्ध सु बिंब प्रकास रंग जुझियं।[७३]

पगतल-वर्णन—

[१] लाली थी करती सरोज पग की भू पृष्ठ को भूषिता।[७४]

[२] अरुण सहस्र पत्र पर राजत मंजु मंद मणि नूपुर बाजत।[७५]

गति-वर्णन—

[१] तुम्हारे चरणों की ले चाल, चलें अब उस पर बाल मराल।[७६]

[२] पद पद्मों में मंजीर मराल मचलते।[७७]

नारी के रूप-सौन्दर्य की व्यंजना की दृष्टि से उसके समग्रात्मक स्वरूप के अंतर्गत उसका कद भी अपना स्थान रखता है। यथा—

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार, एक लम्बी काया उन्मुक्त,
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।[७८]

इस समग्रात्मक स्वरूप के अतिरिक्त नारी के अधखुले अंग का सौन्दर्य समग्र शरीर की सुषमा एवम् इस सौन्दर्यमयी के चलते ही नैसर्गिक उपकरणों में उठ रही

---

७१ जायसी ग्रंथावली पृ० ४८।
७२ रामचन्द्रिका ११। ३१।
७३ रासो, समय ३६। १७७।
७४ प्रियप्रवास ४। ७।
७५ कृष्णायन पृ० २६८।
७६ साकेत सर्ग १। २६।
७७. साकेत पृ० २२१।
७८. कामायनी पृ० ४६।

होने वाली हलचल भी नारी के रूप-सौंदर्य की व्यंजना की दृष्टि से दृष्टव्य है। विस्तार भय के कारण यहाँ कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

[१] नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।।[७९]

[२] कुसुम कानन अंचल में मंद, पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित परमाणु पराग शरीर, खड़ा हो ले मधु का आधार।[८०]

[३] केसरी के बसन पुखराज गुलनार की
प्रवालनि अनुकृति की सुषमा सजाती है।
त्यों ही कोकनद इन्दीवर, अरविन्द कुन्द,
चम्पक, गुलाब की प्रभा हू सकुचाती है।।
खंजन मराल लाजे, पद्म मधुपान लाजे
केहरि गुफानि में छुपाइबे को ठानी है।
दाड़िम को बीजन कलिकानि के कुम्भ पर
जाकी छवि लाखुहे भरत मानों पानी है।।[८१]

[४] हरस्य वदन की लुनाई की धवल धार,
पग धरते ही धरती है नवजात जात।
बिचरत होत गात शिथिल धमारि लागे
जैसे हिम पात की तुषार बस जात गात।।
कच, कुच, प्रभुल नितम्बनि के भारनि सों
ढूँक ही धर त दम लंक बल खात जात।
प्रथम पग आतप तपीस स्वेद सारी भई,
शिथिल शरीर भयो गात परसात जात।।[८२]

उक्त उदाहरणों को देखते हुए यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की कथा-भूमि के अन्तर्गत नारी-रूप की सौंदर्य-व्यंजना अत्यन्त ही प्राणवान रूप से उपस्थित की गई है। यह रूप-सौंदर्य चरम एवम् नयनाभिराम ही नहीं अपितु कलात्मक भी है।

रूप-वर्णन के उपकरण : प्राचीन एवम् नवीन

हिन्दी-महाकाव्यों की कथा-भूमि में रूप-वर्णन के हेतु जिन उपकरणों का प्रयोग

---

७९ कामायनी पृ० ४६। ८१ राघव महाकाव्य १।१७।

हुआ है उनमें से अधिकांश प्राचीन हैं एवम् कवि-परम्परा के रूढ़ उपमान हो चुके हैं। नवीन उपमानों का समावेश बहुत कम हो पाया है। विदेशी प्रभाव के कारण कुछ नवीन उपकरण अवश्य जुटा लिए गए हैं अथवा कुछ उपकरण कवि-कल्पना द्वारा भी अपने नवीन स्वरूप में उपस्थित हो गए हैं। नारी रूप के वर्णन की दृष्टि से, रूप-वर्णन के प्राचीन एवम् नवीन उपकरण संक्षेप में इस प्रकार हैं—

केश—स्त्री-सामुद्रिक के अनुसार भ्रमर के समान काले, पतले चिकने, कुंचित एवम् चमकीले बाल उत्तम माने गए हैं।[1] केशों की दीर्घता कुटिलता, मृदुता सिचिक्कणता और नीलिमा आदि वर्णनीय समझी जाती है।[2] अतः उक्त मतानुसार केशों के लिए जिन प्राचीन उपकरणों का प्रयोग उपमानों के रूप में आया है वे नाग, नागिन कस्तूरी मलमयूर, कालिन्दी भ्रमर, राहु घन आदि हैं। नवीनता की दृष्टि से जायसी द्वारा 'प्रेम जंजीर' उपमान का प्रयोग हुआ है। सुकुमारता की दृष्टि से प्रसादजी द्वारा प्रयुक्त 'घनशावक' उपमान भी नवीनता लिए हुए है। इसी प्रकार 'तर्क-जाल' भी नवीन उपमान है। मांग के लिए प्रयुक्त प्राचीन उपमानों में कंचन-रेखा दामिनी, सरस्वती गंगा सूर्य-किरण बक-पंक्ति, ओषधी दीपशिखा आदि का प्रयोग हुआ है। जायसी द्वारा बीर बहूटी आरक्त असि की व्यंजना नवीन एवम् मौलिक है।

ललाट—सामुद्रिक मतानुसार निर्लोम रेखा रहित अर्ध चंद्राकार स्पष्ट एवम् स्वस्तिक समलंकृत ललाट स्त्रियों के लिये शुभ माना गया है।[3] अतः द्वितीया का चंद्र पारस-ज्योति कनक पाट एवम् शशि-खंड जैसे रूढ़ उपमानों द्वारा ही ललाट की सौंदर्य-व्यंजना हुई है। नवीन उपमान का अभाव है।

कपोल—कान्तियुक्त, समुन्नत एवम् भरे हुए कपोल स्त्री-सामुद्रिक की दृष्टि से श्रेष्ठ समझे गए हैं।[4] चांद के खण्ड कमल, नारंग तथा जैसे प्राचीन उपमानों द्वारा ही कपोलों का वर्णन हुआ है। कोई नवीन मौलिक उपमान उपलब्ध नहीं होता।

मुख—वर्तुल, समस, स्निग्ध चंद्रवत नयन मनोहर, सौम्य एवम् सुवासित मुख सामुद्रिक मतानुसार स्त्रियों के लिए शुभ माना गया है।[5] मुख-सौंदर्य के हेतु चंद्रमा, कमल अथवा रवि-मंडल, पद्मनाल आदि प्राचीन उपमान ही प्रयुक्त हुए हैं। नवीन उपमान नहीं हैं।

नासिका—न अधिक दीर्घ और न अधिक विस्तीर्ण नासिकावाली स्त्री उत्तम

---

१ सामुद्रिक तिलक ४।१८५,८६।
२ हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० २६३।
३ सामुद्रिक तिलक पृ० ४।१०८, ८०।
४ वही ४।११७।
५ वही ४।११६।

मानी है।[६] नासिका की सौंदर्य-व्यंजना में असि, अक्षि-धारा, शुक, सेतु-बंध, तिल-पुष्प आदि प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों का अभाव है।

नेत्र—दुग्ध धवल रक्त कोरोंवाले काले तारोंवाले प्रफुल्ल कमलों की तरह चमकने वाले मीन कमल से निर्मल नेत्र उत्तम माने गए हैं और मृग-नेत्रा, शशि-नेत्रा, वराह-नेत्रा, मयूर-नेत्रा, पृथुनेत्रा, कुक्कुट-नेत्रा एवम् निर्मल नेत्रा नारी धन्या मानी जाती है।[७] नेत्रों के सौंदर्य-निरूपण की दृष्टि से प्राचीन उपमानों में खंजन, कमल, भ्रमर, अंजन, तुरंग, कुरंग, तरंग, करे, माणिक्य, मीन, श्याम आदि का प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों के अंतर्गत यौवन का प्याला भर भर देने वाले मदमस्त दृगों के लिए 'पंत' जी द्वारा 'साकी' का प्रयोग हुआ है और प्रसादजी ने अनुराग-विराग जगाने दृगों के लिए 'पद्म-पलाश चषक' का प्रयोग किया है।

अधर—मध्य भाग से रेखा-अंकित सुडौल परिपक्व बिम्बाफल के समान स्निग्ध मनोहर अधर सामुद्रिक मतानुसार स्त्रियों के लिए शुभ माने गए हैं।[८] प्राचीन उपमानों के अंतर्गत अधरों की सौंदर्य-व्यंजना के लिए बिम्बाफल, विद्रुम, माणिक्य-पद्म-राग, दुपहरिया के फूल, किसलय आदि का प्रयोग हुआ है। जायसी द्वारा अधरों के लिए 'रुधिर-युक्त [illegible]' का प्रयोग नवीन होकर भी प्रभावशील एवम् सुरुचिपूर्ण है।

दाँत—स्निग्ध, एक दूसरे से मिले हुए, कुंदकली के समान श्वेत एवम् तुल्य जैसे दाँत उत्तम माने जाते हैं।[९] इस दृष्टि से जिन प्राचीन उपमानों का प्रयोग हुआ है, वे कुंदकली, दामिनी, मोती, हीरा, दाड़िम, श्याम मकोय आदि हैं। नवीन उपमानों का अभाव है।

पलक भौंह एवम् तिल— काली घनी सी, सुदृढ़ एवम् सूक्ष्म पलकें उत्तम मानी जाती हैं। धनुष के समान वक्र, मुलायम एवम् काली भौंहें उत्तम होती हैं।[१०] पलकों के लिए मधुप, पुष्प-रेखा आदि भौंह के लिए धनुष, भ्रमरावली, चालक, तरंग आदि एवम् तिल के लिए भ्रमर, अलिशावक, घुँघची का पासा, पुष्प आदि प्राचीन उपमानों का प्रयोग हुआ है। नवीन मौलिक उपमानों का अभाव है। केवल तिल के लिए जायसी द्वारा प्रयुक्त 'भँवर' उपमान इस दिशा में नवीन प्रयास है।

ग्रीवा—नरम मांसल एवम् सीधी गर्दन स्त्रियों के सौभाग्य की सूचक मानी

---

६ सामुद्रिक शास्त्र, श्री [illegible] श्लोक ५४।

७ सामुद्रिकतिलक पृ० ४। १५१ से १५२।

८ वही ४। १४२।

९ वही ४। १४८, १४९।

१० वही ४। १७२, १७४।

गई है और गले में त्रिवली का पड़ना बहुत उत्तम माना जाता है।[११] ग्रीवा के लिए कम्बु, सुराही, मयूर, कंचन तार संयुक्त सीपी आदि का प्रयोग हुआ है। सभी उपमान प्राचीन हैं, नवीन उपमान नहीं।

वाणी—सामुद्रिक लक्षणों के अनुसार हंस क्रौंच भ्रमर कोकिल तथा चक्रवाक के से स्वर वाली स्त्री उत्तम समझी जाती है।[१२] वाणी की सौंदर्य-व्यंजना की दृष्टि से कोकिल सारंग मधुकरी वीणा आदि प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों का अभाव है।

मुस्कान अथवा हास्य—मुस्कराते अथवा हंसते समय जब स्त्री का गंडस्थल सहज रूप से हिलता है दंत-पंक्तियां दृष्टिगोचर नहीं होतीं और कल ध्वनि व्यक्त होती है वह शुभ लक्षण समझा जाता है।[१३] मुस्कान के लिए अरुण की बाल्सात किरण, अमृत आदि प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों के दर्शन नहीं होते।

बाहु हाथ हथेली एवम् अंगुलियां—सिरीष पुष्प के समान कोमल एवम् रोम रहित मांसल बाहुएं, हाथी की सूंड के समान लचकदार बीच हाथ कमल के समान मनोहर एवम् नव पल्लव के समान चमकदार तथा आरक्त हथेली और लंबी मृदु त्वचा वाली क्रमशः वर्तुलाकार एवम् गोल स्निग्ध अंगुलियां, स्त्री-सामुद्रिक की दृष्टि से शुभ एवम् सौभाग्य-सूचक समझी जाती हैं।[१४] बाहुओं के लिए कनक-दंड, कदली नाल, पद्म-नाल, चंदन-खंभ आदि, हाथों के लिये समान कमल, लता-पल्लव पुष्प आदि। हथेलियों के लिए कमल कुसुम-रवि-प्रभात एवम् अंगुलियों के लिए मंजरी जैसे प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमान दृष्टिगोचर नहीं होते।

उरोज—स्त्री-सामुद्रिक के अनुसार गोल गदराकार, दृढ़ पुष्ट कठिन एवम् कंचन कलशवत् कुच उत्तम माने जाते हैं।[१५] उरोजों के लिए कंचन-मदुङ्ग कनक-कटोरे, कंचन-लेस नारंगी गंभीर, श्रीफल तुरंग मदुङ्ग स्वर्ण-कुंभ उत्तुङ्ग-शृंग, तूम्बी, शिव सरोज वशीकर्ण चूर्ण आदि उपमानों का प्रयोग हुआ है। प्रायः सभी उपमान प्राचीन हैं, नवीन उपमानों का अभाव है।

नाभि त्रिवली एवम् रोमावलि—गंभीर, गोल दक्षिणावर्त विस्तीर्ण एवम्

---

११. सामुद्रिक तिलक ४।१२६, १३२।
१२ सामुद्रिक शास्त्र, स्त्री लक्षणाधिकार श्लोक ६५।
१३ सामुद्रिक तिलक ४।१६०।
१४ वही ४।१०३,१०८ एवम् १२१।
१५ वही ४।८८, ८९।

कमल की ताजी कली के समान नाभि स्त्रियों के सौभाग्य की सूचक होती है।[16] पेट पर पड़नेवाली तीन वलियाँ सुभग एवम् पतली मृदुल तिमिर रेखा के समान मनोहर और मुलायम रोमों से बनी रोमावली सौभाग्य की वृद्धि करने वाली मानी गई है।[17] नाभि के लिए सागर की भंवर कुरंगिनी का पोख अर्थात् खुर का पड़ा हुआ चिह्न त्रिवली के लिए सिए हिम ताल त्रिगुण तरंग एवम् रोमावली के लिए लता मदन-रेख आदि प्राचीन उपमान ही प्रयुक्त हुए हैं। नवीन उपमान उपलब्ध नहीं होते।

पीठ एवम् कटि—निर्लोम मांसल एवं सीधी पीठ स्त्रियों के लिए सुख सौभाग्यप्रद मानी गई है।[18] इसी प्रकार चौबीस अंगुली की परिधि वाली लचकदार तथा मजबूत उन्नत नितम्बयुक्त एवं सम चौरस दिखनेवाली कमर उत्तम मानी जाती है।[19] पीठ के लिए मलयगिरि एवं कटि के लिए सिंह मृणाल-तंतु, कमान एक मुष्टि आदि प्राचीन उपमान ही व्यवहृत हुए हैं। नवीन उपमानों का अभाव है।

नितंब एवम् जंघा—सामुद्रिक मतानुसार स्त्रियों के समुन्नत, मांसल पृथु एवं पीन नितंब उत्तम माने गए हैं।[20] साथ ही रोमरहित कदली स्तम्भ जैसे एवम् हाथी की सूंड के समान उरु उत्तम स्त्रियों के पाए जाते हैं।[21] नितंब के लिए कूर्म एवं अर्ध तुम्बी तथा उरु के लिए कदली-खंभ मदन के विनोद यन्त्र कलभ आदि पुराने उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमान नहीं पाए जाते।

पद-तल—स्त्रियों के उष्ण अरुण सम मांसल मृदुल एवं स्निग्ध पद-तल उत्तम माने गए हैं।[22] अतः पद-तल के लिए पद्म अमल-पत्र आदि प्राचीन उपमान ही प्रयुक्त हुए हैं। नवीन उपमानों का अभाव है।

गति—सामुद्रिक मतानुसार जिन स्त्रियों की गति मदोन्मत्त हाथी हंस गाय वृषभ नकुल सिंह मयूर एवं मार्जार जैसी होती है तो वे स्त्रियां सौभाग्य ऐश्वर्य एवं वैभव का उपभोग करनेवाली समझी जाती हैं।[23] अतः गति-सौंदर्य के लिए गज मराल एवं केहरी जैसे उपमानों का प्रयोग हुआ है। इस दिशा में किसी नवीन उपमान का प्रयोग नहीं हुआ है।

वर्ण—शारीरिक लक्षणों की अपेक्षा सामुद्रिक की दृष्टि से भी स्त्रियों का वर्ण अधिक फलदायी माना गया है और इसीलिए उन्हें वर्णिनी कहा जाता है।[24]

---

१६ सामुद्रिक तिलक ४। ६६, ६७।
१७ वही ४। ८०, ८१।
१८ वही ४। १२७।
१९ वही ४। ४२।
२० वही ४। ४३।
२१ वही ४। १८।
२२ वही ४। १६।
२३ वही ५। १३५, १३६।
२४ वही ५। १०४।

पंकज किंजल्क के समान तप्त सुवर्ण की तरह अथवा चंपक कुसुम के समान स्निग्ध गौर वर्ण शुभ समझा जाता है। नव दूर्वा के अंकुर जैसा, अर्जुन पुष्प के समान चमकीला श्याम वर्ण भी सौभाग्यसूचक माना गया है। वानर बालक के समान रात्रि के अन्धकार की तरह श्यामा चिड़िया के समान श्याम वर्ण भी लावण्य एवं सुख की वृद्धि करनेवाला माना गया है। एकदम सफेद अथवा कपिश वर्ण शुभ नहीं समझा जाता है।[25] स्त्री-शरीर का वर्णन साधारणतः श्यामल रूप में न करते हुए उसके गौर रूप का वर्णन करना ही कवियों में रूढ़-सा हो चुका है। इस दृष्टि से जो उपमान हिन्दी महाकाव्यकारों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं वे प्रायः रूढ़ ही हैं। वर्ण-सौंदर्य की व्यंजना के अन्तर्गत स्वर्ण चंपक कमल किंजल्क पराग विद्युत दीप-शिखा तथा इन्दु, इन्दिरा आदि प्राचीन उपमानों का प्रयोग हुआ है। जायसी द्वारा प्रयुक्त 'पारस' एवं प्रसादजी द्वारा प्रयुक्त 'बिजली का फूल' नवीन उपमान माने जा सकते हैं। भक्तजी एवं हर दयालुसिंहजी द्वारा प्रयुक्त 'गुलाब' भी नवीन उपमान के अन्तर्गत रखा जा सकता है जो फारसी-के प्रभाव के कारण ही व्यवहृत हुआ है।

वेश—नारी की वेश रचना भी उसकी रूप-व्यंजना में सहायक होती है। साधारणतः नील पीत एवं श्वेत वस्त्र उपमानों की तरह ही रूढ़ उपकरण हो गए हैं। उक्त तीनों रंगों के वस्त्रों का प्रयोग हिन्दी-महाकाव्यकारों ने भी किया है।

कद—सामुद्रिक मतानुसार स्त्री का अधिक लम्बा अथवा अधिक ठिगना होना अशुभ माना जाता है।[26] हिन्दी-महाकाव्यकारों द्वारा केवल प्रसादजी को छोड़ कर, नारी के कद-सौंदर्य की व्यंजना नहीं की गई है। इस दृष्टि से कद के लिए प्रयुक्त 'शिशु साल' उपमान अपने आप में मौलिक है।

लावण्य—सामुद्रिक शास्त्र के अंतर्गत लावण्य को 'छाया' की संज्ञा प्रदान की गई है और स्त्री के अंग प्रत्यंग का छायायुक्त होना अति उत्तम माना गया है।[27] रूप-लावण्य की व्यंजना की दृष्टि से नारी में सौंदर्य सुकुमारता मृदुता श्लक्ष्णता अति कोमलता एवं कान्ति-उज्ज्वलता होना आवश्यक है और इन गुणों का नाना देवियों के रूप से संग्रहित होना अनुमान का विषय है।[28] अतः लावण्य-बोध की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यों में जहां उमा लक्ष्मी शारदा रति आदि उपमान की तरह प्रयुक्त हुई हैं

---

२५. सामुद्रिक तिलक ५। १०४ से १०६।

२६. सामुद्रिक शास्त्र, स्त्री लक्षणाधिकार श्लोक ११।

२७. सामुद्रिक तिलक ५। १५०।

२८. हिन्दी-साहित्य की भूमिका पृ० २६०।

वहीं शरद-शशि, स्वर्ण कनिका, कुसुम-वैभव संयुक्तलता, मूर्तिमान उषा, छविगृह की प्रदीप्त दीप-शिखा आदि प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। प्रसादजी द्वारा प्रयुक्त नयन का अभिधान 'इन्द्रजाल' इस दिशा में नवीन उपमान माना जा सकता है। अन्य उपमानों से संतुष्ट न होकर कवियों द्वारा उपमेय को ही उपमान भी बना दिया गया है और सादृश्य की व्यंजना अनन्वय द्वारा हुई है।

रूप-वर्णन की विशेषताएं

हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि में व्यक्त नारी के रूप-वर्णन की विशेषताएँ प्रधानतः निम्नलिखित हैं —

[१] रासो से लगा कर रावण-महाकाव्य तक का रूप-वर्णन एक सुरुचि सम्पन्न कला-दृष्टि का द्योतक है। यह कला-दृष्टि निरन्तर विकसित होती चली गई है।

[२] काल-क्रम के अनुसार रुचि-भेद दृष्टिगोचर होता है। प्रारम्भ में नख-शिख वर्णन के प्रति जैसा लगाव दृष्टिगोचर होता है वह समयानुसार परिवर्तित होता चला गया है। नारी के विशेष अवयवों के प्रति जो अभिरुचि पूर्ववर्ती महाकाव्यों में दृष्टिगोचर होती है वह शनैः शनैः न्यून होती चली गई है।

[३] रूप-वर्णन के अन्तर्गत जहाँ एक ओर भारतीय साहित्य की उपमान परम्परा का निर्वाह हुआ है एवं अधिकांश उपमान अपने परम्परित स्वरूप में ही गृहीत किए गए हैं वहीं दूसरी ओर रूप-वर्णन की उस परम्परा को पकड़ कर नहीं रखा गया है जो नारी की मर्यादित सामाजिक आदर्श अथवा युग की विचारधारा के प्रतिकूल जाती हो।

[४] रूप-वर्णन के अंतर्गत बाह्य प्रकृति से प्रायः उन्हीं उपमानों को गृहीत किया गया है जो पारम्परिक समयानुसार नारी सौभाग्य के सूचक हैं।

[५] रूप-वर्णन के अंतर्गत प्रधानतः नारी के सात्विक एवं राजस स्वरूप की व्यंजना ही हुई है। तामस वृत्ति के अंतर्गत उसके श्यामल स्वरूप की झलक नाम मात्र को उपलब्ध होती है।

[६] फारसी से अपनाए गए विजातीय उपमान की संख्या अत्यधिक न्यून है और जो कुरुचिपूर्ण उपमान व्यवहृत हो चुके थे उन्हें या तो छोड़ दिया गया है अथवा उनके परिष्कृत रूप को ग्रहण कर लिया गया है।

[७] रूप-वर्णन के अंतर्गत नारी-सौंदर्य को विभिन्न दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया गया है और अभिव्यक्ति में भी वैचित्र्य के बजाय प्रांजलता आती चली गई है।

[८] रूढ़ उपमानों का प्रयोग के होने के बाद भी रूपाभिव्यक्ति में बुद्धिजनित कलाबाजी कम हृदयजनित सहज अधिक विकसित होती चली गई है और नारी की यह रूप-व्यंजना 'वाह-वाह' की वस्तु न होकर, सुन्दर की अनुभूति से उत्पन्न आनन्द की वस्तु है।

[९] रूप-वर्णन के वैविध्य में भी एकत्व के वे मूल भाव विद्यमान हैं जो नारी-सौंदर्य को सुरुचि-सम्पन्न कला-दृष्टि से देखने को बाध्य करते हैं।

[१०] रूप-वर्णन के अंतर्गत व्यक्त नारी की स्वरूप-व्यंजना केवल सुन्दर ही नहीं शुभ एवम् कहीं-कहीं मंगलमय भी हो उठी है। अतः शुभ एवं मंगलमय होकर यह रूप-वर्णन सौंदर्य के माध्यम द्वारा नारी के नायिका-स्वरूप का ही नहीं उसके मंगलमय मातृ रूप का भी व्यंजक हुआ है।

[११] नारी-सौंदर्य के सामान्य आदर्शों से अनुप्राणित होकर भी यह रूप वर्णन-प्रतिमा के नवांकुरों से हरिताभ हो उठा है और कल्पना के नत-नव रंगों से अनुरंजित है।

षष्ठ अध्याय

हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि

- महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गार—
  परंपरागत तथा आधुनिक।
- हिन्दी-महाकाव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण।
- नारी-चित्रण का बौद्धिक पक्ष और उसकी
  विशेषताएँ तथा सीमाएँ।

हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि के अंतर्गत नारी विषयक विचारधारा दृष्टिकोण एवम् उसका स्वरूप जानने के लिए सब प्रथम हमारा ध्यान महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गारों की ओर जाता है। रासोकार से लगाकर रावण महाकाव्यकार तक आते-आते लगभग एक हजार वर्षों की इस विचारधारा को अनेक ऐतिहासिक राजनैतिक सामाजिक एवम् धार्मिक परिवर्तन देखने पड़े हैं और यह विचारधारा भी न्यूनाधिक रूप से पूर्व कथित परिवर्तनों द्वारा प्रभावित हुई है। नारी-विकास की पृष्ठभूमि के अंतर्गत हम इन परिवर्तनों पर विचार कर चुके हैं। देश काल एवम् वातावरण के प्रभाववश जहां इस विचारधारा को अपना स्वर एवम् स्वरूप बदलना पड़ा है वहीं कुछ परम्परागत विचार संस्कारवश महाकाव्यकारों के नारी विषयक स्वर एवम् दृष्टिकोण को अपरिवर्तित ही रखते हैं। अतः इस विचारधारा के स्वरूप एवम् स्वर का विश्लेषण करने के लिए महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गारों का ज्ञान लेना आवश्यक है। हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि के अंतर्गत व्यक्त होनेवाले महाकाव्यकारों के उद्गार एवम् उनका विश्लेषण संक्षेप में इस प्रकार है —

रासोकार एवम् नारी – ऐतिहासिक दृष्टि से रासोकार का युग नारी की दासता का युग है। धार्मिक तथा सामाजिक विधि-विधानों द्वारा इस युग में नारी-निन्दा एवम् नारी-हेयता का प्रावल्य-सा रहा है। इस युग में कन्या का जन्म मातापिता के प्रश्न के कारण परिताप का विषय है। राजनैतिक दृष्टि से भी यह युग शक्ति-प्रदर्शन एवम् तलवार के बल पर व्यक्तिगत मान-सम्मान का निर्णायक युग है। अत नारी भी इस युग में तलवार की तुला पर तुलती रही है। तलवार की चमक एवम् नूपुरों की झनक के नाम पर एक ओर जहां युद्ध अवश्यम्भावी से हो उठते हैं वहीं आश्रय दाता के वैभव-विलास एवम् केलि-कलाप के नाम पर नारी शृंगार का साधन एवम् अंतःपुर की श्री-शोभा-वृद्धि का हेतु बनती है। ऐसी स्थिति में रासोकार भी जहां एक

ओर पति के प्रति अनन्य प्रेम-भावना एवम् नारी के लिए विनय-धारणा की आवश्यकता पर बल देते हुए परम्परागत स्वर में 'विनय मंगल' का पाठ पढ़ाकर अपने नारी विषयक उद्गारों को व्यक्त करता है,[1] वहीं दूसरी ओर उस ओर वासना तथा उत्तान शृंगारिकता के मध्य उसके कवि हृदय की सहानुभूति नारी की इस दीन स्थिति से द्रवित होकर संयोगिता के स्वर में इस प्रकार फूट निकलती है—'लोग न जाने क्यों स्त्रियों को नीच बुद्धि की समझते हैं। यह नहीं जानते कि इस सृष्टि की रचना स्त्रियों से ही हुई है। जो स्त्री जन्मभर सुख-दुःख बटाती है और पति के मरण के पश्चात् भी उसका साथ देती है उसे तुच्छ समझना अन्याय नहीं तो क्या है?[2]

रासोकार की द्वितीय विचारधारा जहाँ एक ओर नारी के प्रति उसकी सहानुभूतिजन्य सहृदय दृष्टि को व्यक्त करती है वहीं दूसरी ओर वह नारी के उस अस्मय युग में युग की अन्याय दृष्टि के समक्ष एक प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा कर, अपने क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का परिचय देता है। यद्यपि रासोकार का यह स्वर युग के मलिन मसले के नीचे दब जाता है पर हिन्दी का यह प्रथम महाकाव्यकार, हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि में अनजाने ही उस बीज का वपन कर देता है जिसे आगे चल कर इस बौद्धिक भूमि में विकसित होना है।

पद्मावतकार एवम् नारी—पद्मावतकार के युग में नारी की स्थिति रासोकार के युग से भी अधिक दयनीय हो उठी थी। धार्मिक क्षेत्र में निवृत्ति का बोलबाला था और नारी-निन्दा का स्वर पहले से भी अधिक प्रखर हो उठा था। सामाजिक कुरीतियों ने नारी की रही-सही स्वतंत्रता का भी अपहरण कर लिया था। ऐसी स्थिति में 'प्रेम की पीर' का प्रतिपादन करने एवम् प्रेम मार्गीय होने के बाद भी पद्मावतकार के नारी विषयक उद्गार उदार दृष्टिगोचर नहीं होते। रत्नसेन के मुँह से यह कहला कर कि 'तुम स्त्री हो तुम्हारी मति हीन है और वह मूर्ख होता है जो स्त्री के कहने में लगता है'[3] वहाँ पद्मावतकार नारी की हीनता का समर्थन करता जान पड़ता है, वहीं दूसरी ओर राघव भरथरि का उदाहरण देकर और योगी के लिए वनवासी तथा राज्य की निरर्थकता व्यक्त करते हुए,[4] वह निवृत्ति मार्ग के उस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जो नारी को त्याज्य वस्तु मानता है। इतना ही नहीं, वह उस युग के उस सामान्य सिद्धान्त का भी समर्थन करता दृष्टिगोचर होता है जो सिद्धान्त नारी को भी शक्ति द्वारा प्राप्य वस्तु मानता है। राघव के मुख से यह कहलाना कि

---

१ रासो, विनय मंगल प्रस्ताव समय ४६।
२ वही, समय ६६। २६६ से २६८।
३ जायसी ग्रंथावली पृ० ५५।
४ वही पृ० ५५।

'स्त्री और भूमि तलवार की दासी है और वह उसी की होती है जो तलवार का धनी होता है,'[5] इस बात का प्रमाण है कि पद्मावतकार का दृष्टिकोण नारी के प्रति अनुदार ही रहा है। शुक्लजी ने भी इस बात की पुष्टि की है कि जायसी के सामाजिक विचार भी प्रायः वैसे ही थे जैसे उस समय जन साधारण के थे।[6] अतः यह स्पष्ट है कि पद्मावतकार के नारी विषयक उद्‌गार तत्कालीन दृष्टिकोण के ही पोषक हैं।

मानसकार और नारी—मानसकार का युग वह मध्य युग है जो ऐतिहासिक धार्मिक सामाजिक एवम् राजनैतिक सभी दृष्टियों से नारी का अंधकार युग माना जाता है। अतः मध्य युगीन विचारधारा का प्रभाव मानसकार पर पड़ना भी स्वाभाविक ही था। ऐसी स्थिति में मानसकार के नारी विषयक उद्‌गारों से भी वही संकीर्णता एवम् अनुदार भावना व्यक्त होती है जो सामान्यतः तत्कालीन युग की विषाक्त विचारधारा बन कर विश्व व्यापिनी हो चुकी थी। किन्तु मानसकार के सामने जिस गार्हस्थ्य धर्म संस्थापन का आदर्श था और वह जगत को 'सियाराम मय' जानकर जिस महती भावना को लेकर चला था वह आदर्श और वह भावना उसे नारी के प्रति एकदम अनुदार हो उठने से रोकती है। इसलिए मानसकार के उद्‌गार जहाँ एक ओर मध्य युगीन संकीर्णता से अछूते नहीं रहने पाए हैं, वहीं दूसरी ओर वह उन विचारों का भी प्रतिपादन करता है जो परम्परा से चले आए हैं और अपने आप में उपदेशात्मक हो उठे हैं।

मध्य युगीन संकीर्णता तथा निवृत्तिपरक धार्मिकता के कारण मानसकार भी नारी को 'सहज जड़ अज्ञ' समझता है। वह नारी-चरित्र को अथाह समुद्र मानते हुए,[8] नारी होना भी एक दुर्भाग्यवर्धक वस्तु ही मानता है क्योंकि काने लंगड़े कुबड़े लोगों की कुटिलता एवम् कुचाल के साथ यह नारीत्व का संयोग भी इस कुटिलता एवम् कुचाल का वर्धक स्वीकार करता है।[9] तुलसी पावक समुद्र एवम् काल की तरह नारी को भी प्रबल मानते हैं[10] और विधाता के लिए भी अज्ञेय बताते हुए संपूर्ण कपट अवगुण एवम् पाप की खदान समझते हैं।[11] वे नारी में आठ अवगुण अर्थात् साहस अनृत चपलता माया भय, अविवेक अपवित्रता एवम् दयाहीनता की चर्चा भी करते हैं[12] और ढोल गंवार तथा शूद्र की भाँति नारी को भी ताड़न की अधिकारिणी घोषित करते दृष्टिगोचर होते हैं।[13]

---

५ जायसी ग्रंथावली पृ० १८४।
६ जा० ग्र० की भूमिका पृ० १२७।
७ मानस, बालकांड पृ० ७४।
८ मानस अयोध्याकांड पृ० ४२०।
९ वही पृ० ४१४।
१० वही पृ० ४८७।
११ मानस, अयोध्याकांड पृ० ५६१।
१२ मानस लंकाकांड पृ० ६११।
१३ मानस, सुन्दरकांड पृ० ६११।

यह मध्य युगीन संकीर्णता जब धार्मिकता का रूप ग्रहण करती है तो मानस कार के नारी विषयक उद्गार और भी कठोर हो उठते हैं। तुलसी कहते हैं काम क्रोध मद और लोभादि मोह की प्रबल सेना है। इनमें भी अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली माया रूपिणी नारी है। मोह के वन के लिए स्त्री बसंत है। जप तप और नियम सरोवर हैं नारी ग्रीष्म होकर सबको सोख लेती है। सब धर्म कमलों के समूह हैं माया रूपिणी स्त्री हिम ऋतु होकर उन्हें कठिन दुःख देती है। ममता जवास की बहुलता है वह स्त्री रूपी शिशिर ऋतु पाकर पल्लवित होता है। स्त्री पाप रूपी उल्लुओं के लिए सुख देनेवाली घोर अंधियारी रजनी है। बुद्धि बल शील और सत्य मत्स्य हैं स्त्री बंसी के समान है। स्त्री अवगुणों की मूल है, शूलप्रद एवम् दुःखों की खान है।[14]

मानसकार के द्वितीय प्रकार के नारी विषयक उद्गार भी परम्परागत हैं। नारी-धर्म अथवा पतिव्रता-धर्म का महत्व प्रतिपादित करते हुए वे नारी के लिए पति को ही एकमात्र देवता घोषित करते हैं।[15] पति की सेवा न करनेवाली स्त्री अधम है।[16] वृद्ध रोगी मूर्ख निर्धन अंधा बहरा क्रोधी और अत्याधिक निर्धन पति हो तो ऐसे पति का भी अपमान करनेवाली स्त्री यमपुर में नाना प्रकार के दुःख पाती है। स्त्री का एकमात्र धर्म व्रत और नियम शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम रखना है।[17] स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र होती है पर पति की सेवा करके वह शुभ गति प्राप्त करती है[18] इसी प्रकार एक ओर जहां मानसकार का हृदय सहानुभूति पूर्वक 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' कह कर नारी की पराधीनता से विदग्ध हुआ जान पड़ता है वहीं दूसरी ओर वह 'स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी' कह कर परम्परागत सिद्धांत का प्रतिपादन करता है।

मानसकार के नारी विषयक उद्गार विवाद का विषय रहे हैं। गांधीजी ने इसे अनिच्छापूर्वक किया हुआ अन्याय[19] माना है और शुक्लजी के कथनानुसार 'यह अपराध उन्होंने अपनी विरति की पुष्टि के लिए किया है।'[20] मिश्रजी के मतानुसार 'उज्ज्वल पक्ष के पोषण में कवि-कल्पना का उपयोग करना अपने उद्देश्य के अनुकूल न समझ कर गोस्वामीजी ने इसके श्यामल पक्ष पर ही बहुत जोर दिया है।'[21] नगेन्द्रजी

---

१४ मानस, अरण्यकांड पृ० ८०७, ८।

१५ मानस, बालकांड पृ० १२४।

१६ मानस, अरण्यकांड पृ० ७१५।

१७. वही पृ० ७१६।

१८ वही पृ० ७१७।

१९ धर्मपथ पृ० ६५।

२० गोस्वामी तुलसीदास पृ० ५५।

२१ तुलसी-दर्शन पृ० ९१।

की राय में तुलसीदास के रामचरित मानस तथा अन्य ग्रंथों में विभिन्न प्रसंगों में ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं जो किसी भी देश-काल की नारी के प्रति किसी रूप में भी न्याय नहीं करतीं।[२०] यह अनिच्छा हो या विरति की पुष्टि इत्यादि पक्ष पर दिया जानेवाला जोर हो या पात्रगत कथन परन्तु इतना स्पष्ट है कि मानसकार के नारी विषयक उद्गार मध्य युगीन संकीर्णता एवम् परम्परागतता के पोषक ही हैं। मध्य युगीन घुटन में दम तोड़ती नारी को मानसकार चाहे 'प्राण-वायु' के रूप में नारी धर्म का पुराना नुस्खा भले ही प्रदान करे, वह नारी के पक्ष में कोई क्रांतिकारी भावना प्रस्तुत नहीं करता। इस दिशा में सामान्य नारी को मानसकार जैसे 'लोकनायक महात्मा और महाकवि से मन्यता ही अधिक प्राप्त हुई है।

चन्द्रिकाकार और नारी—चन्द्रिकाकार के युग में नारी की स्थिति बद से बदतर ही होती चली गई है। चन्द्रिकाकार का युग चारों ओर से नारी की गिरावट का युग है। अतः चन्द्रिकाकार के नारी विषयक उद्गार भी अपने युग द्वारा प्रभावित होकर परम्परायत ही हैं। साथ ही चन्द्रिकाकार में 'वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होना चाहिए।'[२३] ऐसी स्थिति में चन्द्रिकाकार के केवल परम्परित उद्गारों की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त अन्य उद्गारों की आशा रखना ही वृथा है। कथन में भी पंगु पुष्प अवतार को स्वप्न में न त्यागने की व्यवस्था तो नारी के लिए की ही पर साथ ही कनही कोढ़ी और चोर, कुमारी व्यभिचारी कुपति को भी नारी के लिए अस्वास्थ्य[२४] घोषित करते हुए, परम्परा का ही पालन किया है। इसके अतिरिक्त धर्म कर्म की सफलता के लिए नारी की अनिवार्यता और उसकी अनुपस्थिति से होनेवाली निष्फलता[२५] की चर्चा भी उन्होंने परम्परा से चले आए विचारों की पुष्टि के रूप में ही की है। अतः चन्द्रिकाकार के नारी विषयक उद्गार परम्परित ही हैं और इन उद्गारों में 'सहृदयता' की झलक भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती।

प्रियप्रवासकार एवम् नारी—प्रियप्रवासकार का युग, नारी-जागृति का युग है। युग की सहृदयता का सूत्रपात हो जाने के कारण इस युग के नारी विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो चुका था। यद्यपि इस परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण प्रियप्रवासकार ने भी नारी विषयक भावना परिवर्तित स्वरूप में प्रकट की है परन्तु प्रियप्रवासकार के नारी विषयक उद्गार केवल दो स्थलों पर ही प्रकट हुए हैं। प्रियप्रवासकार ने एक स्थल पर प्रकट किया है कि 'नारी-हृदय-तल की पीड़ा नारी ही जानती है,[२६] और

.२ तुलसीदास एक विश्लेषण पृ० १२। २४ रामचन्द्रिका ८। १६।
२१ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २३१। २५ वही १५। १।
२६ प्रियप्रवास १५। ८।

द्वितीय स्थल पर यह व्यक्त हुआ है कि "मैं नारी हूँ तरल उर हूँ प्यार से बचिता हूँ। जो विकम, विमना, व्यस्त होती हूँ तो इसमें विचित्रता क्या है ?"[२०] दोनों ही बातें केवल एक तथ्य को व्यक्त करती हैं और वह तथ्य यही है कि नारी तरल हृदया होती है। इसे परम्परागत विचार ही माना जा सकता है।

साकेतकार और नारी—साकेतकार का युग सुधारवादी युग है। युग की उदात्त विचारधारा के अनुरूप ही साकेतकार भी नारी को अबला अबला न मानते हुए यह व्यक्त करता है कि नारी विश्व की गंभीरता प्रभु वीरता है। भूमि के कोटर, गुहा गिरि, गत आदि जिसके सहज संसर्ग से प्राणियों के लिए स्वर्ग से दीखते हैं। नारी कल्पवल्ली के समान दिव्य फल बांटनेवाली है।[१८] इस उदात्त विचारधारा के उद्घोष के साथ ही साकेतकार के अन्य नारी विषयक उद्गार, संस्कारजन्य भी हैं जिन्हें परम्परागत विचार ही कहा जा सकता है। वनवास की महिमा का बखान करते हुए साकेतकार के ये विचार कि 'आयुभर स्वामी का स्मरण सहमरण के धर्म से भी श्रेष्ठ एवम् ग्रह है'[१९] संस्कारजन्य विचार ही माना जा सकता है। इसी प्रकार 'नारियाँ आत्मसमर्पण करके निश्चिन्त हैं'[२] और 'कुल-स्त्रियाँ अपनी सुध नहीं लेतीं'[२१] जैसे उद्गार भी परम्परागत संस्कार के ही परिणाम हैं। फिर भी साकेतकार के नारी विषयक उद्गार सहृदयताजन्य हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साकेतकार के नारी विषयक उद्गार युग की सहृदय दृष्टि एवम् युग की मांग से अनुप्राणित हैं।

कामायनीकार एवम् नारी—कामायनीकार का युग नारी के नव जागरण एवम् शंखनाद का युग है। इस युग में जहाँ एक ओर नारी अपने अधिकारों के लिए स्वयं प्रयत्नशील दृष्टिगोचर होती है, वहीं उसे युग की वह सहृदयता भी प्राप्त होती है जो उसके वैधानिक अधिकारों तथा सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध हुई है। इस दिशा में कामायनीकार के नारी विषयक उद्गार भी अपनी उदात्त विचार धारा के कारण नारी-जागृति के उद्घोषक मंत्र बन कर सामने आते हैं। कामायनीकार की उदात्त विचारधारा एक बार पुनः नारी को सार्वदेशिक ऊंचाई तक उठाने का प्रयत्न करती दृष्टि ... ती है। कामायनीकार के नारी विषयक उद्गार युग-चिन्तन ... ही प ... प्रआधार पर अंकित ऐसे उदात्त चित्र हैं जो नारी की करत ... का पुनः प्रतिस्थापित करनेवाले सिद्ध होते हैं।

कामायनीकार नारी को केवल श्रद्धा मानते हुए जीवन के सुन्दर समतल में उसे पीयूष-स्रोत-सी बहते देखना चाहता है और आंसू से भीगे आंचल पर मन का सब कुछ रखते हुए अपनी स्मित-रेखा से वह उसे संधिपत्र लिखने के लिए प्रेरित करता सा दृष्टिगोचर होता है।[३१] आंसू से भीगे आंचल में मम बल के संकल्प से दान किए हुए नारी-जीवन के सोने से सपने हैं और इन सपनों को प्राप्त करने के लिए, मन का सबकुछ रख कर भी मुस्कराने की आवश्यकता है। यह मुस्कराहट श्रद्धा-समन्वित होकर ही उस संधि-पत्र को लिख सकती है जो जीवन के समतल में नारी को पीयूष प्रवाहिनी का पद प्रदान कर सके क्योंकि अवयव की वह सुन्दर कोमलता जो नारी सुलभ दुर्बलता के कारण उसे हराती आई है[३३] और जब कभी भी नारी ने स्वयं को तोलने का उपचार किया है तो वह स्वयं तुल आया करती है।[३४] अतः विगलित आंचल के भार को वहन करते हुए, श्रद्धा के बल पर ही उसके अधरों पर स्मितरेखा उभर सकती है और यह स्मित-रेखा ही जीवन का संधि-पत्र लिख सकती है। अतः कामायनीकार नारी को 'केवल श्रद्धा' घोषित करते हुए उसमें श्रद्धान्वित शक्ति का संचरण करना चाहता है जो नारी का आत्मबल बनकर उसके पथ को प्रशस्त कर सके। किसी भी सुधारक के हाथ में पड़कर यही तथ्य उपदेशपरक होकर 'नारी का आत्मबल ही उसकी उन्नति में सहायक हो सकता है' जैसे रूप में प्रकट होता। किन्तु यह नारी-समस्या की शाश्वत मीमांसा न होकर आर्यसमाजी देश पेश ही हो जाती। अतएव इस विचारधारा को हम एक चिन्तनशील साहित्यिक का नारी विषयक काव्यात्मक उद्गार मान सकते हैं।

इतना ही नहीं कामायनीकार पुरुषत्व-मोह में नारी की सत्ता को भूल जाने वालों की भर्त्सना करते हुए, यह तथ्य भी प्रकट करता है कि अधिकार और अधिकारी के मध्य समरसता का सम्बन्ध है और इस विश्वासमयी नारी को तुच्छ समझ कर उड़ा देने से काम नहीं चलेगा।[३५] इस समरसता के अंतर्गत वही उदात्त भावना है जिसे राजनीति में 'समानता' का नाम दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त निवृत्ति मार्गी लोगों द्वारा 'मायाविनी' बना कर कोसी जानेवाली नारी को कामायनीकार 'माया ममता का बल एवम् शक्तिमयी कोमल छाया'[३६] घोषित करता है। कामायनीकार नारी को सुहाग की अक्षय वर्षा स्नेह की मधु रजनी और जीवन की चिर अतृप्ति को संतोष प्रदान करनेवाली मानता है।[३७] संक्षेप में कहा जाय तो कामायनीकार की दृष्टि

---

३२ कामायनी पृ० १०६।
३३ वही पृ० १०४।
३४ वही पृ० १०५।
३५ वही पृ० १६२।
३६ वही पृ० २३८।
३७ वही पृ० २२६।

में मधु-धारा बहाती नारी के समक्ष पुरुष एक क्षुद्र पात्र[३८] ही साबित होता है। नारी विषयक उद्गारों की यह ऊंचाई युग दृष्टि के साथ-साथ कामायनीकार की अपनी विशेषता है और यह उस बीज-भाव का सर्वोत्कृष्ट विकसित स्वरूप है जो रासोकार द्वारा अनजाने ही हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि में डाल दिया गया था।

नूरजहांकार एवम् नारी—नूरजहांकार का युग आधुनिक युग ही है जो नारी का नव जागरण काल माना जाता है। किन्तु नूरजहांकार ने जिस युग की कथावस्तु के आधार पर अपने महाकाव्य का प्रणयन किया है, उसके कारण उसमें युगीन तथा तत्कालीन दोनों ही प्रकार के नारी विषयक उद्गारों का मिलना स्वाभाविक है। फिर भी युगवाणी का अभाव हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। अतः नूरजहांकार के नारी विषयक उद्गार जहां एक ओर परम्परागत से लगते हैं वहीं दूसरी ओर उन पर आधुनिकता की छाप भी है। नूरजहांकार के मतानुसार नारी-हृदय पर अत्याचारी का छल-बल विजय नहीं पा सकता है क्योंकि इस कोमल तन के भीतर हृदय कोट का जो मंडल है उसके कारण विश्व-लुटेरों का बस वहां कभी कुछ नहीं पाता है।[३९] नारी अपने कर्तव्य-धर्म पर तन मन धन हारती है। उसके पावन घर की दीवारों के भीतर अमर दम्पति धर्म रहता है।[४०] इस विचारधारा को हम परम्परागत भावनाओं के अंतर्गत ही रख सकते हैं।

'अबला नारी'[४१] और 'औरत के हिस्से में बुद्धि नहीं आई है'[४२] जैसे विचार तत्कालीन युग के प्रतीक बन कर आए हैं। आधुनिकता से प्रभावित उद्गारों के अन्तर्गत हम नारी के आहत हृदय की हुंकार पाते हैं। नूरजहांकार कहता है 'नारियों का कुछ कर्तव्य है तो उतना ही अधिकार भी है। हृदयहीन पति का पत्नी पर बहुत अत्याचार हो गया है। यदि परस्पर प्रेम तथा सद्भावपूर्ण व्यवहार नहीं है तो 'निकाह' अबलाओं को ठगने का व्यापार है।'[४३] इस प्रकार नूरजहांकार में भी युग की उदात्त भाव-धारा के दर्शन होते हैं।

सिद्धार्थकार एवम् नारी—सिद्धार्थकार का युग भी नारी-जागृति का ही युग है किन्तु महाकाव्य की कथावस्तु के कारण सिद्धार्थकार द्वारा व्यक्त नारी विषयक उद्गार या तो अपने निवृत्ति परक स्वरूप में प्रकट हुए हैं अथवा निवृत्ति विरोधी स्वरूप में। कुछ चिर परम्परा से चले आए दृष्टिकोण की पुष्टि करने वाले हैं। एक ओर सिद्धार्थकार मोग की सफल औषधि सम्भोग को मान कर, नारी को विभ्रम का समूह

---

३८ कामायनी पृ० २२८।
३९. नूरजहां पृ० १२।
४० वही पृ० ६६।
४१ वही पृ० ८०।
४२ वही पृ० ८६।
४३ वही पृ० ८७।

पाप विश्वासघाती कहता है,[४४] तो दूसरी ओर नारी को विषय-तरु की दृढ़ जड़ बताता है।[४५] सिद्धार्थकार नारी के कामिनी स्वरूप की शक्ति को व्यक्त करते हुए यह भी कहता है कि 'जो कामिनी के अधर पल्लव नहीं पीता है उसकी भ्रू-महिमा को मोहपूर्वक नहीं देखता है उसके चापमुक्त वेग देख कर सशङ्क नहीं होता है, वह क्लीव बैल अथवा भैंसा है। नारी सुषमा सुखमा सम्पत्ति की प्रणयिनी एवम् कुसुमायुध की मधुर प्रिया है। जो भूप इनको छोड़ कर वनवास लेते हैं वे वन में कुरूप तथा दुःखी बन कर अकेले फिरते हैं।[४६] वह नारी को पीयूष-पुंज रति-गति श्री का समूह आदि मानता है।[४७] पर साथ ही वह दुश्चरित्री काम-स्वरूपिणी एवम् महाराक्षसिया[४८] के विशेषणों से भी विभूषित होती है। अतः यह स्पष्ट है कि सिद्धार्थकार के नारी विषयक उद्गार परम्परागत विचारधारा के व्यञ्जक होकर ही व्यक्त हुए हैं। सिद्धार्थकार के नारी विषयक स्वर में कोई नवीनता या उदात्त विचार धारा नहीं है।

साकेतसंतकार एवम् नारी—साकेतसंतकार भी आधुनिक युग का महाकाव्यकार है। अतः उसके स्वरों में युग की सहृदय दृष्टि का समावेश होना स्वाभाविक है। किन्तु साकेतसंतकार के नारी विषयक उद्गार नवीन न होकर अपने परम्परागत स्वरूप में ही प्रकट हुए हैं। इन उद्गारों के अन्तर्गत संस्कार-मोह ही बोलता है। साकेतसंतकार के अनुसार नारी-मन में अपार क्षोभ रहता है और नारी का भाव एक कान्त पर ही होता है, पुरुष मन के समान न तो उसमें ध्वनि का विस्तार है और न अनन्त पर चाव।[४९] दुम बधु बन स्वच्छन्द रहती है उस सदम अपना नवन प्रसन्न है और अपना स्वजन-समाज प्रिय है।[५०] यह विचारधारा अपने परम्परागत स्वरूप में व्यक्त हुई है। दुष्यन्ती के रूप में पुरुष के एकाधिपत्य के सामने साकेतसंतकार ने आम्रपालि के मुख से यह कहलाते हुए कि 'तुम्हें क्या अधिकार है कि तुम वैदेही को भी दुःख में डालो'[५१] एक प्रश्नचिह्न अवश्य खड़ा कर दिया है किन्तु इस विषय में वह कोई मुक्त उद्गार व्यक्त नहीं कर पाया है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि साकेतसंतकार के नारी विषयक उद्गार परम्परा एवम् संस्कार समन्वित होकर भी दुष्यन्ती की सहृदयता से अछूते नहीं रहने पाए हैं।

---

४४ सिद्धार्थ पृ० ६७।

४५ वही पृ० १८१।

४६ वही पृ० २१७।

४७ वही पृ० २१८।

४८ वही पृ २२०।

४९ साकेत संत १।४५।

५० वही १।२२।

५१ वही ११।२८।

कृष्णायनकार एवम् नारी—कृष्णायनकार का युग नारी के नवोत्थान का युग है। इस युग तक आते-आते सैद्धान्तिक रूप से नारी जिस स्वच्छन्द वातावरण में सांस लेने लगती है और अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा जिस वातावरण की सृष्टि करती है वह वास्तव में उसकी प्रगति के पथ को प्रशस्त ही बनाता है। ऐसी स्थिति में परम्परागत कथावस्तु का सूत्र पकड़ कर ही कृष्णायनकार ने स्वयं को नवीन विचार धारा से अछूता नहीं रखा है। दार्शनिक पृष्ठभूमि के आधार पर वह नारी के माया स्वरूप की निन्दा नहीं करता। नारी और पुरुष के भेद को अभेद घोषित करते हुए वह कहता है कि जैसे क्षीर में धवलता एवम् अग्नि में दाहकता है वैसे ही पुरुष में नारी का निवास है और नारी को अलग करने पर पुरुष की कोई गति नहीं है। एक सदा है तो दूसरा नव सृष्टि है एक नय है तो दूसरा नीति है। पुरुष और नारी के रूप में दृष्टिगोचर होकर भी विश्व भर में एक तत्व ही व्याप्त है।[५२] इस प्रकार कृष्णायनकार स्त्री-पुरुष के मध्य किसी भेदाभेद का समर्थक नहीं है और न नारी के माया स्वरूप का निन्दक ही।

इसके अतिरिक्त युग वाणी से अनुप्राणित होकर कृष्णायनकार सत्यभामा के मुख से प्रकट होने वाले उद्‌गारों[५३] द्वारा जैसे पुरुष की चंचलता स्वेच्छाचारिता एवम् बहुपत्नीत्व प्रियता का पर्दा फाश करते हुए, पुरुष के कपट भाव एवम् संकुच हीनता का विरोध करता है और नारी के समाधिकारों का समर्थन करता जान पड़ता है। नारी को दुखी रख कर सुख शान्ति की आशा रखना दुराशा मात्र है और इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कृष्णायनकार यह भी कहता है कि 'कुल बाला का अपमान कभी निष्फल नहीं जाता उनके आंसुओं के साथ ही प्रलय पयोधि उमड़ पड़ता है।'[५४] अतः यह कहा जा सकता है कि कृष्णायनकार के नारी विषयक उद्‌गार भी अतीत की पृष्ठ भूमि पर अंकित वर्तमान विचारधारा के स्वर में जिनमें युग की उदात्त विचारधारा परिलक्षित होती है।

रावण महाकाव्यकार एवम् नारी—रावण महाकाव्यकार का युग प्रजातन्त्र का युग है किन्तु कथावस्तु के चुनाव में नवीनता एवम् नवीन दृष्टिकोण का प्रदर्शन करने के पश्चात् भी रावण महाकाव्यकार नारी विषयक कोई नवीन उद्‌गार प्रकट नहीं कर पाया है। एक ओर जहां अबला कपिला जैसे परम्परागत विशेषण व्यक्त हुए हैं वहीं दूसरी ओर कन्या-जन्म से प्राप्त होनेवाले परिताप सम्बन्धी विचार भी व्यक्त हुए हैं। रावण महाकाव्यकार का यह कथन कि 'कन्या जन्म से ही गुरुजनों को नपुता

५२ कृष्णायन पृ० ६६।
५३ वही पृ० १४२।
५४ वही पृ० ४२१।

देती है और जननी के हृदय में शोक उत्पन्न करती है,[५५] उस चली आई विचारधारा का ही द्योतक है जो मध्य युग में 'कन्या वध' जैसे अमानुषिक कृत्य का कारण बनी थी। फिर भी रावण महाकाव्यकार द्वारा व्यक्त उक्त विचार सहृदयताजनित है सैद्धान्तिक रूप में व्यक्त होने वाले उद्गार नहीं। रावण महाकाव्यकार द्वारा नारी विषयक कोई उल्लेखनीय उद्गार व्यक्त नहीं हो पाए हैं।

महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गारों पर विचार करने के पश्चात् हमारा ध्यान महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण की ओर जाता है। हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र-भूमि भाव-भूमि एवम् कथा भूमि के आधार पर नारी विषयक दृष्टिकोण का जो स्वरूप हिन्दी-महाकाव्यों के अंतर्गत हमारे सामने आता है, वह संक्षेप में इस प्रकार है —

सामन्तवादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण सर्वप्रथम हमारा ध्यान सामन्तवादी दृष्टिकोण की ओर आकर्षित करता है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी 'भोग्या' ही दृष्टिगोचर होती है। डाक्टर त्रिवेदी के मतानुसार 'वीर स्वभावतः रति प्रेमी पाए गये हैं और वे इस रति-भाव को केवल उद्दाम वासनाओं का नग्न चित्रण मानते हैं।'[1] अतः यह स्वाभाविक ही है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण नारी को शृंगार का माध्यम एवम् विषय-वासना की पूर्ति का साधन ही मान कर चलेगा। इसीलिए सामन्तवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी स्वरूप की चेरी घोषित होती रही है और तलवार उसके भाग्य का निर्णय करती चली आई है। सामन्तवादी मन-बहलाव के लिए उसका शारीरिक सौंदर्य उभार-उभार कर दिखाया गया है और उसका भाव-सौन्दर्य इस दृष्टिकोण के लिए गौण वस्तु बन कर रह गया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामन्तवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी अंतःपुर का 'अलबम' बन कर रह गई है और वह पत्नीत्व-प्रथा से सजाया गया यह अलबम अपने आप में मूक होकर, मन-बहलाव की वस्तु बना है। उसके नख-शिख की परख होती रही है, पर उसके हृदय की सूक्ष्म सहृदयता भी 'प्राणदान' प्राप्त न कर पाई है। सौभाग्यवश विलासी पति की उद्दाम वासना की पूर्ति करने के पश्चात् भी उसका पातिव्रत-भाव छिन नहीं पाया है और इस पातिव्रत की कसौटी चिता की मधुर ज्वालाएं रही हैं। पृथ्वीराज रासो और सीमा विशेष तक पद्मावत के नारी-पात्रों से यही सामन्तवादी दृष्टिकोण झांकता है। रासो एवम् पद्मावत् की नारियां यदि महान्

---

५५ रावण महाकाव्य १।१२।

१ चन्द बरदायी और उनका काव्य पृ० १५५।

है तो केवल इसीलिए कि चिता की आँच पर चढ़कर भी उन्होंने अपने पतिपरायणा स्वरूप पर आँच नहीं आने दी है अन्यथा सामन्तवादी दृष्टिकोण ने उन्हें उद्दाम वासना पूर्ति के नयनाभिराम पुष्प-गुच्छों से अधिक कुछ नहीं रहने दिया होता। संक्षेप में, सामन्तवादी दृष्टिकोण ऐन्द्रिकता प्रधान है।

भक्तिवादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का दूसरा स्वरूप भक्तिवादी दृष्टिकोण कहा जा सकता है। डाक्टर शैलकुमारी के कथनानुसार 'भक्ति-युग की सभी धाराओं में नारी के दो रूप दिखाई पड़ते हैं सामान्य तथा विशेष। प्रथम रूप लौकिक तथा यथार्थ है और द्वितीय काल्पनिक पारलौकिक तथा आदर्श। प्रथम रूप में नारी निन्दनीय है दुर्गुणों की खान है माया का प्रतीक है और द्वितीय रूप में वह ग्राह्य तथा आदरणीय है।[१] यह तथ्य अपने आप में इतना स्पष्ट है कि इस तथ्य के प्रकाश में नारी विषयक भक्तिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी-महाकाव्यों के भक्तिवादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में कुछ बातें और विशेष-रूप से उल्लेखनीय हैं। भक्तिवादी दृष्टिकोण रखनेवाले कवियों ने नारी के कामिनी स्वरूप को भले ही कोसा हो पर वे नारी के मातृ स्वरूप को वन्दनीय ही मानते हैं। पातिव्रत भाव उनके लिए पूजनीय रहा है और नारी के शारीरिक सौंदर्य की व्यंजना से भी वे संयत रहे हैं। भक्तिवादी दृष्टिकोण की विरक्ति-प्रियता नारी निन्दक होकर भी हृदयहीन नहीं है और नारी-जीवन के आदर्श स्वरूप की सात्विक व्यंजना कर उन्होंने अनुकरणीय नारी-पात्रों का सृजन किया है। भक्तिवादी दृष्टिकोण ने नारी की सुन्दरता को सुन्दर बना कर मन बहलाव की वस्तु ही नहीं चरित्र-परिष्कार की वस्तु बनाया है। संक्षेप में भक्तिवादी दृष्टिकोण आदर्श प्रधान होकर भी एकांगिकतापूर्ण है।

मानवतावादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का तृतीय स्वरूप मानवतावादी है। यह दृष्टिकोण नारी को सहृदयता की तुला पर तोलता है। मानवतावादी कवि 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का उपासक है। उसका सत्य न तो दार्शनिक का सत्य है, न तार्किक का सत्य और न वैज्ञानिक का। उसका शिव सर्वत्र शास्त्र-अनुमोदित भी नहीं होता। उसका सुन्दरम् नयनाभिराम ही नहीं भावाभिराम भी होता है। अतः मानवतावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी के प्रति एकपक्षीय झिड़की का अभाव है और इसीलिए मानवतावादी कवि कुटिल कैकेयी को भी 'ग्लानि' की वस्तु न बनाकर 'सौ बार धन्य'[२] की अधिकारिणी मानता है। वह दृष्टिकोण ग्रामीण समझी जानेवाली नारियों में भी रूप-सौन्दर्य एवम् भाव-सौन्दर्य दोनों ही पाता है 'पावक मेरा

---

१ आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी २ साकेत पृ० २४१।
भावना पृ० ७।

काव्य' इसका उदाहरण है। यह दृष्टिकोण काव्य की उपेक्षिताओं का उद्धारक, लाञ्छिता नारियों के मानस का प्रकाशक एवम् नारी विषयक सहृदयता का विस्तारक है। संक्षेप में मानवतावादी दृष्टिकोण सहृदयता प्रधान अधिक है।

सुधारवादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का चतुर्थ स्वरूप सुधारवादी है। यह दृष्टिकोण नारी के सुधारवादी स्वरूप का व्यंजक है और युगादर्श से अनुप्राणित है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत जहाँ एक ओर नारी का 'रोगी वृद्ध जनोपकारनिरता'[४] स्वरूप उसे तदन हुआ 'विश्व प्रेमानुरक्ता'[५] के रूप में उपस्थित करता है वहीं दूसरी ओर वह अपने पाँवों पर खड़ी होकर गाम की सभ में कातने-बुनने की बात भी करती है।[६] इतना ही नहीं इस सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण वह 'नारी के दो टुकड़ों'[७] से भी अलंकृत हो उठती है। यह दृष्टिकोण सर्वथ ही नवीनता को स्वीकार नहीं करता। सुधारवादी दृष्टिकोण संस्कारी कोटा है जो कभी नवीनता के पलड़े की ओर झुक जाता है और कभी परम्परा के पलड़े की ओर। पर उसकी स्थिति सदैव दोनों के मध्य ही बनी रहती है। संयम श्रद्धा निष्ठा और सहृदयता सुधारवादी दृष्टिकोण की सम्पत्ति है। इसीलिए सुधारवादी दृष्टिकोण म आदर्श-समन्वित भावुकता का प्राधान्य है।

समानतावादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का पंचम स्वरूप समानतावादी है। युग की उदात्त विचारधारा से प्रभावित होकर यह दृष्टिकोण नारी को समभाव से प्राण-प्रतिष्ठा करता है और उसकी हीनता के सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखता। इसके अंतर्गत नारी अपने तप पूत स्वरूप मे दृष्टिगोचर होती है और यह सर्व मंगला नारी अपने विकल साथी को अवलम्ब प्रदान कर ठिठोली करने का अवसर[८] ही नहीं देती है। समानतावादी दृष्टिकोण में हृदय एवम् बुद्धि का समन्वय है। इसीलिए समानतावादी नारी विषयक धारणा नारी को न तो हृदयहीन बना कर सिर पर चढ़ाए रखना चाहती है और न उसे केवल भावुकता की पिटारी बनाकर अप्रतिमविलासता में अकर्मण्य बना कर छोड़ देना चाहती है। हृदय-तत्व और बुद्धि तत्व के समन्वित स्वरूप में ही समानतावादी दृष्टिकोण की सत्ता है। अतः इस दृष्टिकोण में विवेक-समन्वित भावना का प्राधान्य है।

कलावादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों का नारी विषयक षष्ठ दृष्टिकोण कला वादी कहा जा सकता है। यह दृष्टिकोण कौशल के माध्यम द्वारा नारी की स्वरूप

४ प्रियप्रवास ४। ८।
५ वही १७। ५४।
६ साकेत पृ० २११।
७ साकेत-संत पृ० १६०।
८ कामायनी पृ० २६०।

व्यंजना करता दृष्टिगोचर होता है। कहीं यह अपने वस्तुपरक रूप में दिखाई देता है और कहीं तथ्यपरक स्वरूप में। प्रतिकारमकता इस दृष्टिकोण की प्रधान विशेषता है और इसीलिए कलावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी की बिखरी अलकें भी 'तर्क-जाल'[९] के रूप में व्यक्त होती हैं और उसके पावस रूप[१०] की चर्चा भी होती है। यह दृष्टिकोण जहाँ एक ओर नारी के प्रेममय स्वरूप की व्यंजना करता है, वहीं दूसरी ओर उसके जन-कल्याणी स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह दृष्टिकोण ज्ञान और विज्ञान को भी कला के रूप में देखता है और कला के रूप में ही व्यक्त भी करता है। संक्षेप में, कलावादी दृष्टिकोण कौशल प्रधान है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का सक्षम स्वरूप मनोवैज्ञानिक है। यह दृष्टिकोण मनोविज्ञान के आधार पर नारी का मनोविश्लेषण करते हुए ही उसके सत-असत् स्वरूप की व्यंजना करता है। नारी के पूर्व कथित दोनों ही स्वरूपों की व्यंजना करते समय यह दृष्टिकोण सम्पूर्ण रूपेण मनोवैज्ञानिक ही रहता हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत मनोविश्लेषण शास्त्र के आधार भूत सिद्धान्तों का निर्वाह भी सम्यक् रूप से नहीं हो पाया है। पर तुलनात्मक मनोविज्ञान ने नारीहीनता' की जिस परम्परागत धारणा को मिथ्या सिद्ध किया है, उससे यह दृष्टिकोण भी प्रभावित है। नारी में संवेगात्मक तीव्रता भावना-क्रम का उद्रेक एवम् हीनता ग्रंथि का अभाव जहाँ कहीं भी दृष्टिगोचर हुआ है, वह इस मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की ही देन है।

हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण के अंतर्गत प्रायः उक्त दृष्टिकोण ही प्रधानतः पाए जाते हैं। प्रत्येक महाकाव्य में एकाधिक दृष्टिकोण का समावेश है। कुछ महाकाव्यों में दृष्टिकोण विशेष को सामने रख कर ही नारी का चरित्रांकन किया गया है और कुछ महाकाव्यों में सहज रूप से ही कुछ दृष्टिकोण व्यंजित हो उठे हैं। साथ ही यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है हिन्दी-महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण विस्तीर्ण होता चला गया है। यह भावसंकुल न रह कर क्रमशः भाव-विस्तार पाता रहा है।

नारी-चित्रण का बौद्धिक पक्ष विशेषताएं तथा सीमाएं

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्‌गारों एवम् महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि नारी-चित्रण की दृष्टि से अपनी कुछ विशेषताएं रखती है और उसकी

---

९ कामायनी पृ० १६८। १० जायसी ग्रंथावली प० २१।

कुछ सीमाएं भी हैं। जहां तक नारी-चित्रण के बौद्धिक पक्ष की विशेषताओं का प्रश्न है वे प्रधानतः निम्नलिखित हैं —

[१] नवीनता के आग्रह के बाद भी परम्परा का मोह पाया जाता है। सुरीख सावधानपूर्ण ज्ञान का समुचित प्रयोग करते हुए, परम्परा की पृष्ठ-भूमि पर ही नवीनता की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। अतः उसमें अस्वाभाविकता का दोष नहीं आने पाया है।

[२] युग-वाणी से प्रभावित होते रहने के कारण कालानुसरण की अद्भुत क्षमता दृष्टिगोचर होती है।

[३] बहुरूपता संयम एवम् निष्ठा का समन्वय होने के कारण यह पक्ष न तो एकदम भावुकतावादी ही हो पाया है और न एकदम बुद्धिवादी ही।

[४] कथानक रूढ़ियों एवं उपमान और सामान्य विचारधारा का उपयोग करने के कारण जहां यह पक्ष सरल हो उठा है, वहीं इसमें कला विषयक अभिव्यंजना शक्ति के साथ सुरुचि-सम्पन्नता भी विकसित होती चली गई है।

[५] आत्मानुसरण के साथ ही उदात्त भावना का सम्यक उपयोग धूप जल की भांति इस पक्ष को सीमा-संकुल न रख कर सरिता-प्रवाह की तरह निरंतर आगे बढ़ाता रहा है। नवीनता के उफान में भी यह बुद्धि-धारा संस्कार एवम् संस्कृति के उभय गुणों का प्रतिबिम्ब स्वीकार करती रही है और इसीलिए अपने संहारक स्वरूप में दृष्टिगोचर नहीं होती।

[६] विचारधारा में क्रमिक घुमाव भी दृष्टिगोचर होता है। अतः वैचारिक विरोध भी अपने विषमता स्वरूप में व्यक्त न होकर, विचार-स्वातंत्र्य के रूप में परिलक्षित होता है।

[७] परिवर्तित दृष्टिकोण भी पगडंडियों की तरह अनिश्चितता के अरण्य में खो नहीं गया है। वह पूर्वनिर्धारित आदर्श मार्ग के समानान्तर चल कर भी अंत में सीमा विशेष पर स्वयं को इस मार्ग से मिला देता है। पातिव्रत भावना एक ऐसा चौराहा है जहां आकर सभी नवीनतावादी मार्ग इस आदर्श मार्ग से मिल जाते हैं।

[८] बुद्धिगर्भित होकर भी चमत्कारवादिता अलौकिकता या मिथ्यापरकता अधिक दूर तक चल नहीं पाई है और उसे अपने अस्तित्व के लिए स्वाभाविकता की शरण ही लेनी पड़ी है। यह स्वाभाविकता अपने मूल स्वरूप में मानवता है।

[९] यह पक्ष प्रधानतः सात्विक एवम् राजस स्वरूप का ही प्रतिपादन करता चला आया है। तामस स्वरूप का प्रतिपादन नाम मात्र को हुआ है और इस तामसी वृत्ति को भी या तो परिताप द्वारा निर्मल बना लिया गया है या उसे उपेक्षित-सा छोड़ दिया गया है।

[१०] सत् और असत् दोनों ही रूपों को उपस्थित करने के बाद भी कभी सत् को पराजित नहीं होने दिया गया है और न असत् कभी इतना सिर ही उठाने पाया है कि वह सत् की मर्यादा को धक्का पहुँचावे।

[११] भारतीयता को अक्षुण्ण रखा गया है और विजातीय विचारधारा को भी भारतीयता के रंग में रंग लेने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है।

बौद्धिक सीमाएं :—उक्त बौद्धिक विशेषताओं के होते हुए, नारी-चित्रण की बौद्धिक पक्ष की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं जिनका अतिक्रमण न कर पाने के कारण नारी-चित्रण में कुछ दोष अथवा कमजोरियां भी दृष्टिगोचर होती हैं। इस सीमा को निर्धारित करनेवाले तत्त्वों में धर्म समाज अंधविश्वास और जड़ता विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के अधिकांश महाकाव्यों की कथावस्तु धर्मानुमोदित है और अधिकांश नारी-पात्र जन मात्र जनता के मन में एक सुनिश्चित स्वरूप ग्रहण कर चुके हैं। ऐसी स्थिति में एक सीमा तक ही उनका चित्रण सम्भव है। सामाजिक मर्यादाएं भी चित्रण-स्वतन्त्रता पर अंकुश का काम करते हुए कुछ सीमाएं निर्धारित कर देती हैं। कुछ संस्कारजन्य अंधविश्वास भी अस्वाभाविकता के पोषक बन कर सामने आते हैं। भाग्यवादिता शकुनप्रियता आदि के कारण भी कुछ अस्वाभाविक व्यंजना हो जाती है किन्तु यह स्वरूप इतना सामान्य हो चुका है कि भारतीय दृष्टिकोण से उसे अस्वाभाविक मानना कठिन हो जाता है। जड़तावश अपनाए गए परम्परा से चले आनेवाले कुछ रूढ़ विचारों के कारण भी नारी-चित्रण का बौद्धिक पक्ष दुर्बल हो उठता है। नारी स्वयं को 'अबला' घोषित करने की आदी हो गई है। यह सत्य है कि कवि क्रान्तिदर्शी होता है किन्तु निरंकुश नहीं। अतः उसे इन सीमाओं का अनिच्छापूर्वक भी पालन करना पड़ता है और इसीलिए हिन्दी-महाकाव्यों के बौद्धिक पक्ष के अंतर्गत, इन सीमा रेखाओं द्वारा नारी-चित्रण में कहीं-कहीं कुछ वैषम्य भी आ गया है।

सप्तम अध्याय

हिन्दी-महाकाव्यों की तुलनात्मक भूमि

- नारी-पात्रों का तुलनात्मक विवेचन—
  - हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन-विरहिणियाँ
  - हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन-संगिनियाँ
  - हिन्दी-महाकाव्यों की प्रेमिकाएँ
  - हिन्दी-महाकाव्यों की माताएँ
- हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी-महाकाव्यों के नारी पात्रों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय भाव-साम्य सम्बन्ध-साम्य या स्वरूप-साम्य के आधार पर नारी के चार स्वरूप प्रधानतः दृष्टिगोचर होते हैं—विरहिणी-स्वरूप प्रेमिका-स्वरूप मातृ-स्वरूप एवम् जीवनसंगिनी-स्वरूप। सामान्यतः संयोग और वियोग नारी-जीवन के साथ संलग्न रहते हैं। *प्रिय का संयोग-लाभ प्राप्त कर वह या तो प्रेमिका के रूप में दृष्टिगोचर होती* है अथवा प्रेमजन्य परिस्थितियाँ उसे जीवन-संगिनी के रूप में परिवर्तित कर देती हैं। मातृत्व उसके जीवन की सार्थकता है।

अपने वियोग-काल में साधारणतः भावुक हृदया होने के कारण प्रायः सभी नारियाँ अन्य विमनितावस्था में दृष्टिगोचर होती हैं और विरहजन्य पीड़ा के कारण उन्हें वियोग की एकादश दशाओं से गुजरना पड़ता है। परिस्थिति अथवा वातावरणवश इस वियोग की मात्रा में भेद हो सकता है, पर उसका वियोग, वियोग ही रहता है तथा यह वियोगावस्था उसे विरहिणी के रूप में उपस्थित कर देती है।

प्रेम नारी के भावुक हृदय की साधना और यौवन की सफलता है। अनुराग के क्षण उपस्थित होते ही नारी प्रेम-बंधन में पड़ जाती है और उसका भावुक हृदय, प्रेम के रंग में सराबोर होकर उसे एक प्रेमिका के रूप में परिणित कर देता है। प्रेमजन्य परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर उसके जीवन की धारा को परिवर्तित कर देती हैं और वह जीवन-संगिनी के रूप में उपस्थित हो जाती है, किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियाँ कभी-कभी उसे केवल प्रेमिका ही रखती हैं।

नारी का जीवनसंगिनी-स्वरूप सामाजिक आदर्शों और नर-नारी के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित रहता है। जीवन-यात्रा में पत्नी की दृष्टि से उसके कुछ कर्तव्य होते हैं और कुछ अधिकार भी। अपने कर्तव्य-पालन में रत नारी का जीवनसंगिनी

स्वरूप उसके व्यक्तित्व को विशिष्टता प्रदान करता है और उसके शील स्वभाव का निरूपण करता है।

मातृत्व नारी के जीवन की सार्थकता है। उसके हृदय का संपूर्ण वात्सल्य उसके हृदय की संपूर्ण महिमा इसी मातृ स्वरूप के अंतर्गत दृष्टिगोचर होती है। वात्सल्य अनुकूल परिस्थितियों में अपने संयोगी स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है और प्रतिकूल परिस्थितियों के आ जाने पर अपने वियोगी स्वरूप में परिलक्षित हो उठता है। वियोग काल में नारी के मातृ हृदय की महिमा अपनी संपूर्ण गरिमा के साथ जिस उदात्त रूप में प्रकट होती है वह अनुपम है।

नारी के उक्त स्वरूपों की व्यंजना हिन्दी-महाकाव्यों में प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। अतः नारी के उक्त स्वरूपों पर विचार करते समय उसका जो स्वरूप प्रधान है उसी के अन्तर्गत हम हिन्दी-महाकाव्यों के नारी पात्रों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करेंगे। तुलनात्मक दृष्टि का ध्येय किसी नारी पात्र की लघुता या महत्ता प्रदर्शित करना *नहीं अपितु उस परिस्थितिजन्य भाव-साम्य या असाम्य पर विचार करना है* जिसके अंतर्गत अपने स्वरूप विशेष में हिन्दी-महाकाव्यों के नारी पात्रों को गुजरना पड़ा है।

हिन्दी-महाकाव्यों की विरहिणियाँ

प्रिय-वियोग नारी का वियोग-काल है और विरह-विह्वलता इसका परिणाम है। यह वियोग चिर वियोग भी हो सकता है और काल-विशेष तक का वियोग भी रहता है। अतः वियोग-काल के आधार पर नारी या तो चिर वियोगिनी दृष्टिगोचर होती है या केवल वियोगिनी। हिन्दी-महाकाव्यों में चिरवियोगिनियों के रूप में दिखाई देनेवाले केवल दो ही नारी पात्र हैं। एक है राधा और दूसरी है यशोधरा। वियोगिनियों के रूप में प्रायः सभी नायिकाएँ या उपनायिकाएँ आ जाती हैं किन्तु इनमें नागमती एवम् उर्मिला का वियोग अपनी कुछ विशिष्टताएँ रखता है। ऐसी स्थिति में राधा यशोधरा नागमती और उर्मिला ही प्रधानतः अपने विरहिणी स्वरूप में हमारे सामने आती हैं। राधा के भी दो रूप हैं—प्रियप्रवास की राधा और कृष्णायन की राधा। कृष्णायन के अंतर्गत राधा की विरह-व्यंजना नाम मात्र को हुई है। अतः विरहिणी के अंतर्गत हम केवल प्रियप्रवास की राधा को ही ले सकेंगे।

हिन्दी-महाकाव्यों की इन चार विरहिणियों में दो चिर विरहिणियाँ हैं और दो केवल विरहिणियाँ। चारों प्रिय की प्रेम-पात्रियाँ रही हैं चारों को प्रिय का प्रेम प्राप्त हुआ है। अतः प्रिय के विछोह के कारण चारों के हृदय पर वज्रपात-सा होता है। चारों के साथ संयोग-काल की सुमधुर स्मृतियाँ हैं और इसीलिए प्रिय की

अनुपस्थिति में ये स्मृतियाँ उन्हें सालती रहती है। दिन रात आते-जाते हैं ऋतु-परिवर्तन होता है प्रकृति का सुषमाशाली स्वरूप एवम् नैसर्गिक उपकरण नेत्रों के आगे दौड़ जाते हैं पर चारों को सब फीके से जान पड़ते हैं। इनमें से तीन पत्नियाँ हैं एक प्रेमिका है। नागमती उर्मिला एवम् यशोधरा के पास पत्नीत्व का संबल भी है किन्तु राधा के पास केवल प्रेम-सम्बन्ध का संबल है। तीन के समक्ष विरह-काल की अनिश्चितता है, एक के समक्ष अवधि का गुरु भार है। नागमती एवम् उर्मिला का विरहिणी-वेश प्रिय-प्राप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है किन्तु राधा और यशोधरा चिर विरहिणियाँ ही रह जाती हैं। यशोधरा तनुज राहुल को पाकर हर्षित भी हो जाती है।[1] किन्तु राधा की मनोव्यथा स्याम-विरह-सतप्तजनों को सांत्वना प्रदान करते हुए भी गालों पर बूँद-बूँद टपकती रहती है और व्यथा के इस नीर को भी उसे 'आनन्द का नीर'[2] ही बताना पड़ता है। विरहावस्था की दृष्टि से नागमती-उर्मिला और राधा-यशोधरा का विरहिणी स्वरूप तुलनीय है।

सर्व प्रथम नागमती एवम् उर्मिला के विरहिणी स्वरूप पर विचार करना उत्तम होगा क्योंकि दोनों ही अवधि विशेष तक विरहिणियाँ रहती हैं। उर्मिला के समक्ष अवधि स्पष्ट है और वह जानती है कि उसे चौदह वर्षों तक यह विरह-सताप सहन करना है। उर पर अवधि-शिला का गुरु भार रख कर वह इस-उलझार से इस अवधि-शिला को तिल-तिल काटती रहती है।[3] नागमती के समक्ष अवधि अस्पष्ट है। उर्मिला के स्वामी कर्तव्य-पालन के निमित्त जाते हैं मगर नागमती के स्वामी नारी के मोह में नारी का त्याग कर विदेश गए हैं। अतः विरह-संताप के साथ सौत-सताप का खटका भी बना रहता है। उर्मिला तो आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान कर सकती है किन्तु नागमती के सामने 'कन्त को भुला कर संयम करनेवाली'[4] पद्मावती का भी चित्र रहता है। प्रिय की प्रतीक्षा करते समय भी रह रह कर उसके मन में यही खटका लगा रहता है कि शायद मेरा प्रियतम नारी के वशीभूत हो गया है और उसी ने मेरा प्रियतम मुझसे छीन लिया है।[5] उर्मिला के सामने इस प्रकार का कोई खटका नहीं है। इस विषमता के कारण ही नागमती को अपना संदेश भेजते समय प्रिय के साथ-साथ पद्मावती को भी संदेश भेजना पड़ता है और प्रिय-दर्शन की याचना के साथ उसे यह सौगन्ध भी खानी पड़ती है कि—

---

१ सिद्धार्थ पृ० ३०१।
२ प्रियप्रवास पृ० १७। ४०।
३ साकेत पृ० ३४०।
४ जायसी ग्रन्थावली पृ० १५६।
५ वही पृ० १५१।

अबहुँमया कर करु जिउ फेरा। मोहि जियाउ कंत देइ मेरा॥
मोहि भोग सौं काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहन हारी॥[6]

उक्त विषमताओं के बाद उर्मिला एवम् नागमती की वियोगावस्था अनुविगलित ही है। नागमती प्रिय के वियोग में बावली हो उठती है। संपूर्ण सुखों को भूल जाती है। सेज नागिन की तरह डसने लगती है। विरह दीपक की बाती की तरह जलाता रहता है। अर्द्ध रात्रि को भी वह अश्रुपात करती भटकती ही रहती है और इस विरह ने उसकी ऐसी अवस्था कर दी है कि वह अपनी व्यथा व्यक्त करने में भी स्वयं को असमर्थ अनुभव करती है—

हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भईं सब ताँति।
रोंव रोंव तें धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति?[7]

उर्मिला का भी यही हाल है। उसकी सेज भी काँटों की है। रोम-रोम से स्वेद टपकता है। तालवृन्त से विरह की आग के और अधिक भभक उठने का अंदेशा रहता है। यद्यपि पित्त-पीड़ा-सी जान पड़ती है। यह विरह-ताप इतना बढ़ जाता है कि—

भू विवरों को भी आज इस तनु स्पर्श का ताप
उठती हैं वे भाप सी मिलकर अपने आप।[8]

इस प्रकार प्रिय-वियोग नागमती एवम् उर्मिला दोनों ही के लिए कष्टदायी है। दोनों की स्थिति इस विरह-काल में लगभग एक जैसी है। शरद चन्द्रिका नागमती को भी जलाती है[9] और राक्षसी रूपी रात उर्मिला को भी मन मार कर आँसू पीने के लिए लाचार करती है।[10] प्रिय के आगमन के साथ ही नागमती की 'बारी' पल्लवित ही नहीं हो उठती इस फुलवारी में सोन के फूल भी खिल उठते हैं[11] और प्रिय-प्राप्ति के साथ 'उर्मिला-अंग' भी उमंग से भर उठता है।[12] वियोग संयोग में परिणित होकर हिन्दी-महाकाव्यों की इन दोनों विरहिणियों को संयोगिनियों में परिणित कर देता है।

राधा और यशोधरा चिर विरहिणियाँ हैं। एक प्रेमिका है, चिर कुमारी है। दूसरी पत्नी है माता है। प्रथम के प्रिय अपने 'चार कर्तव्य' के पालनार्थ विलग हुए हैं और द्वितीय के पति निर्वाण-कामना से महाभिनिष्क्रमण करते हैं। एक ने अपना

---

६ जायसी ग्रन्थावली पृ० १६०।
७ वही पृ० १५६।
८ साकेत पृ० २६२।
९ जायसी ग्रन्थावली पृ० १५३।
१० साकेत पृ० २८२।
११ जायसी ग्रन्थावली पृ० १६१।
१२ साकेत पृ० ४६२।

प्रेमी खोया है, दूसरी ने अपना पति। दोनों के लिए प्रिय-संयोग दुर्लभ है। एक यह सोच कर कि भिक्षु, भाषा भवन अथवा जैन शरीरी होने के कारण अपने प्राकृतिक धर्म को त्याग न पावेंगे और उर की लालसाएँ फलित न होवेंगी अतः उन्हें प्रतिदिन सात्विकी वृत्ति में रंग देती है[13] और दूसरी दिवस, रजनी विपुल पल एवम् बहुमास व्यतीत होने के बाद तनुज राहुल को पाकर हुत चित्त होती है।[14] प्रथम के पास संयम के नाम पर सेवा है और दूसरी के पास अपना पुत्र। प्रथम को प्रिय की आज्ञा न भूलते हुए विश्व के काम में आना है और अपने कौमार्य-वृत को मन में पूर्णता प्रदान करना है।[15] दूसरी को अपने मातृत्व भार का निर्वाह करना है। परिस्थितियों की इन विषमताओं के बाद भी दोनों नारी हैं, भावुक हृदया हैं विरहियोगिनियाँ हैं। अतः दोनों का विरहिणी-मन हाहाकारी है।

हृदय का यही हाहाकार जहाँ राधा को पवन को अपनी संदेशवाहिका बनाने के लिए बाध्य करता है वहीं यशोधरा भी हंस द्वारा अपना संदेश प्रिय तक पहुँचाते दृष्टिगोचर होती है। दोनों के संदेश जहाँ स्वच्छता से पूरित हैं वहीं दोनों अपने-अपने संदेशवाहकों को राह में पड़नेवाले दीन-दुखी-जनों के प्रति उदारता व्यक्त करने की सलाह देना भी नहीं भूलती हैं। स्वयं पीड़ित होने के कारण पर पीड़ा के प्रति उनके मन में सहानुभूति है। प्रिय-वियोग के कारण जहाँ राधा उजरा अथवा उन्मना एवम् वेदना-संतप्त जान पड़ती है[16] वहीं यशोधरा भी खिन्ना शरद-आतप-तापित बेतकी सी दृष्टिगोचर होती है।[17] एक ओर राधा जहाँ अपने अश्रु-विमंडित स्वरूप को श्याम तक पहुँचाने के लिए पवन से यों कहती है—

> लाके फूले कमल दल को श्याम के सामने ही।
> थोड़ा-थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो हो-डुबाना।
> यों देना ऐ भगिनि जतला एक अंभोज नेत्रा।
> आँखों को हो विरह विधुरा वारि में बोरती है।।[18]

वहीं यशोधरा भी अपने अश्रु-पूरित स्वरूप को प्रिय तक पहुँचाने के लिए हंस को यही कहती है—

> जो देखें तो दल मिलन की चोंच से चोंच, प्यारे,
> अंभोजों को, सुहृद जल में डोलता ले डुबोना,

---

१३ प्रियप्रवास १६। १०१। १६ प्रियप्रवास ६। २६।
१४ सिद्धार्थ पृ० २०१। १७ सिद्धार्थ प० १४२।
१५ प्रियप्रवास १६। ११२। १८ प्रियप्रवास ६। ७९।

वे भी जानें कि मुख दुख के वारि से धो रही हूँ
बैठे ठाले बचन करना दुखितों की क्रिया है।[१९]

राधा और यशोधरा के संदेश में, स्वकीया-निर्वेद में जहाँ साम्य है वहीं प्राप्तेच्छा में असाम्य भी लक्षित होता है। राधा प्रिय की चरण-धूलि मृदुल स्वर, नवल तन की वास अंगरागादिकों के पतित कणादि को प्राप्त कर भी संतुष्ट हो जाना चाहती है और यदि यह भी संभव न हो सकें तो वह अपनी संदेशवाहिका से यही विनय करती है कि—

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले औ चली जा।
छू के प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आ जा।
जी जाऊँगी हृदय तल में मैं तुझी को लगा के।[२०]

किन्तु यशोधरा की प्राप्तेच्छा कुछ बड़ी है। प्रिय प्राप्ति के लिए वह अपने संदेशवाहक हंस को जहाँ गाने अथवा रोने के लिए प्रेरित करती है वहीं वह उससे कुछ तमाशा भी करवाना चाहती है। वह सोचती है कि यदि हंस का तमाशा सफल हो गया और प्रिय हंस की पीड़ा हरण करने के लिए उसे त्राण देने के लिए, धीरे-धीरे उठ खड़े हों और हंस धीमे उसकी दिशा की ओर बढ़ने लगे और हंस का पीछा करते करते प्रिय उसके पास तक आ पहुँचें। इस कार्य-सम्पादन का जो पुरस्कार वह हंस को देना चाहती है, वह भी राजसी है, शायद अंतरीय राजकुल-वधू की गरिमा के अनुरूप है क्योंकि हेम की थालियों में मोती देने का आश्वासन किसी सामान्य नारी के वश के बाहर की बात है। पर इस पुरस्कार की या सही अर्थों में उत्कोच की शर्त यही है कि—

पीछे-पीछे दयित सपर्के मित्र भागे बढ़े तू,
ऐसे ही जो मम सदन को साथ ले खींच ला तू,
तो तू मेरा परम प्रिय हो, पुण्य हो, तू हितू हो,
मोती दूँगी विहग, तुझको हेम की थालियों में।[२१]

इतना ही नहीं पुत्र-समूह को भुला कर यशोधरा प्रिय को संदेश भेजते समय यह भी कहती है कि 'गुणालोचित गृह-त्याग से आपको यदि बड़ा लाभ हुआ हो तो मुझे और कुछ सुख नहीं चाहिए, मुझे मेरा अर्धांगिनि धर्म भाग दो।[२२] परन्तु राधा के

---

१९ सिद्धार्थ पृ० २६६।
२० प्रियप्रवास १।८२
२१ सिद्धार्थ पृ० २७०।९२।
२२ वही पृ० २७१।

लिए गर्व की भाग की आशा तो आकाश कुसुमवत् है। यशोधरा को तो एक बार पुनः प्रिय के दर्शन-लाभ भी हो जाते हैं और उनके 'युग विषम ज्योति से विलास हो मग्न विहीन'[२३] हो जाते हैं। किन्तु राधा तो क्या ब्रज के भाग्य में भी प्रिय-दर्शन की वह घटिका और वे वार'[२४] नहीं आने पाए। ऐसा विरत होकर अपनी भावनाओं को दबाते हुए, प्रिय आगमन का स्मरण करते हुए, राधा के दृग वारि धारा बहाते रहे। यशोधरा प्रिय को एक बार पुनः पाकर भी पकड़ कर न रख सकी और राधा एक बार प्रिय को खोकर पुनः प्राप्त न कर सकी। आकस्मिक वियोग दोनों के लिए चिर वियोग बन गया और वियोगजन्य विरह उन्हें हिन्दी-महाकाव्यों की चिर विरहिणियाँ बना छोड़ गया है।

हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन-संगिनियाँ

सामान्यतः पत्नी ही जीवन-संगिनी की पर्यायवाची समझी जाती है। इस दृष्टि से विचार किया जावे तो हिन्दी-महाकाव्यों की अधिकांश नायिकाएँ उपनायिकाएँ एवम् अन्य नारी पात्र जीवन-संगिनियों के अन्तर्गत आ जाते हैं। इनमें से अधिकांश पति परायण पत्नियाँ हैं। शील मर्यादित स्नेह उनका धन है। अधिकांश प्रेम-पतिव्रताएँ हैं। पति उनके लिए पूज्य है देवता तुल्य है। पति के कारण ही उनका भोग-संयोग सार्थक है और पति के पीछे ही उनका साज शृङ्गार है। पति के अनन्य प्रेम की अधिकारिणियाँ होकर ही उनमें मानापमान व्यंग-विनोद आदि भावनाएँ दृष्टिगोचर हो जाती हैं। प्रिय वियोग उन्हें विचलित कर देता है। पति के प्रेम की एकाधिकारिणी बनने का मोह उन्हें कभी-कभी सहपत्नी के साथ कलह-व्यापार में भी रत कर बैठता है। नाम वैषम्य के अतिरिक्त प्रायः सभी पत्नियाँ पत्नियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। उनका पुं स्वार्थ-साधन-रत स्वरूप हिन्दी-महाकाव्यों में कहीं-कहीं ही परिलक्षित होता है अन्यथा वे सभी सुन्दरियाँ हैं प्रेममयी हैं नारी-धर्म निर्वाहिकाएँ हैं स्वयम् एव स्वयम् पतिव्रताएँ हैं। किन्तु 'गृहिणी सचिव (सखी मिथ) प्रिय शिष्या'[१] जैसी कसौटी पर कसने पर हिन्दी-महाकाव्यों में जीवन-संगिनियों के रूप में सीता मांडवी एवम् श्रद्धा ही विशेषतः उल्लेखनीय हैं। वास्तव में देखा जावे तो ये तीनों ही हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन संगिनियों का प्रतिनिधित्व करने योग्य हैं। अतः प्रतिनिधि जीवन-संगिनियों के रूप में ही यहाँ उनके तुलनात्मक स्वरूप पर विचार करना समीचीन जान पड़ता है।

---

२३ सिद्धार्थ पृ० २८५।
२४ प्रियप्रवास १७।५२।

१ रघुवंश ८।६७।

हिन्दी-महाकाव्यों के अंतर्गत सीता एवम् मांडवी का चरित्रांकन क्रमशः पाँच एवम् दो महाकाव्यों में हुआ है। प्रधान नायिका के रूप में सीता की चरित्र-सृष्टि रामचरित मानस एवम् राम चन्द्रिका में हुई है। साकेत, साकेत-संत तथा रावण महाकाव्य में सीता की चरित्र-सृष्टि उपनायिका के रूप में उपस्थित की गई है। अन्तिम दो महाकाव्यों एवम् रामचन्द्रिका में सीता का जीवन-संगिनी स्वरूप नाम मात्र को व्यक्त हो पाया है। मानस एवम् साकेत की सीता अपने आप में प्राणवान हैं। अतः जीवन-संगिनी के रूप म तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार करने के लिए मानस एवम् साकेत की सीता ही अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

साकेत की मांडवी साकेत-संत की नायिका मांडवी से किसी प्रकार कम नहीं है। ऐसी स्थिति में तीन नारी पात्र पाँच नारी पात्रों में परिणित हो जाते हैं और तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार करते समय हमारे समक्ष मानस की सीता, साकेत की सीता साकेत की मांडवी साकेत संत की मांडवी और श्रुद्धा जीवन-संगिनियों के रूप में उपस्थित होती हैं।

साम्य की दृष्टि से पाँचों ही अलौकिक सुन्दरियां हैं। पाँचों ही आदर्श प्रधान एवम् सात्विक स्वभाव वाली हैं। पांचों पत्नी के उत्तरदायित्व को समझती हैं और पाँचों ही पति-परायणा हैं। मानस और साकेत की सीता वनवास के समय स्वेच्छा से पति का अनुसरण करती हैं और पति के साथ वनवास-लाभ करना अपना कर्तव्य समझती हैं। मानस की सीता के शब्दों में 'नेहु और नातें'[१] पति के साथ ही सधे रहते हैं और साकेत की सीता भी 'धर्म चारिणी होने के लिए वन-विहारिणी'[२] होना चाहती है। साकेत और साकेत-संत की मांडवी भी पति-कर्तव्य-साधना में अपना योगदान देते दृष्टिगोचर होती है। श्रुद्धा भी अपने कर्तव्य-पालन में किसी से पीछे नहीं है। इस प्रकार ये पाँचों ही नारियां जीवन-संगिनियां सिद्ध होती हैं।

मानस और साकेत की परिस्थितियां और संकट सीता को देखते हुए प्रायः एक जैसे हैं। मानस और साकेत की सीता के सामने पति के वनवास गमन की समस्या रहती है और इस उपस्थित संकट में उन्हें अपना निश्चय निर्धारित करना पड़ता है। पति-पथ अनुसरण के मामले में उनके मन में दो मत नहीं उठते। उनकी गति ही पति है। प्रियानुगमन करने के लिए व्यग्र सीता वहां यह कहते दृष्टिगोचर होती है—

> खग मृग परिजन नगर बनु बलकल बिमल दुकूल।
> नाथ साथ सुर सदन सम परनसाल सुख मूल ॥[४]

---

१ मानस अयोध्याकांड पृ० ४५५।   ४ मानस, अयोध्याकांड पृ० ४६६।

३ साकेत पृ० १०४।

वहीं साकेत की सीता भी 'जंगल में मंगल' की सोचते हुए यही कहती है—

अंचल होगा फूल भरा कलकल होगा कूल भरा।
मन होगा सुख मूल भरा तन होगा सुख भूल भरा।
अथवा कुछ भी न हो वहाँ, तुम तो हो जो नहीं यहाँ।
मेरी यही महामति है पति ही पत्नी की गति है।[5]

दोनों के मन में वन का भय भी घर नहीं कर पाता। वहाँ मानस की सीता का यह आत्म-विश्वास है कि—

को प्रभु संग मोहि चितवनि हारा। सिंह बधुहि जिमि ससक सिआरा।[6]

वहीं साकेत की सीता भी यह कहती है—

नाथ न तुम भय दो हमको, जीत चुकी हैं हम यम को।
सतियों को पति संग कहीं अगम गहन क्या दहन नहीं।[7]

परिस्थिति-साम्य भाव-साम्य और संवाद-साम्य के होते हुए भी मानस की सीता और साकेत की सीता में व्यक्तित्व-साम्य नहीं है। दोनों में कुछ मूलभूत अन्तर है। मानस की सीता का दाम्पत्य स्वरूप मूक है साकेत की सीता का यह स्वरूप अपने आप में मुखरित है। मानस की सीता आदर्श-अनुप्राणित होकर जीवन के लिए अनुकरणीय है। साकेत की सीता आदर्श रूपिणी होकर भी जीवन द्वारा अनुप्राणित है। एक मूक है दूसरी मुखरा। प्रथम विनयशील अधिक है द्वितीय गतिशील अधिक है। साकेत की सीता और के हाथों न पलने और अपने पैरों पर खड़े रहने की बात[8] कह सकती है किन्तु मानस की सीता 'श्याम मृदु गाता' को निहारते रहने के अतिरिक्त और कुछ कहती दृष्टिगोचर नहीं होती। साकेत की सीता 'पुरुषों को तो बस राजनीति की बातें'[9] जैसे वाक्य कह कर चुटकी ले सकती है किन्तु मानस की सीता सम्भवतः स्वप्न में भी चुटकी लेने का विचार नहीं कर सकती। संक्षेप में मानस की सीता अटूट आस्थावान विनयशीला जीवन-संगिनी है जबकि साकेत की सीता निष्ठावान पत्नी होकर भी, पुलक-पर्यंकित प्रिया है। प्रथम में विनय भाव का प्राधान्य है, द्वितीय में पुलक भाव का।

इसी प्रकार साकेत की मांडवी और साकेत-संत की मांडवी दोनों ही अपने जीवन-संगिनी स्वरूप में धीर, गंभीर, कर्त्तव्यनिष्ठ कष्ट-सहिष्णु एवम् संकट के मध्य

---

५ साकेत पृ० ११८, ११९।
६. मानस, अयोध्याकाण्ड पृ० ४६७।
७ साकेत पृ० ११९।
८ वही पृ० २२२।
९ वही पृ० २१९।

पति की कठोर साधना की सहभागिनियाँ हैं। परिस्थितिजन्य संकट के उठ खड़े होने पर जहाँ साकेत की मांडवी यह कहती दृष्टिगोचर होती है—

जीवन में सुख-दुःख निरन्तर, आते जाते रहते हैं।
सुख तो सभी भोग लेते हैं दुःख धीर ही सहते हैं।[10]

वहीं साकेत-संत की मांडवी भी यही कहती है—

मधुर स्वर में वह बोली 'नाथ, बटाऊँ कैसे दुःख में हाथ।'[11]

दोनों दुःख में दुःख बटानेवाली और सुख में सुख की सह भागिनियाँ हैं। अपने दाम्पत्य स्वरूप में दोनों ही विनोदी और आमोद-प्रमोद प्रियाएं दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों ही सच्चे अर्थों में अर्द्धांगिनियाँ हैं अपितु नारी व्रत का पालन करनेवाली हैं। पर साकेत की मांडवी साकेत-संत की मांडवी से कहीं अधिक विदुषी जान पड़ती है। कहीं वह कला[12] पर बातचीत करती दृष्टिगोचर होती है और कहीं युद्ध-कौशल रचना को कल्याणकारी[13] सिद्ध करने का प्रयास करती है। साकेत की मांडवी क्षत्राणी का ओज भी रखती है और उसकी वाणी में परिस्थितिजन्य संकट के उपस्थित होते ही क्षत्राणी सुलभ गरिमा भी दृष्टिगोचर होने लगती है।[14] साकेत-संत की मांडवी भू पर तपस्या बन कर, सुकुमारी नारी के रूप में अवतरित होती है[15] और उसके चरित्र की गरिमा पति के लिए घर को ही स्वतः हिमालय[16] बना देती है।

सीता और मांडवी की तरह श्रद्धा भी एक सच्ची जीवन-संगिनी है किन्तु उसकी परिस्थितियाँ पूर्व कथित जीवन-संगिनियों से सर्वथा भिन्न हैं। वह संगिनी पहले हुई है और जीवन-संगिनी बाद में। मनु के निष्क्रिय जीवन को वह गतिशील बनाती है। मनु की पलायन प्रवृत्ति को वह कर्मरत करना चाहती है। जहाँ वह दया, माया ममता, मधुरिमा अगाध विश्वास और अपने स्वच्छ हृदय को समर्पित कर देती है वहीं वह पति का अंधानुसरण भी नहीं करती। पथभ्रष्ट मनु को सुपथ की ओर मोड़ने का उसका प्रयास उसके 'सचिव' स्वरूप को भी व्यक्त करता है। वह भीषण एकांत स्वार्थ को नाश का कारण समझते हुए मनु से स्पष्ट शब्दों में कहती है—

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत करलो, सबको सुखी बनाओ।[17]

---

१० साकेत पृ० १९७।
११ साकेत संत ४।८।
१२ साकेत पृ० ४०१।
१३ वही पृ० ४०२।
१४ वही पृ० ४५९।
१५ साकेत संत पृ० १६०।
१६ वही पृ २०२।
१७ कामायनी पृ० १५२।

इतना ही नहीं श्रद्धा को परित्यक्ता-सा जीवन भी व्यतीत करना पड़ता है। फिर भी प्रिय की हित-कामना उसे व्यथित करती रहती है और दुःस्वप्न मात्र देख कर वह पति की खोज में निकल पड़ती है। पति को पाती है तो पति पुनः चुपचाप चल बैठे हैं। पर श्रद्धा का साहस विचलित नहीं होता। उसके मन का प्रवाह अक्षुण्ण है।[18] पुत्र को पराए हाथों सौंप कर वह पति को पुनः खोज लेती है और इतना सब कुछ करने के बाद भी मनु को पश्चात्ताप करते देख कर वह यही कहती है—

प्रिय! अब तक हो इतने सशंक, देकर कोई कुछ नहीं रंक।[19]

मनु की विकलता को उसने अपने सशक्त हाथों से आरम्भ से अन्त तक थामा है। एक ओर जहाँ उसने गृहिणी का उत्तरदायित्व संभाला है, मातृत्व के कर्तव्य का पालन किया है वहीं दूसरी ओर वह पत्नी के जीवन-संगिनी के कर्तव्य-पथ से अन्त तक विचलित नहीं हुई है। वह रघुकुल-वधू नहीं है, उसे राजाश्रय प्राप्त नहीं होता है उसे संघर्षों के मध्य जूझते हुए केवल अपनी राह ही नहीं बनानी पड़ती लड़खड़ाते विभ्रांत पति का भी हाथ थामना पड़ता है, परित्यक्ता होने का अभिशाप भी सहन करना पड़ता है पति के लिए पुत्र का भी परित्याग करना पड़ता है और साधना की मंजिल पर विकल साथी को 'ठिठोली' करने से रोकना भी पड़ता है।

सीता और मांडवी आरम्भ से लगाकर अन्त तक पति प्रियाएँ रहती हैं श्रद्धा को पति-प्रिया होने के लिए दुर्भाग्य से निरन्तर जूझते रहना पड़ता है। सीता और मांडवी पति के संरक्षण में आश्वस्त हैं किन्तु श्रद्धा को यह संरक्षण भी प्राप्त नहीं होता। सीता और मांडवी ने जिन हाथों को थामा है वे सशक्त हैं श्रद्धा ने जिन हाथों में अपना समर्पण किया है, वे सशक्त होकर भी उसके लिए अशक्त साबित होते हैं। उसे अपने जीवन-संगिनी स्वरूप को सार्थक करने के लिए सीता और मांडवी की तरह केवल त्याग ही नहीं करना पड़ता जीवन के साथ निरन्तर संघर्ष रत रहते हुए, अपने लिए और अपने जीवन-साथी के लिए राह भी बनानी पड़ती है। यद्यपि तीनों ने पाकर खोया और खोकर पाया है पर इस खोने-पाने की जो कीमत श्रद्धा को चुकानी पड़ी है, वह अद्वितीय है। कालिदास के शब्दों में वह अक्षरशः 'गृहिणी सचिव सखी मिथ' सिद्ध होती है और इस दृष्टि से जीवन-संगिनी के रूप में हिन्दी-महाकाव्यों की तुलनात्मक-भूमि में श्रद्धा का स्थान अनुपमेय है अद्वितीय है।

हिन्दी-महाकाव्यों की प्रेमिकाएँ

हिन्दी-महाकाव्यों में प्रेमिकाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले नारी पात्रों में प्रधानतः चित्ररेखा पद्मावती प्रियप्रवास की राधा तथा अनारकली नूरजहाँ और

---

१८. कामायनी पृ० २४८।

१९ वही पृ०

कृष्णायन की राधा का नाम उल्लेखनीय है। स्वार्पण प्रेमिका की दृष्टि से ग्रमीला को भी सम्मिलित किया जा सकता है। इनमें भी चित्ररेखा सामान्या एवम् अनारकली नर्तकी है। शेष सभी कुलोत्पन्न कन्याएँ हैं। साथ ही पद्मावती एवम् इछा की चरित्र-सृष्टि दृष्टिकोण विशेष से प्रस्तुत की गई है। ग्रमीला नूरजहाँ की प्रतिद्वन्द्वी है। प्रियप्रवास की राधा और कृष्णायन की राधा दृष्टिकोण विशेष से उपस्थित की जानेवाली एक पात्र की ही दो चरित्र-सृष्टियाँ हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टिकोण से इन नारी पात्रों के प्रेमिका स्वरूप पर विचार करते समय चित्ररेखा अनारकली पद्मावती इछा नूरजहाँ ग्रमीला और प्रियप्रवास की राधा तथा कृष्णायन की राधा के युग्म स्वरूपों पर विचार करना अधिक समीचीन जान पड़ता है।

चित्ररेखा अनारकली—चित्ररेखा पातुरी है अनारकली नर्तकी है। दोनों ही रूपवती कला-सम्पन्न एवम् हाव भाव-कटाक्ष निपुण हैं। दोनों अपने कला-प्रदर्शन के साथ ही रूप प्रदर्शन करती हुई भी दृष्टिगोचर होती हैं। चित्ररेखा का प्रेम जहाँ आदर पाकर सुल्तान को नाद-मोहित कुरंग की भाँति बाँधने की शक्ति रखता है[1] तो अनारकली भी सलीम के गले का हार पाकर, उसके गले का हार[2] बनती है। दोनों का प्रेम संकटों के मध्य फलता-फूलता है शाहों को चुनौती देता है और दोनों के प्रेम की समाप्ति प्राणोत्सर्ग द्वारा होती है। इतना अधिक साम्य होने के बाद भी दोनों में कुछ असाम्य है। चित्ररेखा का प्रारम्भिक जीवन एकदम सामान्यावत् है। वह वरवधों के पास से शाहबुद्दीन के पास पहुँचती है शाहबुद्दीन की प्रेमपात्री बनती है और उसके पश्चात् मीरहुसैन की प्रेमिका बन जाती है। अनारकली सलीम से ही प्रेम करती है और केवल सलीम की होकर ही अपनी जीवनलीला समाप्त कर देती है। शाह का आदर पाकर शाह के प्रति जहाँ चित्ररेखा का प्रेम बढ़ता हुआ[3] दृष्टिगोचर होता है, वहीं सम्राट अकबर के अनुनय प्रलोभन को ठुकरा कर अनारकली यही कहती है—

मैं रानी नहीं बनूँगी रहने दो मुझे भिखारिन।
मैं सदा रहूँगी माला अपने प्रियतम की सिविलिन।[4]

शाह के क्रोध के भय से जहाँ चित्ररेखा अपने प्रेमी मीरहुसैन के साथ दिल्ली चली जाती है और दोनों ही पृथ्वीराज की शरण लेते हैं, वहीं अनारकली का निस्वार्थ प्रेम बादशाह को रद्द करते हुए सलीम को अपने साथ जीवन नष्ट करने से रोकता है और अपने प्रेम-पात्र को धर्म-संकट में ही नहीं डालना चाहता—

---

१ पृथ्वीराज रासो, समय १२।३१। ३ रासो समय १२।११।
२ नूरजहाँ पृ० २१। ४ नूरजहाँ पृ० ३१।

मैंने प्यार तुम्हारा पाया जो जीवन का केवल सार।
उसे छोड़ सब लगे मधुर है एक अमर है सच्चा प्यार ॥
करना क्षमा भूल तब मेरी अब मैं और न जीऊंगी।
तुम्हें धर्म संकट में रखकर विष की घूंट न पीऊंगी ॥[५]

इतना ही नहीं विभरेया एवम् अनारकली के प्राणोत्सर्ग में भी अन्तर है। विभरेया जहाँ अपने प्रेमी की लाश के साथ जीते जी ही कब्र में गड़ कर[६] अपने प्रेम का परिचय देती है, वहीं अनारकली अपने प्रिय को धर्म संकट से मुक्त करने के लिए विषपान कर प्रिय की अंतिम झांकी देख कर उसकी गोद में गिरते हुए[७] अपना प्राणोत्सर्ग कर देती है। संक्षेप में विभरेया का प्रेम सामान्यवत् आरम्भ होकर भी सामान्यवत् समाप्त नहीं होता है और अनारकली का प्रेम जिस भावुकता के मध्य आरम्भ होता है उसी भावुकता के मध्य जीवनलीला समाप्त हो जाने के बाद भी उसका प्रेम अजर-अमर हो जाता है।

पद्मावती : इड़ा—पद्मावती एवम् इड़ा भी प्रधानतः प्रेमिकाएँ हैं। पद्मावती में लौकिकता एवम् अलौकिकता दोनों के दर्शन होते हैं जब कि इड़ा का चरित्रांकन बुद्धि वादिनी के रूप में प्रस्तुत हुआ है। पद्मावती प्रेममयी है इड़ा तर्कमयी है। पद्मावती का स्वरूप 'पारस रूप' होने के कारण निर्मल दर्पण की भाँति दृष्टिगोचर होता है और जो जिस रूप में होता है उसे इस पारस रूप में अपना स्वरूप वैसा ही दिखाई देता है।[८] इड़ा सिरचढ़ी है इसलिए उसने हृदय नहीं पाया है।[९] वहाँ इड़ा चेतनता का भौतिक विभाग कर जग को विराग बाँटनेवाली सिद्ध होती है[१०] वहीं पद्मावती के प्रेममय पारस रूप के दर्शन मात्र से सरोवर तक रूपवान हो जाता है।[११] पद्मावती का प्रेम जहाँ अपने प्रेम-साधक योगी का साथ करने से स्वयं तज देने के लिए तैयार है और योगी के जीवित रहने पर अमरत्व सेवा तथा प्रयाण करने पर सहगमन साथ देने का निश्चय प्रकट करता है[१२] वहीं इड़ा मायाविनी मूर्तिमती अभिमान की संज्ञा प्राप्त करती है क्योंकि वह मनु को स्पर्श की राह बता कर एक घुट्टी पा लेना चाहती है जैसे लड़के खेलों में घुट्टी कर लेते हैं।[१३]

---

५ नूरजहाँ पृ० ४१।
६ रासो, समय ६। २०८।
७. नूरजहाँ पृ० ४२।
८ जायसी ग्रन्थावली पृ० १०।
९ कामायनी पृ० २४१।
१० कामायनी।
११ जायसी ग्रंथावली प० २५।
१२ वही पृ० १०६।
१३ कामायनी पृ० १६६।

पद्मावती एवम् इड़ा दोनों ही ऐसी प्रेमिकाएँ हैं जिन्हें प्राप्त करने का प्रबल पुरुषों द्वारा ही होता है। दोनों ही ऐसे पुरुषों की प्रेमिकाएँ हैं जो अपनी पूर्व पत्नियों का परित्याग कर, प्रेम-पिपासित दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम भक्ति एवम् जयमाला देने की बात कहती है[14] द्वितीय प्रकृति संघर्ष सिखाने की दुहाई देती है।[15] प्रथम प्रेम का प्रतिदान प्रेम से देती है और द्वितीय के प्रति व्यक्त हुआ प्रेम, परिताप से भर उठता है। प्रेममयी होने के कारण पद्मावती सदैव रूपसी के रूप में हमारे सामने आती है तर्कमयी होने के कारण इड़ा केवल बुद्धिवादिनी ही रहती है।

पद्मावती ने अपने प्रेमिका स्वरूप को चिता की ज्वालाओं से सँवारा है, इड़ा का प्रेमिका स्वरूप परिताप की अग्नि में जलता परिलक्षित होता है। प्रेमपात्री के रूप में पद्मावती सदय है इड़ा निष्ठुर। एक तृप्ति है दूसरी अतृप्ति। इसीलिए पद्मावती जहाँ 'दीपक-पतंग प्रीति'[16] का निर्वाह करती दृष्टिगोचर होती है, वहीं इड़ा 'गैरिक वसना'[17] रूप में ही दिखाई देती है। प्रिय के प्रेम में रंग जाने के कारण पद्मावती के लिए स्वर्ग भी 'रतनार'[18] हो जाता है जबकि इड़ा का जाया भाग्य सो जाता है और वह उत्तेजित चंचला शक्ति, राहु-ग्रस्त शशिलेखा-सी दिखाई देती है जिस पर विषाद की विष रेखा[19] खिंच जाती है। इस प्रकार पद्मावती जहाँ एक सफल प्रेमिका सिद्ध होती है, वहीं इड़ा एक असफल प्रेमिका है क्योंकि उसके बुद्धिवादी स्वरूप को भावना के इस पथ में अतृप्ति का अनुभव करना ही था।

नूरजहाँ जमीला—नूरजहाँ और जमीला दोनों ही प्रेमिकाओं के रूप में उपस्थित होती हैं। दोनों का प्रेमपात्र एक ही व्यक्ति है। दोनों रूपवतियाँ हैं पर दोनों के स्वभाव में असाम्य है। एक राजस वृत्ति की है, दूसरी तामसी वृत्ति की। एक भोली है, दूसरी कुटिला। नूरजहाँ का भोलापन सलीम को भा जाता है जबकि जमीला कुटिलता का जाल बिछाने के बाद भी सलीम को प्राप्त नहीं कर पाती। नूरजहाँ के पास अपने प्रेम का बल है जबकि जमीला अपनी दुष्ट चातुरी कुलोत्पन्नता एवम् सौंदर्य का मद कर भी अपने प्रयत्नों में विफल होती है। नूरजहाँ प्रेमिका ही नहीं सलीम की प्रेम-भाजी भी है जमीला एक असफल प्रेमिका है। नूरजहाँ के प्रेम-पथ में दुर्दैव काँटे बिछाता है। जमीला अपने पथ को आप कंटकित करने के बाद भी काँटों की पीड़ा से कसकती दृष्टिगोचर नहीं होती। नूरजहाँ जहाँ भावी पर भरोसा

---

१४ जायसी ग्रंथावली पृ० ७८।
१५ कामायनी पृ० १६७।
१६ जायसी ग्रंथावली पृ० २१६।
१७ कामायनी पृ० २७७।
१८ जायसी ग्रंथावली पृ० १००।
१९ कामायनी पृ० २१६।

रखनेवाली है[२०] वहीं जमीला को अपने 'पानी में आग लगानेवाले' झूठ कौशल और सम्मोहन विद्या पर भरोसा है।[२१] नूरजहाँ का प्रेम द्वन्द्वात्मक है। पत्नी की जगह वह पत्नी है प्रेमिका की जगह प्रेमिका है। पत्नी की कर्तव्य-भावना उसके अधरों पर लगे चुम्बनों के दाग़ों की परवाह नहीं करती[२२] जबकि स्वधर्म-कर्म-वैराग्य के द्वारा ही उसकी प्रेम-भावना उस धरा पर अवतारावस्था में गिरा देती है।[२३] जमीला के प्रेम में स्थिरता का तो अभाव है। सलीम की ओर से निराश होने पर और कुतुबुद्दीन को पाकर वह गुलछर्रे उड़ाने की ही बात कहती है तथा बूढ़े से ब्याह करने में वह 'सफ़र-स्याह' करने की भी गुंजाइश देखती है।[२४]

स्वप्नों के संसार से वासना के प्यार से विदा लेने के बाद भी वैधव्य की आग में तपने के पश्चात् भी उसका प्रेम मरता नहीं है और एक दिन अपने प्रेम पात्र को असहाय पड़ा देख कर उसका प्रेम मानसिक-उपचारों में फूट पड़ता है।[२५] दुर्दैव की कठोरता के मध्य भी उसके वासना का त्याग मूल नहीं पाता जबकि जमीला प्रेम की डींगें हाँककर भी खुली तलवारों को देखकर सारा प्रेम भूल जाती है और जीवन भर प्रेम की बात न उठाने का वायदा करती दिखाई देती है।[२६] नूरजहाँ के प्रेम की तुलना में जमीला का प्रेम एकदम घटिया सिद्ध होता है। संक्षेप में सौदागर की बेटी होकर भी नूरजहाँ प्रेम का सौदा नहीं करती उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी जमीला उत्तम प्रेमिका नहीं बन पाती। एक के लिए प्रेम काँटों की राह है, दूसरी के लिए गुलछर्रे उड़ाने का माध्यम मात्र है।

प्रियप्रवास की राधा कृष्णायन की राधा—प्रियप्रवास की राधा एवम् कृष्णायन की राधा दोनों ही अनन्य प्रेमिकाएँ हैं। दोनों श्याम-प्रियाएँ हैं। दोनों ही कौमार्य-व्रत धारण करनेवाली अटल अनुरागिकाएँ हैं। दोनों भाग्यवान हैं दोनों हृग-जल से अपने प्रेम का सिंचन करने वाली हैं। दोनों ही प्रेम-मानिकाएँ हैं। इतना अधिक साम्य होने के बाद भी दोनों में कथावस्तु के असाम्य के कारण कुछ वैषम्य दृष्टिगोचर होता ही है। प्रियप्रवास की राधा के काम प्रेम की स्थापना नहीं हुई है कथा की करुण धारा में उसका चंचल मुखरा किशोरी स्वरूप डूब गया है जबकि कृष्णायन की राधा का काममयि स्वरूप अपने चंचल-मुखरा एवम् भोले रूप में व्यक्त हुआ है। प्रियप्रवास की राधा प्रियतम की आज्ञा को न भूलते हुए विश्व के काम

---

२० नूरजहाँ पृ० ६२।
२१ वही पृ० ७८।
२२ वही पृ० ६८।
२३ वही पृ० ७०।
२४ वही पृ० १०७।
२५ वही पृ० १४४।
२६ वही पृ० १०२।

पद्मावती एवम् इड़ा दोनों ही ऐसी प्रेमिकाएँ हैं जिन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न पुरुषों द्वारा ही होता है। दोनों ही ऐसे पुरुषों की प्रेमिकाएँ हैं जो अपनी पूर्व पत्नियों का परित्याग कर, प्रेम-पिपासित दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम भक्ति एवम् जयमाला देने *की बात कहती है*[14] *द्वितीय प्रकृति संघर्ष सिखाने की दुहाई देती है।*[15] प्रथम प्रेम का प्रतिदान प्रेम से करती है और द्वितीय के प्रति व्यक्त हुआ प्रेम परिताप से भर उठता है। प्रेममयी होने के कारण पद्मावती सदय हृदया के रूप में हमारे सामने आती है, तर्कमयी होने के कारण इड़ा केवल बुद्धिवादिनी ही रहती है।

पद्मावती ने अपने प्रेमिका स्वरूप को चिता की ज्वालाओं से संवारा है इड़ा का प्रेमिका स्वरूप परिताप की अग्नि में जलता परिलक्षित होता है। प्रेमपात्री के रूप में पद्मावती सदय है इड़ा निष्ठुर। एक तृप्ति है दूसरी अतृप्ति। इसीलिए पद्मावती जहाँ 'दीपक-पतंग प्रीति'[16] का निर्वाह करती दृष्टिगोचर होती है, वहीं इड़ा 'गैरिक वसना'[17] रूप में ही दिखाई देती है। प्रिय के प्रेम में रंग जाने के कारण पद्मावती के लिए स्वर्ग भी 'रतनार'[18] हो जाता है जबकि इड़ा का आया भाग्य सो जाता है और वह उदासीन चंचला शक्ति राहु-ग्रस्त शशिलेखा-सी दिखाई देती है जिस पर विषाद की लिपि रेखा[19] खिंच जाती है। इस प्रकार पद्मावती जहाँ एक सफल प्रेमिका सिद्ध होती है वहीं इड़ा एक असफल प्रेमिका है क्योंकि उसके बुद्धिवादी स्वरूप को भावना के इस पथ में अतृप्ति का अनुभव करना ही था।

नूरजहाँ जमीला—नूरजहाँ और जमीला दोनों ही प्रेमिकाओं के रूप में उपस्थित होती हैं। दोनों का प्रेमपात्र एक ही व्यक्ति है। दोनों रूपवतियाँ हैं पर दोनों के स्वभाव में असाम्य है। एक राजस वृत्ति की है दूसरी तामसी वृत्ति की। एक भोली है दूसरी कुटिला। नूरजहाँ का भोलापन सलीम का मन भा जाता है जबकि जमीला कुटिलता का जाल बिछाने के बाद भी सलीम को प्राप्त नहीं कर पाती। नूरजहाँ के पास अपने प्रेम का बल है जबकि जमीला अपनी कूट चातुरी कुसुमोत्सवता एवम् सौन्दर्य का गर्व कर भी अपने प्रयत्नों में विफल होती है। नूरजहाँ प्रेमिका ही नहीं सलीम की प्रेम-भाजी भी है जमीला एक असफल प्रेमिका है। नूरजहाँ के प्रेम-पथ में दुर्दम काँटे बिछाता है। जमीला अपने पथ को आप कंटकित करने के बाद भी काँटों की पीड़ा से कसकती दृष्टिगोचर नहीं होती। नूरजहाँ जहाँ भावी पर भरोसा

---

१४ जायसी पद्मावती पृ० ७८।
१५ कामायनी पृ० १९७।
१६. जायसी ग्रंथावली पृ० २११।
१७ कामायनी पृ० २७०।
१८ जायसी ग्रंथावली पृ० १००।
१९. कामायनी पृ० २११।

रखनेवाली है।[20] वहीं जमीला को अपने 'पानी में आग लगानेवाले' रूप यौवन और सम्मोहन विद्या पर भरोसा है।[21] नूरजहाँ का प्रेम द्वन्द्वात्मक है। पत्नी की जगह वह पत्नी है प्रेमिका की जगह प्रेमिका है। पत्नी की कर्तव्य भावना उसके अधरों पर लगे चुम्बनों के दागों की परवाह नहीं करती,[22] जबकि कर्तव्य-कर्म-सम्पादन के द्वारा ही उसकी प्रेम-भावना उसे धरा पर अचेतावस्था में गिरा देती है।[23] जमीला के प्रेम में स्थिरता का भी अभाव है। सलीम की ओर से निराश होने पर और कुतुबुद्दीन को पाकर वह मुसकराहटें बहाने की ही बात कहती है तथा बूढ़े से ब्याह करने में वह 'पसेव-ब्याह' करने की भी गुंजाइश देखती है।[24]

स्वप्नों के संसार से बालापन के प्यार से विदा लेने के बाद भी वैधव्य की आग में तपने के पश्चात भी, उसका प्रेम मरता नहीं है और एक दिन अपने प्रेम पात्र को असहाय पड़ा देख कर उसका प्रेम कामिनय-उपचारों में फूट पड़ता है।[25] दुर्दैव की कठोरता के मध्य भी उसके बालापन का प्यार सूख नहीं पाता जबकि जमीला प्रेम की डींगें हाँककर भी खुली तलवारों को देखकर सारा प्रेम भूल जाती है और जीवन भर प्रेम की बात न उठाने का वायदा करती दिखाई देती है।[26] नूरजहाँ के प्रेम की तुलना में जमीला का प्रेम एकदम घटिया सिद्ध होता है। संक्षेप में सौदागर की बेटी होकर भी नूरजहाँ प्रेम का सौदा नहीं करती उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी जमीला उत्तम प्रेमिका नहीं बन पाती। एक के लिए प्रेम काँटों की राह है दूसरी के लिए मुसकराहटें बहाने का माध्यम मात्र है।

प्रियप्रवास की राधा : कृष्णायन की राधा—प्रियप्रवास की राधा एवम् कृष्णायन की राधा दोनों ही अनन्य प्रेमिकाएँ हैं। दोनों श्याम-प्रियाएँ हैं। दोनों ही कौमार्य-व्रत धारण करनेवाली अटल अनुरागिकाएँ हैं। दोनों आस्थावान हैं, दोनों दृग-जल से अपने प्रेम का सिंचन करने वाली हैं। दोनों ही प्रेम-साधिकाएँ हैं। इतना अधिक साम्य होने के बाद भी दोनों में कथावस्तु के असाम्य के कारण कुछ वैषम्य दृष्टिगोचर होता ही है। प्रियप्रवास की राधा के बाल प्रेम की व्यंजना नहीं हुई है कथा की करुण धारा में उसका चंचल मुखर, किशोरी स्वरूप छुप गया है जबकि कृष्णायन की राधा का बालसुलभ स्वरूप अपने चंचल-मुखर एवम् भोले रूप में व्यक्त हुआ है। प्रियप्रवास की राधा प्रियतम की आशा को न भूलते हुए विरह के काम

---

२० नूरजहाँ पृ० ६२।
२१ वही पृ० ७८।
२२ वही पृ० ६८।
२३ वही पृ० ७०।
२४ वही पृ० १०७।
२५ वही पृ० १६४।
२६ वही पृ० १०२।

भी आना चाहती है।[२७] कृष्णायन की राधा को श्रीकृष्ण द्वारा यत्नपूर्वक लगाए गए प्रेम-विटप को दृग-वारि से सींचने का कार्य-भार मिलता है।[२८]

प्रियप्रवास की राधा नारी है, तरल हृदया है, प्यार से वंचिता है। अतः उसका विकल विमना हो उठना स्वाभाविक है।[२९] यद्यपि वह अपने आप को निर्लिप्ता रखने का प्रयत्न करती है परन्तु प्रिय के ललित लाभ की लालसा उठ ही जाती है। राधा स्वयं इसे स्वीकार करते हुए कहती है—

निर्लिप्ता हूँ अधिकतर मैं नित्यशः संयता हूँ।
तो भी होती अति व्यथित हूँ श्याम की याद आते।
वैसी वांछा जगत-हित की आज भी है न होती।
जैसी जी में ललित प्रिय के लाभ की लालसा है॥[३०]

कृष्णायन की राधा भी प्रिय-वियोग के समय विकल उठती है, उसका प्रेमी हृदयावेग एक बार पुनः उसे विदा होते श्रीकृष्ण के रथ के सामने ला पटकता है किन्तु हरि के रथ त्यागने और हृदय से लगा लेने के बाद ही वह प्राकृत नारी नहीं रह जाती—

सानुराग भरि हृदय निहारा, नयनन उमगहि बही जल धारा।
सुधा सिक्त राधा भय सारे, जागी मदन ज्योति मद मारे।
रही न प्राकृत तिय पुनि तैसे, जल कन स्वाती सीपी जैसे।[३१]

प्राकृत नारी न रह पाने के कारण कृष्णायन की राधा का चमत्कारिक स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। उद्धव को ब्रजवास के समय वह वंशीवादक हरि के चरणों में सुमनांजलि अर्पित करते दिखाई देती है,[३२] जब कि प्रियप्रवास की राधा प्राकृत नारी ही बनी रहती है। प्रियप्रवास की राधा का प्रियानुराग लोक-सेवानुराग है और कृष्णायन की राधा बालमुकुन्द की आराधिका है। प्रियप्रवास की राधा का लोक-सेवानुराग ही उसकी नवधा भक्ति है और इसीलिए वह सुजन शिर की छाया, सर्वों की हासिका, कंगालों की परम निधि, ब्रज अवनि की आराध्या एवम् विश्वप्रेमिका है।[३३] कृष्णायन की राधा आजीवन मनसा वाचा, कर्मणा से हरि की सच्ची आराधिका एवम् हरिमय प्राण रखनेवाली है[३४] और इसीलिए वह 'देहवादी भक्ति' और

---

२७ प्रियप्रवास १७।४६।
२८ कृष्णायन पृ० १००।
२९ प्रियप्रवास १६।५०।
३० वही १६।५१।
३१ कृष्णायन पृ० ११६, ११७।
३२ कृष्णायन पृ० २२५।
३३ प्रियप्रवास १७।४६।
३४ कृष्णायन पृ० ५२५।

बाग-बदनीम है। इस प्रकार दोनों की भक्ति की दिशाएँ अलग अलग होकर भी प्रेम की दिशा एक है, प्रेम-पात्र एक है और इसीलिए दोनों का प्रेमिका स्वरूप सात्विक तथा अमत्य है।

समष्टि रूप से प्रेमिकाओं के तुलनात्मक स्वरूप पर विचार करने से हिन्दी महाकाव्यों की प्रमिकाएँ तीन प्रकार की दिखाई देती हैं—सात्विक भाव प्रधान प्रेमिकाएँ, राजस भाव प्रधान प्रमिकाएँ और तामस भाव प्रधान प्रमिकाएँ। प्रथम एवम् द्वितीय प्रकार की प्रमिकाएँ भी प्राय हिन्दी महाकाव्यों में दृष्टिगोचर होती हैं। तामस स्वरूप का प्रतिनिधित्व केवल अमीला करती है। अत यहाँ अन्य प्रमिकाएँ अपने सद् स्वरूप में हमारे सामने आती हैं, वहीं अमीला एक असद् प्रेमिका के रूप म दिखाई देती है। साथ ही पातुरी और नर्तकी समझी जानेवाली नारियों का प्रेमिका-स्वरूप भी हिन्दी-महाकाव्यों में जिस रूप में व्यक्त हुआ है वह अपने आप में अनुपम है।

हिन्दी-महाकाव्यों की माताएँ

हिन्दी-महाकाव्यों में मातृ हृदय की जो व्यंजना प्रस्तुत की गई है उसका प्रतिनिधित्व करनेवाली माताओं मे यशोदा कौसल्या एवम् कैकेयी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यशोदा का मातृ स्वरूप प्रियप्रवास एवम् कृष्णायन दोनों म ही उपस्थित हुआ है। कौसल्या की चरित्र-सृष्टि मानस रामचन्द्रिका साकेत और साकेत-संत में मिलती है। किन्तु रामचन्द्रिका एवम् साकेत-सन्त मे कौसल्या का मातृ स्वरूप जिस रूप में उपस्थित होता है, उसमें कोई विशेषता नहीं है। अत तुलना की दृष्टि से मानस एवम् साकेत की कौसल्या ही ग्राह्य है। इसी प्रकार कैकेयी की चरित्र-सृष्टि भी पूर्व कथित चारों ही महाकाव्यों म प्रस्तुत की गई है, पर इनमें मानस एवम् साकेत की कैकेयी ही अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अत पहले महाकाव्यानुसार तुलनात्मक रूप से विचार करते हुए, बाद में उनके मातृत्व की तुलना करना उत्तम होगा।

मानस की कौसल्या साकेत की कौसल्या—मानस की कौसल्या एवम् साकेत की कौसल्या दोनों ही सरल हृदया जननी हैं। दोनों सरल स्वभाव की कपटहीन, ममतामयी एवम् उदात्त भावना रखनेवाली हैं। दोनों का मातृ हृदय अपने पुत्र राम तक ही सीमित न रह कर, भरत को भी रामवत् ही मानता है और दोनों ही कैकेयी के प्रति उदार दृष्टिकोण रखती हैं। दोनों में 'सौत-भाव' का अभाव है। मानस की कौसल्या कहाँ 'माता की माता'[1] का उल्लेख कर कैकेयी को राम की माता के रूप में ही व्यक्त करती है, वहीं साकेत की कौसल्या भी एकदम से यही कहती है कि कैकेयी

---

1 मानस, अयोध्याकांड पृ० ४२६।

चाहे जैसी हो पर मुझ जैसी सुत-वंचिता न हो।[२] वह उसे मझली बहनवत् मानती है। अतः दोनों के कथन कड़वाहट रहित हैं निष्कलुष हैं। मानस और साकेत की कौशल्या लगभग एक ही जैसी है और उनमें कोई वैषम्य विशेष दृष्टिगोचर नहीं होता।

मानस की कैकेयी : साकेत की कैकेयी—मानस की कैकेयी एवम् साकेत की कैकेयी दोनों ही स्नेहमयी माताएँ हैं। दोनों का प्रेम भरत के प्रति ही नहीं पहले राम के प्रति भी एक जैसा ही दृष्टिगोचर होता है। दोनों मंथरा की 'कर फूक' नीति से ग्रस्त होती हैं। पर जहाँ मानस की कैकेयी मंथरा को 'कपट प्रबरी' बना बैठती है, वहीं साकेत की कैकेयी मंथरा को अपनी नजरों से दूर कर देती है। प्रथम का मन मंथरा की सलाह से कुटिल हो उठता है जबकि द्वितीय के मन पर 'भरत से सुत पर भी संदेह'[३] की प्रतिक्रिया होती है और प्रथम का मन जहाँ 'त्रिया चरित्र' से चालित होता है, वहीं द्वितीय के मन में संवेदनात्मक प्रक्रिया के रूप में यह प्रतिक्रिया उठती है। यद्यपि दोनों का मन पुत्र-प्रेम एवम् सौतिया डाह की भावना से ही कुटिलता की शरण लेता है परन्तु प्रथम में सौतिया डाह का प्राबल्य है द्वितीय में पुत्र के प्रति किये जाने वाले अन्याय का प्रतिशोध लेने का। दोनों ही कोप भवन में जाकर अपना कार्यसिद्ध करती हैं। परन्तु जहाँ मानस की कैकेयी कार्य-सिद्धि के पश्चात् भी कुटिल एवम् ग्लानिभरी कैकेयी ही रहती है वहीं साकेत की कैकेयी की इस कुटिलता एवम् ग्लानि का परिहार होता है। 'रघुकुल की यह अभागिनी रानी' साकेत में 'सौ बार धन्य' घोषित की जाती है।

मानस की कैकेयी ग्लानि में डूब कर मूक रह जाती है, साकेत की कैकेयी अपने परिताप से पवित्र हो उठती है। मानस की कैकेयी में जो परिताप एवम् पश्चाताप दृष्टिगोचर होता है वह संकोचशील बन कर रह जाता है साकेत की कैकेयी का परिताप फूट पड़ता है और इसीलिए मन की 'घुटन' उसे प्रथम की तरह 'ग्लानि' मय बना कर ही नहीं छोड़ देती है। मानस में जहाँ कैकेयी का कपट कुवेश एवम् कुचाली स्वरूप संकोच में सिमट कर ही रह जाता है वहीं साकेत की कैकेयी 'पहाड़-सा पाप करके मौन नहीं रहना चाहती।[४] इतना ही नहीं साकेत की कैकेयी राम रावण युद्ध एवम् लक्ष्मण को घातक लगने के समाचार सुनकर अपने जिस क्षत्राणी स्वरूप में उपस्थित होती है और भरत को प्रथम भेजने के साथ ही स्वयं भी युद्ध भूमि की ओर

---

२ साकेत पृ० १६८।　　४ वही पृ २४७।

३ वही पृ० ४६।

प्रयाण करने की जो बात अपने मुंह से व्यक्त करती है[१] उसका मानस की कैकेयी में सर्वथा अभाव है। मानस की कैकेयी जो कुकृत्य एक बार कर बैठी है और जिसने उसके मातृत्व को कलंकित कर दिया है, उस कलंक को दूर करने की दृष्टि से वह निष्क्रिय है जबकि साकेत की कैकेयी सर्वत्र इस कलंक का परिहार करने के लिए प्रयत्नशील जान पड़ती है।

प्रियप्रवास की यशोदा : कृष्णायन की यशोदा—प्रियप्रवास की यशोदा एवम् कृष्णायन की यशोदा दोनों ही स्नेहमयी माताओं के रूप में उपस्थित होती हैं। दोनों का वात्सल्य भाव उनके मातृ हृदय की महानता का द्योतक है। दोनों ही के लिए श्याम हृदय सर्वस्व है। दोनों पुत्र-विछोह से अतिशय मलिन हो उठती हैं और दोनों में मातृ हृदय का हाहाकार दृष्टिगोचर होता है। दोनों की मर्म-वेदना अपने पूर्ण हृदय द्रावक स्वरूप में प्रकट होती है। दोनों देवी के साथ हमेशा जगत समय श्याम को श्याम की 'माय' ही घोषित करती हैं और दोनों एक बार अपने मोहन का मुखड़ा देखने के लिए लालायित हैं। दोनों में लगभग एक जैसी मातृसुलभ निरसता एवम् तीव्रता दृष्टिगोचर होती है। दोनों को पुत्र की अनुपस्थिति सालती रहती है सब कुछ सूना-सूना-सा जान पड़ता है और दोनों उद्धव के मुख से पुत्र के समाचार ज्ञात करते समय अपने मातृत्व प्रधान स्वरूप में दृष्टिगोचर होती हैं।

इतना अधिक भाव-साम्य होने के बाद भी प्रियप्रवास की यशोदा एवम् कृष्णायन की यशोदा में कुछ अन्तर दिखाई देता है। प्रियप्रवास की यशोदा के मातृ हृदय की विह्वलता कृष्णायन की यशोदा से कहीं अधिक हाहाकारी है जबकि कृष्णायन की यशोदा में संयोग काल का वात्सल्य-भाव कहीं अधिक सरसता के साथ व्यक्त हुआ है। प्रथम केवल कृष्ण के बाल्यकाल की क्रीड़ाओं का स्मरण करती है। द्वितीय इन बाल क्रीड़ाओं की साक्षी है। कृष्णायन की यशोदा का मातृ हृदय कृष्णजन्म से लगा कर अक्रूर-आगमन के पूर्व तक कृष्ण की बाल-लीलाओं से आनन्दित और पुलकित होता रहता है। प्यार, मनुहार, खीज, झिड़की मारपीट, डाटना डपटना आदि जितने भी मातृत्व के कर्तव्य हैं वे सभी कृष्णायन की यशोदा में दृष्टिगोचर होते हैं जबकि प्रिय प्रवास की यशोदा पुत्र के मथुरागमन के समाचारों को ज्ञात कर आरम्भ से ही व्याकुल एवम् व्यथित दिखाई देने लगती है।

कृष्णायन की यशोदा को एक बार पुनः कुरुक्षेत्र में अपने लाड़ले लाल को हृदय से लगाने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है पर प्रियप्रवास की यशोदा के भाग्य में यह शुभ देखा जैसे लिखी ही नहीं है। एक बार का पुत्र-विछोह विछोह ही बन कर

---

१ साकेत पृ० ४४७।

रह जाता है और सुत का मुख निहारने की लालसा अपूर्ण लालसा में परिणित हो जाती है। यद्यपि दोनों के मध्य दिखाई पड़ने वाले इस अन्तर का कारण कथावस्तु का स्वरूप है किन्तु इस अन्तर के बाद भी दोनों के मातृत्व में स्नेह भाव में कोई त्रुटि उपस्थित नही होने पाई है।

महाकाव्यानुसार कौशल्या कैकेयी एवम् यशोदा पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने के पश्चात तीनों के मातृ स्वरूप पर विचार करते ही तीनों अपने स्नेहमयी रूप में हमारे सामने आती हैं। कौशल्या एवम् यशोदा के मातृ हृदय सरस है, निर्विकार है, उदात्त हैं। कैकेयी में पुत्र-प्रेम के कारण कुटिलता का समावेश हो जाता है पर वह 'कुमाता' कहला कर भी माता है। जगत के भले-बुरे की उसे चिन्ता नहीं पर वह अपने मातृ पद के लिए चिन्तित अवश्य है। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है—

थूके, मुझपर त्रैलोक्य भले हो थूके
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके!
छीने न मातृ पद किन्तु भरत का मुझ से,
हे राम दुहाई करूँ और क्या तुमसे ?[६]

किन्तु कौशल्या एवम् यशोदा का मातृ पद उत्सर्ग-भाव से अनुप्राणित है। कद्रू वनिता की कथा अथवा पुत्र के प्रति होनेवाले अन्याय से कैकेयी विचलित हो सकती है कौशल्या नहीं। वह सरल स्वभाववश धैर्य-धारण करते हुए, राम से यही कहती है—

राज देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुखलेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥[७]

इस प्रकार पुत्र के वनवास-काल के समय भी कौशल्या का भरत का ध्यान रहता है पर कैकेयी का राम के प्रति जो स्नेह भाव था वह क्षुद्र स्वार्थ के वशीभूत होकर न जाने कहां खो जाता है। यशोदा भी अपने लाल के लिए किसी को व्यथित करना नहीं चाहती। पुत्र के वियोग में वह रोती है, कलपती है अपना हृदय कूटती है, पर उसके मातृ हृदय की महानता इसी में है कि वह किसी अन्य माता को दुखी नहीं बनाना चाहती—

मैं रोती हूँ हृदय अपना कूटती हूँ सदा ही।
हा! ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूँ मैं।[८]

कौशल्या एवम् यशोदा के उदात्त मातृ हृदय के सामने कैकेयी का पुत्र प्रेम और उसका मातृत्व टिक नहीं पाता। चाहे उसने क्षत्राणी होने के कारण धैर्य धारी

---

६ साकेत पृ० २४८।
७. मानस अयोध्याकांड पृ० ४३६।
८. प्रियप्रवास १०।६५।
९ साकेत पृ० २५२।

न छीनी हो[9] या उसने कहीं मांगा हो जो अच्छा लगता हो[10] या मोह के मद में उसने पद-पाणि पटके हों[11] पर यह स्पष्ट है कि वह एक साधारण दुखिया नारी है और उसमें उस उदात्त भावना का अभाव है जो एक माता के वात्सल्यमय हृदय की तरह, प्रकट होती है।

यशोदा एवम् कौशल्या का मातृ हृदय विशाल है कैकेयी का मातृ हृदय संकीर्ण है। इसलिये जहां प्रथम दो का मातृ पद अपनी उपमा आप ही है, वहीं कैकेयी का मातृ पद या तो ग्लानि में गलता-सा दृष्टिगोचर होता है या परिताप में जलता-सा।

जहां तक कौशल्या एवम् यशोदा के मातृत्व का प्रश्न है दोनों की परिस्थितियों में भेद है। प्रथम का विषाद जहां अवधि विशेष के लिये है वहीं द्वितीय का विषाद जीवन पर्यन्त रहता है। एक माता है दूसरी धाय है। एक के पास सम्बन्ध है पर दूसरी के पास केवल स्नेह का बल है। प्रथम को चौदह वर्ष के पश्चात् पुत्र की प्राप्ति हो जाती है परन्तु द्वितीय पुत्र की स्मृति में प्रतीक्षा में क्षण पात ही करती रहती है। कौशल्या 'तिय धर्मु'[12] समझ कर धैर्य धारण कर सकती है किन्तु यशोदा के मातृ धर्म उसके हृदय के वात्सल्य भाव के सामने धैर्य भी धसक जाता है और उसकी 'कहाँ है? कहाँ है?' की हाहाकारी रट के सामने पाषाण हृदय भी पिघल सकता है। कौशल्या आंसुओं को पी सकती है पर यशोदा के आंसू थमने का नाम नहीं लेते हैं और उसके क्षण मय मातृत्व के सामने उसके वात्सल्यजनित हाहाकार के सामने कोई माता नहीं टिक सकती। कौशल्या की सी माता का मिलना दुर्लभ हो सकता है पर यशोदा सी माता पाना सर्वथा असम्भव है। वह अपने आप में महान् है गरिमामय है अनुपमनीय है।

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गारों का स्वरूप बौद्धिक भूमि के अन्तर्गत देखा जा चुका है और उसके नारी विषयक दृष्टिकोण पर भी विचार किया जा चुका है। अतः हिन्दी के महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों पर तुलनात्मक रूप से विचार करते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि इन महाकाव्यकारों में कुछ अपने युग का प्रतिनिधित्व करते हुए युग-वाणी के प्रभाव में या तो परम्परा का पालन करते दृष्टिगोचर होते हैं या नवीन विचारधारा द्वारा प्रभावित जान पड़ते हैं। संस्कारवश

९ साकेत पृ० ३३२। ११ साकेत पृ० २४१।
१० मानस, अयोध्याकांड पृ० ४४०। १२. मानस, अयोध्याकांड पृ० ४३१।

उनके विचारों में कुछ साम्य भी है और कुछ वैयक्तिक मान्यताएं भी हैं। एक ओर वे प्राचीनता का प्रतिनिधित्व करते दृष्टिगोचर होते हैं दूसरी ओर आधुनिकता का। सम्मिश्रित विचारधारा भी मिलती है।

जहां तक समानता का प्रश्न है प्रायः हिन्दी के सभी महाकाव्यकारों ने नारी के सत् स्वरूप की महिमा एवम् गरिमा को व्यक्त करते हुए अपने विचारों को अनुदार नहीं होने दिया है। नारी के पतिव्रत की महत्ता के प्रति जो विचार व्यक्त हुए हैं, उनमें भी दृष्टिकोण साम्य है। कतिपय मान्यतानुसार प्रायः अधिकांश महाकाव्यकारों ने नारी को सुकुमारी अबला तरल हृदया आदि घोषित किया है और उसके रूप की शक्ति को स्वीकार किया है। प्रायः मातृत्व के प्रति सभी महाकाव्यकारों के विचार यथासम हैं। प्रायः सभी महाकाव्यकारों ने परोक्ष रूप में यही विचार व्यक्त किया है कि नारी की गति ही पति है और पुरुष का आश्रय पाने में ही उसके जीवन की सार्थकता है। व्यक्त या अव्यक्त वाणी में नारी-जीवन की विवशता के प्रति भी सभी ने सहानुभूति प्रदर्शित की है। उसकी अतिशय निरंकुशता या स्वच्छन्दता की भर्त्सना भी की है।

इस विचार-साम्य के बाद भी महाकाव्यकारों के तीन दल स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक दल है जो प्राचीनता को पकड़ कर ऐसे उद्‌गार व्यक्त करता है जो अनुदार हैं। ऐसे दल का प्रतिनिधित्व तुलसीदास करते हैं। दूसरा दल है जो नारी की दया माया, ममता और युग की आवश्यकता को देखते हुए नारी के प्रति सदय दृष्टि रखता है पर अपने संस्कारों से भी अनुप्राणित होने के कारण मध्यम मार्गी है। ऐसे दल का प्रतिनिधित्व गुप्तजी करते हैं। तीसरा दल युग की उदात्त भावना से परिपूर्ण दृष्टि रखता है और ऐसे दल के एकमात्र प्रतिनिधि प्रसादजी हैं। अतः महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों पर तुलनात्मक अध्ययन करते समय हमें तीनों की विचारधारा को ही प्रतिनिधि विचारधारायें मान कर एवम् शेष विचारधाराओं को पक्ष विशेष की पुष्टि करने वाली समझ कर ही यहां उनके नारी विषयक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करना समीचीन जान पड़ता है।

प्रथम दल का प्रतिनिधित्व करते हुए नारी को अष्ट अवगुण की खान मानते हुए, सहज जड़ अज्ञ एवम् अधम ते अधम अधम अति नारी' घोषित करते हुए, तुलसीदासजी यही कहते हैं —

ढोल गँवार, शूद्र, पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी ॥[1]

---

१ मानस सुन्दरकांड पृ० ९१३।

वहीं युग वाणी से प्रभावित होकर गुप्तजी का संस्कारी हृदय भी 'धर्म संहिता' के स्वर में सुर मिला कर नारी को ताड़न की अधिकारिणी समझने वाले गोस्वामीजी का साथ नहीं देता और उनकी युगवाणी से प्रभावित विचारधारा नारी को 'अबला' स्वीकार न करते हुए यही कहती है—

वीरों की जननी हम हैं मिलता मृत्यु हमें सम है।[२]

प्रसादजी इस समस्या का परिहार ही नहीं अपितु युग की उदात्त विचार धारा का उद्घोष करते हुए यही कहते हैं—

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
सम रसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।[३]

पुराने वेदों का प्रतिनिधित्व करते हुए भर्त्सना के स्वर में जहाँ तुलसीदासजी ने यहाँ तक कह डाला है—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी
होइ विकल सक मनहि न रोकी जिमि रवि मनि द्रव रविहि बिलोकी।[४]

वहीं गोस्वामीजी के इस विचार का समर्थन युग की उदात्त विचारधारा कभी नहीं कर सकती और इसीलिए भक्तजी का मत है—

इस कोमल तन के भीतर है हृदय कोट का मंडल।
जिसमें न कभी घुस पाये हैं विश्व-लुटेरों के दल॥[५]

अब यह स्पष्ट है कि गोस्वामीजी की 'द्रव' भावना नारी जाति की भर्त्सना करते हुए उसके जिस कामुकतापरक स्वरूप का व्यक्त करना चाहती है और उसकी वात्सल्य-निष्ठा पर भी चोट करती है वहीं युग की उदात्त विचारधारा को व्यक्त करनेवाला महाकाव्यकार इस स्वर में स्वर नहीं मिला पाता। उसने हृदय-कोट का जो मंडल नारी के कोमल तन के भीतर खींचा है वह उदात्त ही नहीं शक्तिशाली एवम् शालीन भी है। यह हृदय-कोट का मंडल केवल 'द्रव' की दुर्बलता को ही नहीं जायसी की 'तिरिया भूमि खड्ग के चेरी' जैसी भावना को भी चुनौती देता है।

तुलसीदासजी का दल हर प्रकार से नारी स्वातंत्र्य को बुरा मानता है और नारी पर तरह-तरह के बंधन लगाने में नहीं चूकता। तुलसी की विचारधारा का ही समर्थन करते हुए उन्हीं के दल के सदस्य के रूप में जहाँ केशवदास भी यह कहते नजर आते हैं—

२ साकेत पृ० १०१।
३ कामायनी पृ० १६२।
४ मानस अरण्यकांड पृ० ७६०।
५. गुरुकुल पृ० २५।

कतहीं कोड़ी नीक कोर ग्वारी बिभिचारी ।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी ॥[6]

पर युग की उदात्त विचारधारा मर्यादा खोकर नारी को तलुवे चाटने के लिए लाचार नहीं करती और मरुती के स्वरों में युग की जागृत नारी इस मर्यादाहीनता का विरोध करते हुए कहती है—

नहीं नहीं यह कभी न होगा कभी न होने दूँगी मैं ।
मानवता विहीन पति का अन्याय न यों सह लूँगी मैं ॥[7]

युगवाणी से अनुप्राणित होने के कारण संस्कारी हृदय भी इस परंपरागत विश्वास का समर्थन नहीं कर पाता है और वह पुरुष के उस 'छल' का पर्दाफाश करता दृष्टिगोचर होता है जो मीठी बातों से नारी को बहला कर 'दासी' बनाना चाहता है—

दास बनने का बहाना किसलिए ? क्या मुझे दासी कहाना इसलिए ?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो और देवी ही मुझे रक्खो अहो ।[8]

पुरातन पंथी महाकाव्यकारों का प्रतिनिधित्व करते हुए गोस्वामी जी की विरति-प्रियता जहाँ नारी के लिए यह भी कह सकती है—

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग ।[9]

अथवा

काम उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ।
बुधि बल सील सत्य सब मीना । बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।[10]

वहीं युग का 'प्रबीण' महाकाव्यकार इस विरति प्रियता का समर्थन नहीं करता और वह स्पष्ट शब्दों में घोषित करता है—

नारी माया ममता का बल वह शक्तिमयी छाया शीतल,
फिर कौन क्षमा करदे निश्छल, जिससे यह धन्य बने भूतल ।[11]

अथवा

हम दोउ एक नाहिं कछु भेदा कहत सकल निगमागम वेदा ।
निबसति यथा छीर धवलाई, यथा हुताशन दाहक ताई ॥
यतन प्रिये । तस तुम मोहि माहीं, तुमहिं बिहाय मोरि गति नाहीं ।[12]

जहाँ यहाँ परम्परा को पकड़ कर, विरति के नाम पर पृथक रूप का प्रतिनिधित्व करने वाले गोस्वामीजी नारी के प्रश्न पर 'भेद' को खड़ा करना चाहते हैं, वहीं

---

६. रामचन्द्रिका ६।६।
७. नूरजहाँ पृ० ८१।
८. साकेत पृ० १०।
९. मानस, अरण्यकांड पृ० ५१०।
१० वही पृ० ५०८।
११ कामायनी पृ० २१८।
१२ कृष्णायन पृ० ६६।

पुरानी विचारधारा को भी नवीन स्वर देकर उदात्त अथवा संस्कारी दल का महाकाव्य कार 'अमर' का समर्थन करते हुए यही व्यक्त करता है—

"व्याप्त विश्व भरि तत्त्व इक, विकृत पुरुष अरु नारि।"[१३]

नारी के हृदय को लेकर भी प्रथम दल में भिन्ना का अम्बार-सा खड़ा कर दिया है और उसका प्रतिनिधित्व करते हुए तुलसीदासजी ने मानस के सर्वाधिक उदात्त हृदय पात्र के मुख से भी यह कहला डाला है—

बिधिहु न नारि हृदय गति जानि। सकल कपट अघ अवगुन खानि।[१४]

वहीं युग की उदात्त विचार-धारा से अनुप्राणित दल उसके हृदय पर यह लांछन लगाने के लिए तैयार नहीं है। वह उस हृदय की कमजोरी से भी परिचित है और महानता से भी। इसीलिए उसका दृष्टिकोण समग्र है एकांगी नहीं है। ऐसे दल का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रसादजी कहते हैं—

नारी का वह हृदय। हृदय में सुधा सिंधु लहरें लेता,
बाड़व ज्वलन उसी में जलकर, कंचन सा जल रंग देता।
मधु पिंगल उस तरल अग्नि में शीतलता संसृति रचती
क्षमा और प्रतिशोध आह रे दोनों की माया नचती।[१५]

उक्त उदाहरणों को देखते हुए, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीनता प्रिय दल के महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचार जहाँ अनुदार हैं संस्कारों और युगवाणी से प्रभावित दल के महाकाव्यकारों के विचारों में जहाँ प्राचीन-नवीन विचारों का सम्मिश्रण है, वहीं युग की उदात्त विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले महाकाव्य कारों के विचारों में प्रगति का उद्घोष है। उनके लिए नारी केवल श्रद्धा है, वे उसके पीयूष-स्रोत को जीवन की समता की भूमि पर प्रवाहित करते दृष्टिगोचर होते हैं। उसके हृदयहीन पिछड़े स्वरूप का समर्थन नहीं करते परन्तु अमृ.बल के संकल्प से अपने सीने से सपनों को दान करनेवाली नारी के सर्वममता स्वरूप की प्राण-प्रतिष्ठा करना ही उनका ध्येय है और इस ध्येय का नारी विषयक निष्कर्ष यही है—

हे सर्व मंगले। तुम महती
सबका दुख अपने पर सहती
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में हो रहती,
मैं भूला हूँ तुमको निहार,
नारी सा ही! वह लघु विचार।[१६]

---

१३ दृष्यायन पृ० ६६। १२ कामायनी पृ० २०७।
१४ मानस, अयोध्याकांड पृ० २६१। १६ वही पृ० २४६।

परिशिष्ट

- आधार ग्रन्थ एवं सहायक ग्रन्थ

आधार ग्रंथ एवम् सहायक ग्रंथ

आधार ग्रंथ

पृथ्वीराज रासो	चन्दबरदायी [नागरी प्रचारिणी सभा] सम्पादक – डाक्टर श्यामसुन्दर दास।
पद्मावत	मलिक मुहम्मद जायसी [जायसी ग्रंथावली] सम्पादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
रामचरित मानस	तुलसीदास [सम्पादक रामनरेश त्रिपाठी
राम चन्द्रिका	केशवदेव [केशव ग्रंथावली खण्ड २] सम्पादक : विश्वनाथप्रसाद मिश्र।
प्रियप्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।
साकेत	मैथिलीशरण गुप्त।
कामायनी	जयशङ्कर प्रसाद [प्रथम संस्करण]
नूरजहाँ	गुरुभक्तसिंह [चतुर्थ आवृत्ति]
सिद्धार्थ	अनूप शर्मा।
साकेत संत	डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र।
कृष्णायन	द्वारकाप्रसाद मिश्र।
रावण महाकाव्य	हरदयालुसिंह।

सहायक ग्रंथ

आर्य संस्कृति	डाक्टर बलदेव उपाध्याय।
आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी-भावना	डाक्टर शैलकुमारी।
आधुनिक साहित्य	नन्ददुलारे वाजपेयी।

आधुनिक मनोविज्ञान	लालजीराम शुक्ल ।
आलोचना	२, ३, ४ सम्पादक शिवदानसिंह चौहान
कठोपनिषद्	गीता प्रेस ।
काव्य के रूप	गुलाबराय ।
कालिदास ग्रंथावली	सीताराम चतुर्वेदी ।
काम सूत्र	वात्स्यायन । जय मङ्गला टीका ।
काव्य दर्पण	पं० रामदहिन मिश्र ।
काव्य कल्पद्रुम भाग १	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ।
केशव ग्रंथावली खंड १	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।
किशोर मनोविज्ञान की भूमिका	डाक्टर सरयूप्रसाद चौबे ।
खड़ी बोली के गौरव ग्रंथ	विश्वम्भर 'मानव' ।
गोस्वामी तुलसीदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
चिन्तामणि भाग २	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
चंदबरदायी और उनका काव्य	डाक्टर विपिनबिहारी त्रिवेदी ।
जायसी ग्रंथावली की भूमिका	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त	लक्ष्मीनारायण सुधांशु ।
जैन सामुद्रिक ना पांच ग्रन्थो १ सामुद्रिक तिलक २ सामुद्रिक शास्त्र	सं० शास्त्री हिम्मतराम ।
तुलसीदास एक विश्लेषण	पब्लिकेशन डिविजन द्वारा प्रकाशित ।
तुलसी दर्शन	डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र ।
दर्शन के उपयोग	इरविन एडमन सं० चार्ल्स फ्रैंकल ।
देव और उनकी कविता	डाक्टर नगेन्द्र ।
धर्म पथ	महात्मा गांधी ।
धर्म सूत्र	वशिष्ठ
नव रस	गुलाबराय ।
नारी का मूल्य	शरत्चन्द्र चटर्जी [शरत् साहित्य]
नारी अंक	कल्याण ।
प्रसाद का काव्य	डाक्टर प्रेमशङ्कर ।
पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास	डाक्टर देवराज एवम् जैतली ।
पातंजल योग दर्शन	बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना द्वारा प्रकाशित ।

ब्रज भाषा साहित्य का नायिका भेद — प्रभुदयाल मित्तल।
बिहारी सतसई — बिहारीलाल।
भारतीय नारी — स्वामी विवेकानन्द।
भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा — सम्पादक डाक्टर नगेन्द्र।
भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण — डा भगवतशरण उपाध्याय।
भारत — श्रीपाद अमृत डांगे अनु० आदित्य मिश्र।
भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास — डाक्टर सत्यकेतु विद्यालङ्कार।
भारत का सांस्कृतिक इतिहास — हरिदत्त वेदालङ्कार।
भारत का प्राचीन इतिहास — डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार।
भारतीय संस्कृति के चार अध्याय — रामधारीसिंह दिनकर।
मनोविज्ञान और शिक्षा शास्त्र — भैरवनाथ झा।
मध्य युग की धर्म साधना — डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी।
मन की बातें — गुलाबराय।
मनुस्मृति — सं पं० रामतेज पांडे।
महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष — डाक्टर केतकर।
मार्क्सवाद — यशपाल।
रस रत्नाकर — हरिशङ्कर शर्मा।
रस मीमांसा — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
रसज्ञ रंजन — आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
रस कलश — 'हरिऔध'
रसराज — मतिराम।
रसिक प्रिया — केशवदास।
विचार और अनुभूति — डाक्टर नगेन्द्र।
विश्व धर्म दर्शन — सावलिया बिहारीलाल वर्मा।
वैदिक साहित्य — प रामगोविन्द त्रिवेदी।
शिक्षा शास्त्र — डाक्टर सीताराम जायसवाल।
शृंगार शतक — भर्तृहरि।
साहित्य — रवीन्द्रनाथ ठाकुर।
साहित्यालोचन — डाक्टर श्यामसुन्दरदास।
सिद्धान्त और अध्ययन — गुलाबराय।
सूरसागर १, २ — संपादक नन्ददुलारे वाजपेयी।
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा — डाक्टर व्यास।
संस्कृत साहित्य का इतिहास — डाक्टर बलदेव उपाध्याय।

हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
हिन्दी साहित्य की भूमिका	डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का आदि काल	डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डाक्टर रामकुमार वर्मा ।
हिन्दी साहित्य	डाक्टर श्यामसुन्दरदास ।
हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डाक्टर बेनीप्रसाद ।
हिन्दू सभ्यता	डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी अनु० वासुदेव शरण अग्रवाल ।
हिन्दू परिवार मीमांसा	हरिदत्त वेदालंकार ।
हिन्दी संत काव्य संग्रह	गणेशप्रसाद द्विवेदी परशुराम चतुर्वेदी ।

Encyclopaedia Britanica Vol. I	Ninth Edition
The Theory of Beauty	E. F Caritt.
Psychology	R. S. Woodworth.
Studies in Psychology of Sex Vol. II	Hevelock Ellis
Psychology of Women Vol. I	Helene Dentsch M.D
Encyclopaedia of Psychology	Phillip Lowrence Harriman
Differential Psychology	Anastasi and Foley
Stevenson s Book of Quotations or Dictionary of Quotations	Burton-Stevenson.
A History of Sanskrita Literature	V Vardhachari.
Women in the Sacred Laws	Shakuntala Rao Shastri.
Three Essays on the Theory of Sexuality	Sigmund Freud

